प्रकाशकीय

बंगला भाषा के मूर्धन्य उपन्यासकार श्री जरासंध के दो उपन्यासों—'देहशिल्पी' और भून को एक साथ, एक ही जिल्द में प्रकाशित किया जा रहा है। एक से अधिक या दो कृतियों का एक साथ प्रकाशन एक नई परम्परा की शुरुआत है।

प्रस्तुत दोनों उपन्यासों की कथावस्तु बिल्कुल भिन्न है और दोनों के स्वाद भी भिन्न हैं, लेकिन दोनों में मनोवैज्ञानिक, चित्रण की एकरूपता है। 'देह-शिल्पी' में जहाँ एक संवेदनशील कलाकार के अन्तर्द्वन्द्व का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण है, वहीं 'भून' में एक स्वाभिमानी नारी के जीवन संघर्ष की सूक्ष्म मानसिकता चित्रित है। दोनों ही कथाएँ नई भाव-भूमि पर लिखी गईं, बहुत हद तक नवीनतम कथा-प्रयोग हैं जो पाठकों को जरासंध जी की अन्य कृतियों

देहशिल्पी

॥ एक ॥

कुण्डी खटखटाते ही एक लम्बे, दुबले, काले लड़के ने किवाड़ खोला। उसकी आँखों में जिज्ञासा थी। जो दो बाबू उसके सामने खड़े थे, उन्हें घूर कर, उनमें से एक के मुख पर निगाह टिका कर वह मुस्करा पड़ा।

'कहो भाई हँसमुख'। मुव्रत ने कहा, 'अच्छे तो रहे ?'

उसकी मुस्कराहट कानों तक फैल गई, गर्दन भी बाईं तरफ झुकी। मतलब 'हाँ ठीक हूँ।'

'तुम्हारे साहब कहाँ है ?'

इस प्रश्न का भी कोई मौखिक उत्तर नहीं मिला। उसके बदले, दाहिने हाथ की एक उँगली और आँखें ऊपर की ओर उठ गई।

'क्या कर रहे हैं ?'

जिह्वा इस बार भी नीरव ही रही। केवल फैले हुये होठों की एक विशेष भंगिमा ने सूचित किया, 'क्या पता ?'

'गूँगा है क्या ?' मोहित अपने मित्र से पूछने ही वाला था। इससे पहले ही 'अरे राम !' कहता हुआ वह अन्दर भागा।

'हँसमुख नाम तुम्हारा दिया हुआ है क्या ?' मोहित ने पूछा।

'नहीं, उसके मालिक का। इस हँसी के कारण ही उसकी नौकरी लगी है।'

'मतलब ?'

'मतलब यह कि पुराना नौकर छुट्टी पर जाने वाला था। एवज में आदमी तो चाहिये न ? इसे ला खड़ा किया। मालिक चित्र बना रहे थे। आँखें उठा कर देखा, उसका हँसता चेहरा। बस काम बन गया।'

'बस ? काम-वाम भी कुछ जानता है ?'

'काम के बारे में जानना उन्होंने जरूरी नहीं समझा। बाद में देखा गया, एकदम पुरातन-भृत्य सा। यह उसकी तरह दिन-दोपहरी जब-तब सोता नहीं, हँसता रहता है हरदम। मगर हाँ, एक बहुत बड़ी विद्या का अधिकारी है यह। काफी कमाल की बनाता है।'

कहते-कहते ही काफी की ट्रे लिए हँसमुख दिखाई पड़ा। मुख्यद्वार के पार हो

ऊपर जाने की सीढ़ियाँ हैं। झटपट जीने पर चढ़ता हुआ वह बोला, 'आपलोग अन्दर आकर बैठिये बाबू ! इसे पहुँचा कर मैं अभी आता हूँ।'

क्षण भर रुक कर उनकी ओर घूम कर बोला, 'खूब गरम न हो तो साहब पीते ही नहीं। एक घूंट चख कर रख देते हैं। मुझे फिर बनाना पड़ता है।'

सुव्रत ने मित्र को दिलासा दिया कि इस समय अगर ऐसी घटना घटे तो हमें भी मिलने की आशा हो। सभी कुछ 'साहब' के 'मूड' पर निर्भर है।

मालूम पड़ा 'मूड' अच्छा ही है। मालिक के निर्देश पर हँसमुख आगन्तुकों को ऊपर ले गया। प्याली हाथ में लिये ही कृष्णन ने आगे बढ़ कर उनका स्वागत किया और पहला ही प्रश्न पूछा, 'थोड़ी काफी तो जरूर पियेंगे ?'

उत्तर की प्रतीक्षा किये बगैर ही आर्डर दे दिया और हँसमुख बत्तीसी खिलाता, कमरे से बाहर गया तभी सुव्रत ने कहा, 'परिचय करा दूं। आप मेरे मित्र मोहित बोस हैं। करीब ही रहते हैं। राह चलते आपने इन्हें देखा भी होगा।'

'जरूर देखा है ? कद-काठी भी देखने लायक ही है।'

'कुछ समझे ?' मोहित को आश्वासन देने की इच्छा से सुव्रत ने कहा, 'कलाकार की निगाह में जंच गये हो। शायद किसी दिन, ये लोग जिसे कहते हैं 'रेखा का बंधन' उसमें बँध भी सकते हो।'

मोहित रूपवान है। और इस बात को वह खूब अच्छी तरह जानता भी है। मित्र की बात पर वह मन ही-मन खुश तो बेशक हुआ, पर दिखावटी निराशा से बोला, 'बँधने योग्य माल-मसाला मेरे पास हो, तब तो ! कलाकार तो हमेशा बढ़ा-चढ़ा कर बोलते ही हैं। कल्पना की दृष्टि से देखते जो हैं।'

'खैर, इस विषय पर फिर कभी सोचेंगे। अभी काम की बात करें।' कहता हुआ सुव्रत कृष्णन की ओर मुड़ कर बोला, 'हमारे मुहल्ले में एक पुराना क्लब है। नाम शायद अपने सुना हो, 'सन्ध्या मजलिस।'

'वह आपका क्लब है ?'

'हमारा यानी हमारे जैसे लोगों का अस्तित्व तो केवल आक्षरिक है। कापी के बाहर हम कहीं मिलेंगे नहीं। उसके प्राण-केन्द्र तो ये हैं। मार्जित भाषा में जिसे कहते हैं 'प्रतिष्ठान के प्राण स्वरूप' मेरा मतलब यह कि...'

मोहित ने टोका ''यही तुम्हारी काम की बातें है ?'

'अरे यार, हर चीज की एक भूमिका तो होनी चाहिये।'

'अब क्यों भूलते हो कि तुम्हारे बकवास से इनका समय बरबाद हो रहा है ?'

अब सुव्रत असल बात पर आया, 'सन्ध्या मजलिस' में एक चैरिटी-शो होने वाला है। रुपये 'नार्थ बंगाल रिलीफ फन्ड' को भेजे जायेंगे।'

'शो कहाँ होने वाला है ? क्लब में ?'

अब मोहित ने जवाब दिया, 'नहीं, 'स्टा
मिला है। हमारे पास एक छोटा हाल है। वे
हैं। ड्रामें के लिये पब्लिक स्टेज किराये पर लेना

टिकट निकाल कर पूछा, 'कितने दे दूं ?'

'एक ही दे दीजिये। और अधिक लेक
कृष्णन सुव्रत की तरफ देख कर हँस पड़ा ?
'फिलहाल, इस बार एक ही दे रहा हूँ, इस र
से काम न चलेगा, दो लेने ही पड़ेंगे।'

हँसमुख काफी ले आया था। बड़े स्नेह से उसकी ओर देख कर कृष्णन ने कहा, 'किसके लिये ? मेरे हँसमुख के लिये ? आप लोगों के शो-वो में तो इसे तनिक भी रुचि नहीं। उसे तो बस मायरा बानो ही जँचती है। आपके फंक्शन में वे तो पधारेंगी नहीं ?'

सब की निगाहें हँसमुख पर जा टिकीं। झेंप के मारे मिटा जा रहा था बेचारा, मगर चमकीले दाँत उसी तरह दीख रहे थे।

टिकट हाथ में ले, मोहित से कृष्णन ने पूछा, 'इस नाटक में कौन लोग भाग ले रहे हैं ?'

'सभी हमारे क्लब के सदस्य हैं। केवल महिला भूमिकाओं के लिये कलाकार बाहर से लाने पड़ते हैं।'

सुव्रत ने बताया, 'निर्देशन इन्हीं का है। साथ ही नायक का रोल भी।'

'नायक ? यानी हीरो ? हमारे वतन में हीरो तो भारी-भरकम, गोल-मटोल, भोला-भाला होता है, जैसा कि सिनेमा के पर्दे पर हरदम देखता हूँ। भारी गाल, फटी-फटी आँखें—जिन्हें 'बोवाइन आईज' कहा जाता है। आपकी शक्ल-सूरत ऐसी तो नहीं है।'

सुव्रत हँस दिया। मोहित ने कहा, 'बजा फर्मा रहे हैं आप। मैं शायद विलेन की भूमिका में ही ठीक लगूँ। मगर उसमें जरा दिक्कत और नुकसान यह है कि अभी जो दो-चार फैन हैं, वे सब भाग खड़ी होंगी। खैर, अब हम चलें। आप अवश्य आइयेगा। तारीख नोट कर रखिये। बुधवार, सत्तरह तारीख, शाम के सात बजे।'

उनके जाते ही कृष्णन बगल वाले कमरे में चला गया।

मँझोले आकार का कमरा। अस्त-व्यस्त सामान ज्यादा नहीं। जो है, वह सब बेतरतीब। देखने पर यही लगेगा कि उनकी देख भाल नहीं होती। एक ओर एक आराम कुर्सी है। उसके बायें हत्थे पर दो-चार जर्नल दायें हत्थे पर एक फटी कमीज। सामने फर्श पर पुराने अखबार। देखने पर यही ख्याल आता है कि ये सारी चीजें कई दिनों से इस जगह की शोभा बढ़ा रही हैं।

दूसरी ओर की दीवाल से टिके इज़ेल पर एक असमाप्त चित्र। थोड़ी देर

ऊपर जाने "
अन्दर ... इस पर रंग चढ़ाया जा रहा था। जहां-जहां कूंची चलाई गई थी
...हां अभी पूरी तरह रंग सूखा नहीं था। रंग का निखार भी नहीं आया
...। ऐसा भी हो सकता है कि वे हिस्से यों ही रहें—बाकी हिस्सों की तुलना में अस्पष्ट और अनुज्वल।

कलाकार के मन में क्या है, यह तो वही जानता है। कम-से-कम चित्र पूरा नहीं हो जाने तक—जब तक कूंची की आखिरी लकीर खिंच नहीं जाती।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि स्वयं कलाकार भी नहीं जानता कि कूंची की अन्तिम लकीर कौन सी या कैसी होगी। कल शाम को जिसे समाप्त जान कर अलग हटाया था, आज सुबह उस पर फिर कूंची फेरना पड़ जाता है।

कल की मनःस्थिति और आज की मनःस्थिति कभी एक सी नहीं होती। कल शाम की दृष्टि और आज सुबह की दृष्टि में अन्तर है।

पिछली रात जब कलाकार महाशय सोने की तैयारी कर चुके, तब इस चित्र ने उनका पीछा किया। इजेल के फ्रेम से निकल कर वह उनकी बन्द आंखों के सामने खड़ा हो गया, नींद की झपकियों में भी उसका आना-जाना बन्द न हुआ। एकाएक खुली नींद के आधे-अन्धेरे में चित्रकार उसे देखते रहे। उस समय उन्हें लगा कि यह अपूर्ण है। 'अपूर्ण' शब्द शायद ठीक नहीं। कहना चाहिये कि यह अभी बना ही नहीं है। मतलब यह कि मानस-पट पर जो था, कैनवास पर वह आया ही नहीं। वह पकड़ में आया नहीं। शायद कलाकार की उंगलियां या उसकी कूंची ने उसके साथ धोखा किया है, या शायद अयोग्यता के कारण अपनी चिन्ताधारा के साथ कदम मिल कर बढ़ न पाये, पिछड़ गये। ऐसी घटनायें कलाकार के जीवन में तो होती ही रहती हैं।

उनके अन्दर बसने वाले स्रष्टा तक उनकी कला पहुँच नहीं पाती।

रात्रि के अन्धकार में जो इजेल से निकल कर उनके सामने आया, उसे देख कर उन्हें लगा कि उनकी आंखों की पुतलियों में वे जिस भाव को डालना चाहते थे, वह प्रस्फुटित न हो सका है। अगर वह चित्र किसी पुरुष का है, तो उसके चिबुक में, होठों में, बाहुओं में पौरुष की व्यंजना का अभाव है। चित्र अगर नारी का है तो गोद पर रखे बांये हाथ में वे जिस शान्त, अनायास नम्रता को रूपायित करना चाहते थे, उसके स्थान पर प्रगल्भता का आभास छलक आया है। स्वल्पावृत, सुपुष्ट वक्ष द्वारा अतृप्ति की जिस वेदना को वे प्रकट करना चाहते थे, यौवन की उद्दाम अहमिका ने उसकी जगह ले ली है।

अतएव, सुबह उठ कर, रात्रि को छोड़े गये चित्र को, नई दृष्टि से देखेंगे कलाकार। ट्रे के नन्हें-नन्हे छेदों में गोलाकार सजाई गई कूचियों में से दो-तीन उठा लेंगे। उन्हीं से यहां-वहां दो-चार बारीक रेखायें, हल्के हाथों कुछ थोड़ा-बहुत अदल-बदल। कहीं हल्के रंग पर घने रंग का मृदुल स्पर्श, कहीं गाढ़े को

हल्का बनाना। रंग का ही केवल नहीं, रेखाओं का भी परिवर्तन कहीं-कहीं पर होगा। रेखा जहां अति ऋजु है, वहां उसे जरा सा झुका कर, जहां अंग कोमलता के कारण झुका हुआ है, उसमें दृढ़ता की व्यंजना ला कर बदलना। ऐसे ही न जाने कितने हेर-फेर।

इसी को कलाकार की साधना कहते हैं। इसी प्रकार निरन्तर तोड़ना बनाना, घिसना, माँजना, हेर-फेर। उत्तम से उत्तमतर की ओर निरन्तर अभियान। 'परफेक्शन' यानी 'उत्तमतम' शब्द उनके कोष में है ही नहीं। तृप्ति नहीं, सन्तोष नहीं। बार-बार यही लगता है कि नहीं हुआ, नहीं हुआ। कहीं कुछ बाकी रह गया। अपने बनाये चित्रों के प्रति इस कभी न मिटने वाले असन्तोष से उनकी मुक्ति नहीं। जिस दिन इस भावना का अन्त हो जायेगा, जिस दिन यह लगेगा कि मैं तृप्त हूँ, पूर्णता प्राप्त की है मैंने, उनकी मृत्यु उसी दिन होगी, अवसान हो जायगा उनकी शिल्पी सत्ता का।

इजेल के सामने खड़े हो कृष्णन अधूरे चित्र को अपलक निहारते रहे। फिर मोढे पर बैठ कर एक कूँची उठा ली।

कुछ दिन पहले वे दार्जिलिंग घूमने गये थे। अधिक दिन रह न पाये थे। इधर काम का तकाजा था। मतलब यह कि दो-तीन फर्मायशी चित्र भर पूरा कर पाये थे, उन्हीं के तकाजे बार-बार आ रहे थे। अपनी ओर से भी आवश्यकता थी। पूरा कर देने पर ही थोड़ी बहुत मुद्रा प्राप्ति होती। उसकी आवश्यकता तो हर समय लगी ही रहती है। कभी-कभी तो आवश्यकता बहुत अधिक हो जाया करती है।

तनिक दिन पहले इस झमेले का अन्त हो गया है। जेब इस समय इतनी भारी है कि कुछ दिनों के लिये फर्मायशी कामों से छुटकारा मिल गया है। किसी स्थूल-रुचि शिल्पपति की स्थूलकाया पत्नी का पोर्ट्रेट, शादी में सौगात देने लायक उपन्यासों के प्रकाशकों का पसन्दलायक आवरण, नहीं तो कला के 'क' से अज्ञान किसी कलाप्रेमी के ड्राइंग-रूम की सज्जा-सामग्री—यह सब कठिन कार्य न भी करें तो निकट भविष्य में भूखों मरने की संभावना नहीं। अतएव बेफिक्र होकर मन की कर सकते हैं।

इस बार की दार्जिलिंग यात्रा कृष्णन तथा और लोगों के लिये विशेष सुखद न हुई थी। समतल भूमि की भयंकर गर्मी से जान बचा कर कुछ दिन शैत्य का उपभोग करना ही जिनका उद्देश्य है, उनकी बात दूसरी है। विलासिता के उपकरणों से पूर्ण बड़े-बड़े होटल, पान-भोजन की मस्ती, झुण्ड बना कर इधर-उधर बेमतलब की दौड़-धूप, यहाँ-वहाँ हो-हल्ला करना और फोटो उतरवाना, यही सब जिनका मुख्य आकर्षण है, उनके दुःखी होने का कोई कारण न था। हताशा हुई उन अनगिनत नर-नारियों को जो बड़ी आशा से

ऊपर जाने ˜
अन्दर ?˜ इस पर रंग चढ़ाया जा रहा था। जहाँ-जहाँ कूंची चलाई गई थी
ःहाँ अभी पूरी तरह रंग सूखा नहीं था। रंग का निखार भी नहीं आया
ा। ऐसा भी हो सकता है कि वे हिस्से यों ही रहें—बाकी हिस्सों की तुलना में अस्पष्ट और अनुज्वल।

कलाकार के मन में क्या है, यह तो वही जानता है। कम-से-कम चित्र पूरा नहीं हो जाने तक—जब तक कूंची की आखिरी लकीर खिच नहीं जाती।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि स्वयं कलाकार भी नहीं जानता कि कूंची की अन्तिम लकीर कौन सी या कैसी होगी। कल शाम को जिसे समाप्त जान कर अलग हटाया था, आज सुवह उस पर फिर कूंची फेरना पड़ जाता है।

कल की मनःस्थिति और आज की मनःस्थिति कभी एक सी नहीं होती। कल शाम की दृष्टि और आज सुवह की दृष्टि में अन्तर है।

पिछली रात जब कलाकार महाशय सोने की तैयारी कर चुके, तब इस चित्र ने उनका पीछा किया। इजेल के फ्रेम से निकल कर वह उनकी बन्द आँखों के सामने खड़ा हो गया, नींद की झपकियों में भी उसका आना-जाना बन्द न हुआ। एकाएक खुली नींद के आधे-अन्धेरे में चित्रकार उसे देखते रहे। उस समय उन्हें लगा कि वह अपूर्ण है। 'अपूर्ण' शब्द शायद ठीक नहीं। कहना चाहिये कि वह अभी बना ही नहीं हैं। मतलब यह कि मानस-पट पर जो था, कैनवास पर वह आया ही नहीं। वह पकड़ में आया नहीं। शायद कलाकार की उँगलियाँ या उसकी कूंची ने उसके साथ धोखा किया है, या शायद अयोग्यता के कारण अपनी चिन्ताधारा के साथ कदम मिल कर बढ़ न पाये, पिछड़ गये। ऐसी घटनायें कलाकार के जीवन में तो होती ही रहती हैं।

उनके अन्दर बसने वाले स्रष्टा तक उनकी कला पहुँच नहीं पाती।

रात्रि के अन्धकार में जो इजेल से निकल कर उनके सामने आया, उसे देख कर उन्हें लगा कि उनकी आँखों की पुतलियों में वे जिस भाव को डालना चाहते थे, वह प्रस्फुटित न हो सका है। अगर वह चित्र किसी पुरुष का है, तो उसके चिबुक में, होंठों में, बाहुओं में पौरुष की व्यंजना का अभाव है। चित्र अगर नारी का है तो गोद पर रखे बाँये हाथ में वे जिस शान्त, अनायास नम्रता को रूपायित करना चाहते थे, उसके स्थान पर प्रगल्भता का आभास छलक आया है। स्वल्पावृत, सुपुष्ट वक्ष द्वारा अतृप्ति की जिस वेदना को वे प्रकट करना चाहते थे, यौवन की उद्दाम अहमिका ने उसकी जगह ले ली है।

अतएव, सुबह उठ कर, रात्रि को छोड़े गये चित्र को, नई दृष्टि से देखेंगे कलाकार। ट्रे के नन्हें-नन्हें छेदों में गोलाकार सजाई गई कूचियों में से दो-तीन उठा लेंगे। उन्हीं से यहाँ-वहाँ दो-चार बारीक रेखायें, हल्के हाथों कुछ थोड़ा-बहुत अदल-बदल। कहीं हल्के रंग पर घने रंग का मृदुल स्पर्श, कहीं गाढ़े को

हल्का बनाना। रंग का ही केवल नहीं, रेखाओं का भी परिवर्तन कहीं-कहीं पर होगा। रेखा जहाँ अति ऋजु है, वहाँ उसे जरा सा झुका कर, जहाँ अंग कोमलता के कारण झुका हुआ है, उसमें दृढ़ता की व्यंजना ला कर बदलना। ऐसे ही न जाने कितने हेर-फेर।

इसी को कलाकार की साधना कहते हैं। इसी प्रकार निरन्तर तोड़ना बनाना, घिसना, माँजना, हेर-फेर। उत्तम से उत्तमतर की ओर निरन्तर अभियान। 'परफेक्शन' यानी 'उत्तमतम' शब्द उनके कोष में है ही नहीं। तृप्ति नहीं, सन्तोष नहीं। बार-बार यही लगता है कि नहीं हुआ, नहीं हुआ। कहीं कुछ बाकी रह गया। अपने बनाये चित्रों के प्रति इस कमी न मिटने वाले असन्तोष से उनकी मुक्ति नहीं। जिस दिन इस भावना का अन्त हो जायेगा, जिस दिन यह लगेगा कि मैं तृप्त हूँ, पूर्णता प्राप्त की है मैंने, उनकी मृत्यु उसी दिन होगी, अवसान हो जायगा उनकी शिल्पी सत्ता का।

इजेल के सामने खड़े हो कृष्णन अधूरे चित्र को अपलक निहारते रहे। फिर मोढ़े पर बैठ कर एक कूँची उठा ली।

कुछ दिन पहले वे दार्जिलिंग घूमने गये थे। अधिक दिन रह न पाये थे। इधर काम का तकाजा था। मतलब यह कि दो-तीन फर्मायशी चित्र भर पूरा कर पाये थे, उन्हीं के तकाजे बार-बार आ रहे थे। अपनी ओर से भी आवश्यकता थी। पूरा कर देने पर ही थोड़ी बहुत मुद्रा प्राप्ति होती। उसकी आवश्यकता तो हर समय लगी ही रहती है। कभी-कभी तो आवश्यकता बहुत अधिक हो जाया करती है।

तीनेक दिन पहले इस झमेले का अन्त हो गया है। जेब इस समय इतनी भारी है कि कुछ दिनों के लिये फर्मायशी कामों से छुटकारा मिल गया है। किसी स्थूल-रुचि शिल्पपति की स्थूलकाया पत्नी का पोर्ट्रेट, शादी में सौगात देने लायक उपन्यासों के प्रकाशकों का पसन्दलायक आवरण, नहीं तो कला के 'क' से अनजान किसी कलाप्रेमी के ड्राइंग-रूम की सज्जा-सामग्री—यह सब कठिन कार्य न भी करें तो निकट भविष्य में भूखों मरने की संभावना नहीं। अतएव बेफिक्र होकर मन की कर सकते हैं।

इस बार की दार्जिलिंग यात्रा कृष्णन तथा और लोगों के लिये विशेष सुखद न हुई थी। समतल भूमि की भयंकर गर्मी से जान बचा कर कुछ दिन शैत्य का उपभोग करना ही जिनका उद्देश्य है, उनकी बात दूसरी है। विलासिता के उपकरणों से पूर्ण बड़े-बड़े होटल, पान-भोजन की मस्ती, झुण्ड बना कर इधर-उधर बेमतलब की दौड़-धूप, यहाँ-वहाँ हो-हल्ला करना और फोटो उतरवाना, यही सब जिनका मुख्य आकर्षण है, उनके दुःखी होने का कोई कारण न था। हताशा हुई उन अनगिनत नर-नारियों को जो बड़ी आशा लेकर

गये थे वहाँ, कि जी भर कर आँखें भर कर देखेंगे उन्हें, जो दार्जिलिंग की महिमा के शिखर हैं, इस सुन्दर शैल-नगरी की सुषमा पर जो सर्वत्र व्याप्त हैं—कंचनजंघा नाम है जिनका ! उन्होंने इस वार वादलों का घूंघट उठने ही न दिया । वहुत-वहुत मिन्नतों के वावजूद भी भक्तों को दर्शन न दिया ।

इन अभागे भक्तों में कृष्णन भी था । उसके लिये दार्जिलिंग कोई नई जगह नहीं है, कंचनजंघा भी देखा है उसने कई वार । परन्तु हर वार ऐसा लगा है कि इसे पहले कभी देखा ही नहीं, आज ही पहली वार सामना हो रहा है । यह अनुभूति शायद हरेक की नहीं, किसी-किसी की होती है । वह वे लोग हैं जिनके लिये सूर्योदय जैसी नित्यप्रति घटने वाली घटना भी हर दिन नयापन लेकर आती है—मानो वह एक परम आविर्भाव हो ।

कंचनजंघा के छिप जाने से जैसे सारी खुशी ही गायव हो गई । कृष्णन ने इस घाटे को पूरा करने की अन्यान्य चेष्टायें कीं । जितने दिन वहाँ रहा, रोज ही शहर के वाहर, भीड़ और कोलाहल से दूर चला जाता था, जहाँ मानव मुख शायद ही दिखाई पड़े । उनके वदले उसके साथी होते थे मौन पर्वत, श्यामल वन, शुभ्र मेघ । उन्हीं के वीच कहीं थोड़ा सा लाल रंग—वहुत सस्ती चीज, लहरियादार टीन की छत, जिसका अपना कोई सौन्दर्य नहीं है, मगर परिवेश के गौरव से अनुपम ।

कैमरा कृष्णन के पास न था, थीं दो आँखें । इनकी शक्ति कैमरे के लेन्स से कम न थी । आँखों के इन लेन्सों में वह कुछ चित्र जोड़ लाया था । इच्छा थी कि मौका लगते ही इन लेन्सों में समायी वस्तुओं को चित्रित करेगा ।

इतने दिनों वाद वह मौका आया है । जिस चित्र को आरम्भ किया था, यानी स्मृति की रेखाओं को कागज की रेखाओं में परिवर्तित करना आरम्भ किया था, उसको सूचना भी दार्जिलिंग की एक अपरचित सड़क के किनारे हुई थी । उस दिन सुवह-सवेरे जव घूमने निकला, तव इरादा था सिचल लेक जाने का । उसी के अगल-वगल टहलते-टहलते न जाने क्या ख्याल आया । 'घूम' के रास्ते से न जाकर, उल्टी तरफ की एक कच्ची सड़क से उतर चला । सामने तराई फैली थी । उसकी वगल में ढालू सड़क । वहुत देर तक चलते-चलते वह सड़क एक लकड़ी के पुल से जा मिली । अव ख्याल आया कि लौटना चाहिये । यह मगर पता न था कि किस ओर चलने से किधर पहुँचा जायेगा । पूछ-ताछ करने लायक कोई दिखाई भी न पड़ा ।

घड़ी लेकर चला नहीं था । सूर्य नारायण आँख-मिचौली खेल रहे थे । कभी वादलों में और कभी कुहासे के पीछे छिप कर । सो यह भी मालूम न हो सका कि वक्त कितना हो चुका है । पेट के अन्दर जो चूहे कूद रहे थे, उससे वेशक, वक्त का कुछ अन्दाजा लगा । उसे शान्त करने का थोड़ा वहुत इन्तजाम अपने साथ ही था । कन्धे से लटकते झोले में सैण्डविच और फ्लास्क में काफी ।

पुलिया के रेलिंग से पीठ टिका कर खा लिया। अब क्या करें? आज तो बस ऐसे किसी की राह में आँखें बिछाये बैठे रहना है जो राह सुझावे! कोई भी, कैसा भी आदमी।

सोचते-सोचते हँस पड़ा। इन्हीं आदमियों से दूर जाने के लिये ही तो लोकालय छोड़-छाड़ कर भाग निकला था न!

मगर कहाँ था कोई आदमी? इधर-उधर निगाह दौड़ा कर लगा कि प्राणि-जगत् से बाहर वह कहीं चला आया है। ऐसा लगा कि चारों ओर से प्राण-हीन पहाड़ों की अभेद्य प्राचीर से घिर गया है, ऐसे पहाड़ जिन पर फैले हैं निःशब्द घने जंगल। प्राणों का स्पन्दन किसी ओर भी नहीं। शब्द के नाम पर पुलिया के बहुत नीचे से बहते झरने का दबा-दबा गर्जन।

सहसा किसी अनदेखे अन्तराल से हँसी की लहराती झंकार उस तक आ पहुँची। परिवेश क्षण भर में पूर्णतः बदल गया। गूँगी, बेजान प्रकृति वाणी से, प्राण से भर गई। कृष्णन को लगा कि अब तक जो ऊबा देने वाली पहाड़ों और पेड़ों की भीड़ थी वही सहसा वर्डसवर्थ की एक भूली-बिसरी कविता में बदल गई। शायद ऐसी ही किसी जन-मानवहीन पहाड़ की गोद में, अरण्य की छाया में, दूर से सुने किसी मधुर कण्ठ-स्वर के आधार पर ही जन्म लिया था उनकी 'लूसी ग्रे' ने।

पुलिया की बाईं तरफ जो पहाड़ सीधे ऊपर उठ गया है उसी के किसी मोड़ की आड़ से पतली पगडण्डी से होती हुई धीरे-धीरे सामने आईं दो नारियाँ। जो आगे थी उसकी पीठ से एक 'डोका' लटक रहा था। सामने को काफी झुक कर उसे उतराई उतरना पड़ रहा था। जो पीछे थी उसकी पीठ पर कोई बोझ न था। इस कारण, ढलान पर चलते समय शरीर का जितना झुकना आवश्यक है उस पर ध्यान न देने से, लगता था उसकी गति पूर्ण रूप से अबाध और स्वच्छन्द है। उतर कर और कुछ आगे आकर घुमाव के आगे पड़े पत्थर पर जब वह सीधी खड़ी हो गई, उसका समूचा अवयव पूर्ण रूप से खिल उठा। कृष्णन देखता ही रह गया। अपने अनजाने ही वह बोल पड़ा, "वाह!"

इतना सुन्दर, इतना दोषरहित, ऊपरी अंगों का ऐसा सुसम विन्यास उसने पहले कभी न देखा था। मुग्ध एकाग्र दृष्टि से कृष्णन उसे देखता रहा। उसे यह भी ख्याल न रहा कि वह युवती है, उसकी ओर इस प्रकार देखना अशालीनता है।

बहुत कुछ इससे मिलती-जुलती छवि उसने एक बार देखी थी वीरभूमि में।

मगर वह परिवेश इससे बिल्कुल भिन्न था। वर्षा शुरू हो चुकी थी। खेतों में बोने का काम शुरू हो गया था। ऊँचे आल बँधे खेतों में घुटने भर कीचड़ में खड़ी चार सन्थाल रमणियाँ धान के पौधे बो रही थीं। जल्दी-जल्दी चलते उनके हाथों की गति निहारते-निहारते चला जा रहा था कृष्णन।

एकाएक उनमें से एक उठ कर खड़ी हो गई। उसकी साथ ही कृष्णान की गति भी रुक गई। चेहरा-मोहरा अच्छा ही था, मगर वहाँ उसे कुछ खास न मिला। 'काली लड़की के काले हिरण-नयन' के जादू ने भी उसे नहीं लुभाया। और नीचे उतर कर मगर उसकी निगाहें ठहर गई। उसके दोनों बगल से निकले बाहुलताओं से कमर तक का अंश (फटे मैले आँचल के उस टुकड़े की बिसात क्या कि उस सौन्दर्य को छिपा कर रखे ?) ऐसा कि मानो किसी प्राचीन ग्रीक कलाकार ने काले ग्रैनाइट के एक टुकड़े को काट-काट कर तैयार किया हो। उसकी हर एक गोलाई और रेखा में उस कलाकार की निपुणता के नमूने भरे पड़े थे।

उसमें फिर भी कुछ न कुछ कमियाँ दीख ही गई थीं। ध्यान से देखने पर उसकी कला पारखी आँखों से वे पकड़ ही गई थीं। लेकिन आज ध्यान-मग्न हिमालय की इस निर्जन नीरवता के बीच, मानवदृष्टि के अगोचर जो मानवी देह उसके सामने सहसा प्रकट हो गई, वह तो विधाता नामक परम कलाकार के हाथों बनी है। उसके किसी अंग में कहीं कोई त्रुटि नहीं है। परिपूर्ण अनवद्य है वह।

कृष्णान ने देखा है, पहाड़ी युवतियों के अंगों में कान्ति, श्री, लावण्य और दीप्ति जितनी भी क्यों न हों, गठन सुषमा अंगरेजी में जिसे 'ब्यूटी-आफ-फार्म' कहते हैं, वह कभी अनिद्य नहीं होती। संभवतः लम्बाई की कमी ही इसका प्रधान कारण है। उज्वल नयन, रक्ताभ कपोल, कमलकली सी बाँहें, यह तो यहाँ-वहाँ, हर-जगह जब-तब देखने को मिल जाते हैं। सुगठित देह मगर शायद ही कभी सामने आती है। इस सम्पदा का अधिकार तो विधाता ने मानो खास-खास स्थानों के अधिवासियों के लिये सुरक्षित कर रखा है। सन्थाल परगना, मध्य प्रदेश का आदिवासी अंचल, कश्मीर घाटी और दक्षिण भारत के किसी-किसी भाग में यह देखा जा सकता है। विदेशों की बात उसे मालूम नहीं, कभी जाने का मौका ही न आया।

आज का यह व्यतिक्रम विधाता के मनमौजीपन का निदर्शन है। बहुत बड़े कलाकार है वे, इस कारण बहुत अधिक मनमौजी भी। हर क्षण उनके मन में नई भावनायें जागती रहती हैं। नये-नये रंग आते-जाते रहते हैं। इसका नित नया प्रकाश प्रकृति के अंग-अंग में स्फुटित होता रहता है। मनुष्य विश्व प्रकृति का अंग ही तो है। उसमें भी वैचित्र्य की सीमा नहीं।

यह वाला अगर सभ्य जगत् की सदस्या होती तो कृष्णान की एकाग्र दृष्टि से रुष्ट या संकुचित होती। मगर उसने शायद कभी शहरी जीव देखे न होंगे, देखा भी होगा तो उनकी दृष्टि की भाषा पढ़ना सीखा न होगा। इसलिये उसकी दृष्टि में कौतुक और विस्मय के सिवा और कुछ न था। उसने अपने को ढँकने या छिपाने की चेष्टा भी न की।

पहाड़ी गाँवों की लड़कियाँ साड़ी नहीं बाँधती। कृष्णन की भाषा में 'खुदा पर खुदकारी नही करती'। कपडे के एक छः गजी टुकड़े की सहायता से प्राकृति दत्त आकृति को विकृत करने की चेष्टा नहीं करती। पोशाक उनके लिये आवरण-मात्र है, न भूषण न अलंकार। शरीर के ऊपरी भाग में केवल एक चोला, जो शरीर से लिपटा रहता है, कम-से-कम इस लडकी का ऐसा ही था। उसके कारण उसके उद्दाम यौवन पुष्ट तनुश्री के स्वच्छन्द प्रकाश को कही बाधा न मिली थी।

उसके शरीर पर यह चोला अगर न रहा होता, तो अंग-प्रत्यंग और भी स्पष्ट होते, कलाकार को उनका प्रत्यक्ष साक्षात् प्राप्त होता। मगर ऐसा हो तो नही सकता। कलाकार की आवश्यकता के अनुसार तो समाज और सभ्यता चलते नही। उनके अपने नियम हैं। सामाजिक स्तरों के भेदानुसार उसमें कही कड़ाई है—कही शिथिलता।

अगर यह युवती मुरिया होती, तो चोले की यह पहरेदारी उसके शरीर पर न होती। दार्जिलिंग न होकर अगर यह जगह गंजाम होता—गंजाम का कोई दूर पहाडी भाग, अपनी आदिम निरावरणता मे सज्जित हो यही नारी निःसकोच आ उसके सामने खड़ी हो जाती। चकित होकर उसे निहारती—जैसे राह चलते लोगों को अरण्यचारिणी हिरणी देखती है।

अफसोस यही है कि सब जगह सब कुछ नही मिलता। जो वस्तु एक स्थान पर आसानी से उपलब्ध होती है, दूसरी जगह वही दुर्लभ है। जो रीति एक युग की प्रचलित रीति है, दूसरे मे उसी का बहिष्कार किया जाता है। इन्ही कारणों से कलाकार को भी अपने परिवेश और सीमाओं का ख्याल रखना पड़ता है, देश तथा काल की विभिन्न मान्यताओं को सामने रख कर कला की आवश्यकताओं में काट-छाँट करना पड़ता है।

'कलाकार की स्वतन्त्रता' नाम से एक कहावत प्रचलित है। यह तो सिर्फ कहने की बात है। कुछ लोगों का ख्याल है कि कुछ देशों को—जहाँ कलाकार भी राष्ट्र के नियंत्रणाधीन हैं—छोड़ कर, अन्य सभी जगहों मे कलाकार को अपने मन की करने की स्वतन्त्रता है। यह, उन्हें नही मालूम कि बेचारे कलाकार को हर कदम पर कितनो ही बार अपनी छोटी-बड़ी इच्छाओं का गला घोट देना पड़ता है।

मसलन, इसी क्षण कृष्णन सोच रहा था कि अगर वह इस कन्या से जाकर कह सकता—'जरा बाई तरफ घूमो तो', 'मेरी तरफ पीठ करके खडी हो जाओ तो,' 'इधर जरा इस पुलिया पर चलो तो, मैं तुम्हारी चाल की छन्द को देखना चाहता हूँ' तो कितना अच्छा होता!

कहने की इच्छा तो बहुत हुई, मगर उस इच्छा को मन मे ही रख लेना पडा। बीच रास्ते मे, अनजान, अपरिचित किसी महिला से ऐसी बाते नही कही

जातीं। पहाड़ों पर रहने वाली गाँव की लड़की हुई, तो क्या हो गया ? न जाने क्या सोच वैठे वह, न जाने क्या सोच वैठे उसकी प्रौढ़ा साथिन। लगता तो ऐसा ही है कि इस सुनसान पहाड़ी पथ पर इस लड़की का साथ देने के लिये ही वह पौढ़ा संग आई है। यहाँ भी समाज है, यहाँ भी सुन्दर नारी की रक्षा करने की आवश्यकता है, भव्यता और शालीनता के प्रश्न हैं।

वह लड़की अवश्य इस वात से अनजान न थी कि कृष्णन का सारा ध्यान उसी पर केन्द्रित है। इसका उसने क्या सोचा, क्या अर्थ निकाला उसने इसका, यह तो वही जाने। चन्द मिनटों तक उसी पत्थर पर खड़ी रहने के वाद अपनी साथिन को देख कर खिलखिलाई। हाँ, यह वही खिलखिलाहट है जो कुछ देर पहले पहाड़ की ओट से सुनाई दी थी। इस वार भी उसकी लहरें लहरा कर चारों तरफ विखर गईं।

अगले ही क्षण अपने मुग्ध दर्शक की ओर अन्तिम वार देख कर वह उतराई की राह पकड़ धीरे-धीरे नीचे उतर गई।

कृष्णन की इच्छा किसी हद तक पूरी हुई। जब वह जाने लगी, उसके शरीर का पिछला हिस्सा भी उसने देखा, कन्धों से लहराते वाहुलताओं के स्वच्छन्द अवतरण को परिपूर्ण दृष्टि से देखा। पीठ देख कर लगा कि उसकी गति सरल है, मगर कमर तक पहुँचते-पहुँचते उसे पतला होने का मौका न मिला, वड़ी जल्दी जगह खत्म हो गयी है, क्षीण-कटि नारी-देह को जो महिमा प्रदान करती है, यहाँ उसकी कुछ कमी है। उसके कारण मगर अफसोस करने का अवकाश नहीं है। कमर से निम्नांगों के सुसम विस्तार ने इस कमी को पूरी तरह से पूर्ण कर दिया है।

उस दिन कृष्णन अपनी आँखों में जो सौन्दर्य भर लाया था, इतने दिनों वाद उसे प्रस्फुटित करते समय कृष्णन ने देखा चित्र सम्पूर्ण नहीं है, कुछ भाग खो गये हैं। ऐसा ही होता है।(मन नाम का जीव विशेष विश्वसनीय नहीं है। विश्वास भंग करना ही उसका धर्म है। उसे जो कुछ सहेज कर रखने को दिया जाता है, उसका कुछ न कुछ भाग वह अवश्य ही खो देता है।)

दार्शनिकजन मन की तुलना पुस्तक के साथ करते हैं। कहते हैं 'मन का पृष्ठ'। उस पर जो छप जाता है वह छापेखाने में छपे अक्षरों की माला नहीं, होती अधिकाधिक संख्या में उस पर हाथ से लिखी कच्ची स्याही की लिपि होती है। लिखावट समय के साथ धुँधली पड़ती जाती है, कोई-कोई तो विल्कुल मिट ही जाता है।

मन का मेल, पुस्तक के पृष्ठ से अधिक स्लेट से है। कोई लिखावट उस पर स्थायी नहीं होती। पुरानी लिपि मिट जाती है, नई आकर उस पर अधिकार जमा लेती है। लिखना, मिटना और फिर नया लेख लिखने वाला खेल निरन्तर

जीवन भर चलता रहता है।

कूँची हाथ में लिये कृष्णन मन की गलियों को कुछ देर टटोलता रहा। गले की वह सुकोमल रेखा पकड में आकर भी न आई। वक्षस्थल का वह उन्नत रूप फिर भी विनम्र रूप लेकर न आया। मुखाकृति करीब-करीब ठीक ही है, मगर चिबुक के निचले हिस्से मे कुछ कमियाँ रह गई हैं।

नाराज हो कर वह उठ खडा हुआ। स्टुडियो के सामने खुली छत है। कुछ देर वहाँ टहलता रहा। वह जान गया, केवल स्मृति ही उसे धोखा नहीं दे रही है, मन की वह विशेष अवस्था जिसे 'मूड' कहते हैं, वह भी अनुकूल नही। इस समय एक प्याली—

आइडिया दिमाग मे आते ही उसने देखा कि हँसमुख आ रहा है। दातो की पत्तियाँ इधर से उधर फैली हुई।

'समझ गया न ? खूब जल्दी लाना मगर।'

'अभी लाया साब।' सीढी से उतरते हुये हँसमुख ने कहा, 'पीकर नहा लीजियेगा, खाना तैयार है।'

'नहाना ?' घडी देखने को मुडा कृष्णन। 'अरे, इतनी देर हो गई है ? काम तो कुछ हुआ ही नही।'

ग्लानि और निराशा से मन भर गया। न, काम कुछ भी नही हो रहा है।

॥ दो ॥

भवानीपुर का यह छोटा सा पुराना मकान कृष्णन की पैतृक सम्पत्ति है। कृष्णस्वामी रंगनायन बी. एन. रेलवे के किसी दक्षिण भारतीय शाखा से अपनी चेष्टा के बल पर कलकत्ते के हेड आफिस में आ गये थे। बहुत लोगों ने अवाक् हो कर माना था—खास कर घर-वालों और रिश्तेदारों ने। घर छोड कर भला कौन सा बुद्धिमान इतनी दूर जाता है ? घर पर सुविधाओं का अन्त नही। मकान लेना न पडता, घर से कार्य-क्षेत्र दो-चार घन्टों के फासले पर है। शनिवार को जाकर सोमवार को बड़ी आसानी से लौटा जा सकता है। रंगनायन कर भी ऐसा ही रहे थे। बस एक ही बेटा, कृष्णन। वही स्कूल मे पढता था। स्कूल खत्म होने पर कम खर्च वाले कालेज का इन्तजाम भी आसानी मे आस ही पास में हो सकता था।

मगर रंगनायन का ध्यान निकट नही, दूर भविष्य पर था। केवल अपना ही नहीं, बेटे का भी।

पहले में, यानी उनके अपने मामले में उनका उद्देश्य आरम्भ से ही सिद्धि

की राह पर था। कर्मठ तो थे ही, अपनी योग्यता पर आस्था भी रखते थे। छोटी शाखा दफ्तर की संकीर्ण परिधि में उसका पूर्ण प्रयोग करने का मौका उन्हें मिल न रहा था। हेड आफिस ही उनका योग्य कार्य-क्षेत्र था। उसी कारण घर, पत्नी, पुत्र-परिजनों को छोड़ वे बड़े शहर में चले आये और वहाँ की हजार दिक्कतों को उन्होंने खुशी-खुशी झेला। इस हिसाब में उन्होंने भूल भी न की थी। ऊपर चढ़ने के लिये जिस रस्सी की आवश्यकता होती है—यानी ऊपर वालों की कृपा-दृष्टि, वे उसे बड़ी जल्दी ही पा गये थे। इस अमूल्य वस्तु की प्राप्ति दैवी लीला से नहीं, उन्होंने अपनी योग्यता से अर्जित किया था। उस कला के वे धनी थे, इसीलिये प्राप्त कर सके थे।

कृष्णस्वामी के अगल-बगल बैठने वाले बाबुओं ने अचरज से देखा कि यह साँवला, लम्बा, चेचक की दागों वाला 'मद्रासी' एक ही छलाँग में बदरंग मेजों वाले हाल से उठ कर सुन्दर चादर ढँके मेज के पीछे जा बैठा है। चन्द सालों में वहाँ से उठ कर लकड़ी और शीशे से घिरे छोटे कमरे का एकमात्र अधिकारी बन बैठा। सामने सेक्रेटेरियट टेबल पर सुशोभित टेलीफोन, पीछे गद्दीदार कुर्सी, बाहर वर्दीदार चपरासी।

पुराने साथियों को अधिक आश्चर्य न होता। जो सीनियर थे वे कनिष्ठों से कहते, 'देखो, नौकरी करने का सही तरीका।'

वे कहते, 'देख कर होगा क्या? यह तो केवल उन्हीं के लिये संभव है। काम-न-धाम, सात बजे तक वह आदमी दफ्तर में चुपचाप बैठा रहता है। किस कारण? आफिसर अभी तक गये नहीं हैं। होगा आपसे ऐसा?'

सुनने वाले ने गर्दन हिलाई, 'नहीं साहब, इतना मुमकिन नहीं।'

दूसरे ने बातचीत की मोड़ घुमाई, 'कुछ भी कहो, मगर यह भी सच है कि ऐसा काम कोई नहीं जो यह आदमी नहीं जानता। हर किस्म का काम सीख रखा है। जब जिसकी जरूरत पड़े। तकदीर की फेर से उसका सीखना काम आ गया।'

'क्या मतलब?'

जिस घटना की ओर इशारा था, उसे अधिक लोग नहीं जानते थे। वक्ता ने उसे सविस्तार सुनाया।

हाल ही की बात है। किसी सेक्शन का चार्ज लेकर कोने वाली मेज पर जा बैठे थे कृष्णन्। साढ़े छः बज गये थे। दफ्तर सूना हो गया था। कहीं कोई नहीं था। बस, राबर्ट साहब के कमरे में पंखा चल रहा था, जैसे रोज चला करता है। बाहर का काम-धाम पूरा करके उन्हें आफिस में आकर बैठते ही तीन बज जाते हैं। मगर उन्होंने हुक्म दे रखा है कि छुट्टी के बाद किसी के रहने की जरूरत नहीं। उनकी मेज पर अपने-अपने कागजात रख कर सब जा सकते हैं। पारी से केवल एक चपरासी को रहना पड़ता है। उसके लिये ओवर-

टाइम मिलता है। वे खुशी से रहते हैं।

फाइल देखते-देखते व्यस्त होकर साहब ने घंटी बजाई। चपरासी के आते ही पूछा, 'डट् बाबू चला गया ?'

'सब चले गये हुजूर, केवल एक मद्रासी बाबू बैठे हैं।'

'मद्रासी बाबू ? वह कौन है ?'

नाम चपरासी को मालूम न था। वह तो किसी दूसरे सेक्शन का मुलाजिम है। करीब जाकर पूछा, 'आपका नाम क्या है बाबू ?'

'क्यों ?'

'साब पूछते हैं।'

नाम बता कर रंगनायन साहब के कमरे में जा पहुँचे। साहब उन्हें शक्ल से पहचानते थे, शायद यह भी जानते थे कि किस विभाग के हैं। उन्होंने कहा, 'नो, नो, आई डोन्ट वान्ट यू, आई वाज लुकिंग फार डट, माई स्टेनो। डू यू नो हिज अड्रेस ?'

रंगनायन ने बताया कि स्टेनो का पता तो वे नहीं जानते, मगर आवश्यकता होने पर उनका काम जैसे-तैसे चला सकते हैं।

साहब ने साश्चर्य पूछा, 'तुम्हें शार्टहैन्ड आती है ?'

'काम चलाने लायक आती है। डिक्टेशन जरा धीरे-धीरे देने से ...'

धीरे से ही शुरू किया था साहब ने, मगर मिनट भर में ही जान गये कि उसकी जरूरत नहीं। निरंजन दत्त से उसकी योग्यता जरा भी कम नहीं।

बहुत जरूरी खत। निरंजन के टाइपराइटर पर चढ़ा कर फौरन ही कर लाये रंगनायन। एकदम शुद्ध टाइप। कान्फीडेन्शियल रजिस्टर में चढ़ा, मुहर लगा खत को रवाना कर घर आये रंगनायन।

मामला अब सबके लिये साफ हो गया। एक ने फर्माया, 'ओह, तो इसीलिये राबर्ट साहब उसे बुला भेजते थे ? मैं देखता था कि वह भी लम्बे-लम्बे डग भरता चला जाता। एक दिन मैंने पूछा भी था, मामला क्या है रंगनायन ? वे हैं सी० सी० एम०, और तुम आडिट डिपार्टमेन्ट के। वे तुम्हें क्यों बुलाते हैं ?'

'क्या कहा उसने ?' लोगों का कौतूहल जागा।

'हँस के बोला, यूँ ही।'

'यूँ ही नहीं। रूल आदि के मामले पर खटका होने से साहब उससे पूछते थे।'

'क्या कहने ! कामर्स-सेक्शन की बातें वह क्या जाने ?'

'जानता न होता तो क्या यों ही बुलाते ? राबर्ट साहब ने अन्त तक उसे अपने डिपार्टमेन्ट में बुला ही लिया था। दो-चार महीने [illegible] देखो, क्या-क्या होता है।'

सामान्य एल० डी० क्लर्क से बहुत ऊँचे चढ़ गये थे रंगनाथन । यह मकान पहले किराये पर लिया था । बाद में मकान मालिक की हालत देख कर काफी हल्के दामों में खरीद लिया था । पत्नी और बच्चों को इसके पहले ही बुलवा लिया था । कृष्णन आशुतोष कालेज में पढ़ता था । बेटा तो बस यही एक । बेटियाँ तीन थीं । भाई से तीनों बड़ी । दो की शादियाँ पहले ही कर चुके थे । एक की करनी थी । उसका पार कलकत्ते आने पर लगाया । तब तक काफी उन्नति कर चुके थे । अच्छा घर-वर देख कर शादी की । वर नेलोर के करीब किसी जगह का रहने वाला, अच्छी माली हालत का, मद्रास के एकाउन्टेन्ट जनरल के आफिस में कार्यरत था । भविष्य उज्ज्वल था ।

जिस परिकल्पना को साकार करने की इच्छा से रंगनाथन कलकत्ते आये थे, अब तक तो वह सफल होता चला आ रहा था, मगर इसके आगे आकर सब गड़बड़ हो गया । मतलब यह कि बेटे के मामले में । रंगनाथन की इच्छा थी कि आई० एस० सी० पास करने पर वह शिवपुर इंजिनियरिंग कालेज में दाखिला ले, वहाँ से निकलते ही उसे रेलवे में लगा देंगे । इसके लिये जमीन वे तैयार कर ही चुके थे । अगर ऐसा होता तो नौकरी की शुरूआत से ही ऊँचा ओहदा—उन्नति के द्वार खुले होते । बेटे को मगर गणित से चिढ़ थी । पिता ने कहा, 'तो फिर कामर्स पढ़ो ।' इंजिनियरिंग जब न हो सको तो बी० काम० ही सही । उन्हें आशा थी कि बी० काम० हो जाने पर भी उसे किसी अच्छी जगह लगवा देंगे । बेटे को यह बात भी न जँची । वह गया बी० ए० पढ़ने, और वक्त आने पर पास भी हो गया ।

नौकरी का सीमा-क्षेत्र सीमित हो गया । फिर भी, इसी में कहाँ क्या हो सकता है पता लगाते रहे और बेटे से कहा, 'एम० ए० में दाखिला ले लो ।'

कृष्णन ने उत्तर दिया, 'मेरे पास समय नहीं है ।'

रंगनाथन बेटे को देखते ही रह गये । उसकी बातें उनकी समझ में न आईं । फिर बोले, 'समय क्यों नहीं मिलेगा ? एम० ए० पढ़ने के अलावा और कौन सा काम है तुम्हें ?'

'मैं चित्रकारी सीख रहा हूँ ।'

'चित्रकारी ?' आसमान से गिरे रंगनाथन को होश सँभालने में ही दो मिनट लग गये । फिर पूछा, 'कहाँ ?'

'श्यामबाजार में, एक चित्रकार के पास ।'

रंगनाथन की बोलती बन्द हो गई ।

उन्होंने देखा था कि स्कूल में पढ़ते समय कृष्णन को चित्रकारी का शौक है । पहले-पहले पेन्सिल, इरेजर, ड्राइंग-बुक । उसके बाद पेंटिंग-बाक्स, कूँची, मोटा कागज, और न जाने क्या-क्या । यह भी उन्होंने देखा था कि पढ़ने के बजाय वह अधिकतर इन्हीं में खोया रहता है । मगर इस विषय पर उन्होंने

उस समस्या का समाधान भी हो जायेगा।

उस सहायिका का न होना आज रंगनाथन को सालने लगा। बेटे पर अब उनका कोई जोर नहीं। जिधर से जोर डाल सकते थे, अब वह द्वार बन्द हो गया है। मर कर पत्नी ने उन्हें एकदम निस्व बना दिया है।

फिर भी, बेटे के मन को फेरने का एक अन्तिम प्रयास उन्होंने किया। धीरे से बोले, 'चित्रकारी करना चाहते हो, ठीक है। मगर उसको तो केरियर नहीं बनाया जा सकता। जब फुर्सत से बैठोगे, बनाया करना। 'हाबी' के तौर पर ठीक ही है। लेकिन नौकरी तो करनी ही है, नहीं तो चलेगा कैसे? और, उसकी तैयारी अभी से ही करनी पड़ेगी।'

कृष्णन का मन हुआ कि तर्क द्वारा पिता को समझाये कि चित्रकारी भी केरियर का माध्यम हो सकता है। उसके कुछ उदाहरण भी उसके ज्ञान में थे। मगर उसने वैसा न किया। उसने सोचा कि उसके सारे तर्क व्यर्थ जायेंगे। उसने केवल कहा, 'मुझे नौकरी नहीं करनी है।'

'इसीसे चलेगा?'

'देखूं।'

नौकरी से रिटायर होने से पहले ही दुनिया से रिटायर हो गये रंगनाथन। डाक्टर की राय में (औरों की राय में भी) इसका कारण था अतिरिक्त और अविराम परिश्रम। नौकरी आखिर पेशा ही है। अधिकतर लोग उसे ऐसा ही मानते हैं। उस पर अगर किसी किस्म का नशा हो (जैसा अक्सर लोगों को होता है) तो वह दूसरी बात है। रंगनाथन का पेशा और नशा दोनों ही थी यह नौकरी, या यों भी कहा जा सकता है कि उनके लिये यह नौकरी पेशे से अधिक नशा ही थी। अन्त के वर्षों में तो यह पूरी तरह से नशा ही हो गई थी। उसी की खुमारी में चलते-चलते एक दिन यकायक थम गये। हृतपिण्ड ने बगावत की। उस बेचारे का भी क्या दोष? चलने की अब उसमें ताकत ही न थी।

लोगों ने जाना, डाक्टर ने भी सार्टिफिकेट पर लिखा, 'अकस्मात हृदय-यंत्र की क्रिया रुकने के कारण......'वगैरह। एकमात्र कृष्णन जानता था यह हार्टफेल्योर न था, हार्टब्रेक—और उसका टूटना उसी दिन शुरू हो गया था जिस दिन नौकरी-पेशे के जाने-पहचाने मार्ग को त्याग कर उसने रंग-कूची-कैनवस का अपरिचित मार्ग अपना लिया था।

यह पथ कितना अपरिचित, अनिश्चितता से भरा हुआ है, इसका थोड़ा बहुत ख्याल तो उसको पहले भी था, मगर अनुभव तनिक भी न था। वह तो बाद में प्रकट हुआ, क्रमशः कठोर से कठोरतर रूप में।

पिता की मृत्यु के बाद देखा गया कि भवानीपुर के इस छोटे के मकान के अलावा उसके लिये और जो कुछ है वह नहीं के बराबर है। रुपया पैसा ज्यादा कुछ वे छोड़ नहीं गये थे। जो था भी उसका ज्यादातर हिस्सा बेटियों के नाम था। खास कर बड़ी दो बेटियों के नाम कर गये थे वे, प्रथम जीवन की गरीबी के कारण जिनके लिये अच्छा घर-वर न चुन सके थे वे। उनके उस घाटे को इस तरह से पूरा करना चाहते थे वे।

कृष्णन को इसका दुःख न था। कानून कुछ भी कहे, बहनों से उसका अधिकार अधिक है, ऐसा ख्याल न था उसके मन में। इसके अलावा, उसने यह भी स्वीकार कर लिया था कि जो धन का उपार्जन करता है, उसे बाँटने-खर्चने का अधिकार भी उसी का होता है। पिताजी को उनकी विवेचना में जो उचित जँचा उन्होंने वही किया, इसमें औरों को कुछ कहने का क्या काम ?

उन दिनों भी उसे चित्रशिल्पी के भविष्य पर प्रबल विश्वास था। कुछ दिनों बाद जब इस विश्वास पर सन्देह की छाया पड़ी, मन में निराशा के बादल उमड़ने लगे, और एक व्यक्ति को गृहस्थी होने के बावजूद भी वह अभावों से घिरने लगा, तब, कभी-कभी उसके मन में यह बात झाँक जाती कि पिताजी ने शायद जान-बूझ कर ही उसे चोट पहुँचाई है। इस तरह उन्होंने उसे उसकी अपरिणामदर्शिता, उसकी अवाध्यता का दण्ड दिया है। मेरा कहना नहीं माना ? ठीक है, फिर मुझसे भी किसी किस्म की आशा न रखना। अपनी इच्छा ही जब तुम्हारे लिये सब कुछ है, तब रहो उसी के भरोसे।

अत्यन्त गंभीर व्यक्तित्व सम्पन्न व्यक्ति थे रंगनाथन। पुत्र से शायद ही कभी वार्तालाप करते, करते भी तो कामकाज की बातें। मगर उनकी नीरवता की आड़ में जो नीरव, निरुच्छ्वास, स्नेहशील पिता छिपे बैठे थे, कृष्णन उनकी उपस्थिति को सदैव अनुभव करता। वह यह भी जानता था कि उनके हिसाब में कोई भूल नहीं हो सकती। एकमात्र पुत्र के कल्याण के लिये बनाई गई उनकी योजनाओं को अपनी जिद के कारण तहस-नहस कर उसने जब एक ऐसा मार्ग अपनाया था जिस पर उन्हें नाम मात्र विश्वास न था, तब उन्हें करारी चोट लगी थी, यह तो कृष्णन ने स्वयं अनुभव किया था। उस आघात के प्रतिघात स्वरूप ही उन्होंने यह कर दिया क्या ? क्या यही उनका प्रतिशोध है ?

नहीं ? पिता के सम्पर्क में आक्रोश या प्रतिहिंसा जैसे शब्दों की कल्पना भी नहीं कर सकता था कृष्णन। उन्होंने जो कुछ किया था, अगर उसमें किसी प्रकार का दण्ड है, तो उसके मूल में है उनकी पीड़ा। जिस सेन्टिमेन्ट से वे हमेशा दूर भागते थे, जिसकी परछाईं से भी परहेज करते थे, हो सकता है, जीवन के अन्तिम वर्षों में, किसी दुर्बल क्षण में उसी ने धर दबाया हो।

पुत्र के भविष्य के लिये रंगनाथन की चिन्ता विभिन्न भावों से प्रकट होती

रहती। अन्तिम दिनों में डाक्टर की राय से, और कभी-कभी कृष्णन के अनुरोध पर वे विश्राम लेते। ऐसी ही एक सुबह लेटे-लेटे ही उन्होंने बेटे को बुलवा भेजा। बोले 'आज नौ बजे एक राजमिस्त्री आयेगा।'

'राजमिस्त्री!' कृष्णन को बड़ा विचित्र लगा। अभी हाल में पुताई हो चुकी है, उसी के साथ मरम्मत का सारा काम भी हो चुका है।

'हाँ। उसे एक काम बताया है। तुमसे होगा? बल्कि उसे मेरे पास बुला लाना, तुम्हें भी समझा दूंगा, क्या करवाना है।'

'आज रहने दीजिये न। आपकी तबीयत संभल जाय, फिर होता रहेगा।'

'नहीं। मैंने बुलाया है उसे। अपने दस काम छोड़ कर वह आयेगा। लौटा देने पर उस बेचारे का घाटा हो जायेगा।'

कृष्णन समझ गया, बाधा देना बेकार है। मिस्त्री के आने पर वह भी पिता के सामने जा पहुँचा।

काम कोई खास नहीं। उनके मकान के बगल से एक गली निकल कर कुछ आगे जाकर रुक गई है। मतलब, जिसे ब्लाइण्ड-ऐली कहते हैं। नीचे के दो कमरे उसके सामने पड़ते हैं। माँ के समय काम आते थे। एक में बहनें आने पर रहतीं, दूसरे में काम में न आने वाला सामान भरा जाता। अभी दोनों खाली पड़े हैं। इन दो कमरों में जो छोटा है, उसकी दीवाल फोड़ कर एक दरवाजा बनाया गया।

उस दिन कृष्णन की समझ में यह न आया कि यहाँ दरवाजा बनवाने का आशय क्या है। सोचा, पिताजी का शौक है। कामकाजी आदमी से चुप तो बैठा जाता नहीं, इसलिये यह सब कर के मन बहला रहे हैं। सोच कर खूब हंसा था वह। उन्होंने भी इस विषय पर कभी बात न चलाई। कुछ दिन बाद, जब उसके अकेले की गृहस्थी में अभाव की छाया पड़ी, तब आई बात समझ में। सामने, सड़क के ऊपर वाला कमरा बैठक है। उसके एक ओर एक घिरा हुआ बरामदा है, जिसके छोर पर चौका है। उसकी दूसरी तरफ बड़ी सी मेज बिछाने पर बढ़िया डाइनिंग-स्पेस बन गई। इस हिस्से को अपने लिये रख कर बाकी यानी तीनेक कमरे उसने किराये पर उठा दिये। किरायेदार का आने-जाने का रास्ता बन गया वही पिताजी का बनवाया ब्लाइन्ड ऐली के नये किवाड़। इस बन्दोबस्त को कार्योपयोगी करने के लिये जिन छोटे-छोटे इन्तजामों की जरूरत थी, वह भी वे कर गये थे। कृष्णन को मालूम भी न था, किराये पर उठाते समय पता चला।

बात छोटी-सी। एक दीवाल फोड़ कर किवाड़ लगवाना। मगर इसी किवाड़ ने कृष्णन के लिये पिता के चरित्र का एक अपरिचित किवाड़ खोल दिया। वे उसे प्राचुर्य में न रख कर अति साधारण भाव से जीवन बिताने

के साधन ही केवल छोड़ गये हैं। इसका भी तात्पर्य है। जैसे उन्होंने स्वयं अपने बाहुबल के भरोसे कदम बढ़ा कर सफलता का रसास्वादन किया था, लगता है पुत्र के लिये भी उनकी कामना कुछ ऐसी ही थी। वह भी अपने इच्छित मार्ग पर आगे बढ़े, उसमें जो शक्ति निहित है, इसका स्फुरण हो। जब तक यह नहीं हो पाता, मोटे खाने-कपड़े का साधन उसके पास थोड़ा बहुत होगा ही।

प्रकृतरूप में पिता की इच्छा क्या थी, यह वह कभी जान न पाया। यह तो उसका अपना अनुमान-मात्र है। फिर भी, स्थिति का इस प्रकार पर्यवेक्षण करने पर उसके मन में शक्ति आई, प्रेरणा आई।

कृष्णन जिनके पास चित्रकारी सीखने जाता, मन्मथ मजूमदार, उन्होंने शुरू-शुरू मे उसे अधिक उत्साह न दिया था। पूछा था, 'चित्रकारी करना क्यों चाहते हो ?'

'अच्छा लगता है, इसलिये।'

'घर पर खाने को है ?'

'है।'

'हमेशा रहेगा ? कभी भी रोटी की चिन्ता न करनी पड़ेगी ?'

इस प्रश्न का उत्तर कृष्णन ने साफ-साफ न दिया था। उसने पलट कर प्रश्न किया था, 'क्या इसके सहारे रोटी नहीं मिल सकती ?'

उत्तर में मजूमदार ने कहा था, 'तब फिर सच्ची वस्तु के कारबारी न हो सकोगे। वह जमाना लद गया। यह नकली— तड़क-भड़क' का जमाना है। कुछ भी बनाओ, उसे आकर्षित करने लायक बनाना है। दृष्टि आजकल ऊपरी सतह पर ठहर जाती है, लोग केवल बाहरी आडम्बर को देखते हैं, भीतर प्रवेश नहीं कर पाते। वह अन्तर्दृष्टि है कितनों के पास ? कितने लोग जानते हैं ? जो जानते थे, वे चल बसे हैं।'

कहते-कहते आँखें बन्द कर सोचते रहे कुछ देर, शायद उन्हीं लोगों के विषय में। फिर कहने लगे, 'तुमने उन लोगों को देखा नहीं। सब मर-खप के खत्म हो गये हैं। उन लोगों के वे विशाल-विशाल महल भी टूट-फूट कर खण्डहर बन चले हैं। दो-चार अभी खड़े हैं। लेकिन उनकी दीवालों पर जो अमूल्य रत्न थे—हजारों रुपयों के तैलचित्र, वे तुम्हें एक भी न मिलेंगे। उनके नालायक कपूतों ने सब बेच खाया है। जानते हो खरीदा किसने है ? विदेशियों ने। अपने देश ले गये हैं। वे चित्रकारी के जानकार हैं। और रखते थे वे, जिन्होंने पानी की तरह पैसा बहा कर ये चित्र बनवाये थे। समझ रहे हो, किनके विषय में कह रहा हूँ ? पुराने जमाने के धनी जमींदार। बहुत बुराइयाँ थीं उनमें बेशक, मगर साथ ही वे कला के प्रेमी थे। उन्हें कलाकार से भी प्रेम था, श्रद्धा थी

उसके प्रति। वे कलाकारों के दुःख-मुसीबत के साथी होते। जिस दिन वे चल वसे, बंगाल से उस दिन कला की इज्जत भी चली गई। आज कलाकार को कौन पूछता है?'

इतने लम्बे व्याख्यान के वाद वे साँस लेने को कुछ देर रुके। फिर कहने लगे, 'आज जिनके पास धन है, उनके पास दृष्टि नहीं, कला के प्रति कोई सुझाव नहीं। वे चित्रों के लिये पैसे खर्च नहीं करते। कुछ लोग मध्यम वर्गीय नाम भर के, असल में, किसी वर्ग के नहीं, उन्हें थोड़ा-वहुत शौक है, पर उनके पास साधन नहीं। इस कारण वे सस्ती चीजों की तलाश करते हैं। सस्ती चीज, यानी नकली। तुम्हें उनके आगे वही पेश करना पड़ेगा। नहीं तो भूखे रह जाओगे। मेरी हालत देख रहे हो न?'

एक वहुत पुराने टूटे-फूटे मकान के एकमंजिले के अन्धकार अपरिसर स्टूडियो की फर्श पर, गन्दी दरी विछाये वैठे, हल्के ढंग से इन वातों को वे कहा करते। कहते और हँसते। उस हँसी में कृष्णन को वेदना की झँकार सुनाई देती। वह वोलता नहीं, एकटक देखता रहता—धँसी हुई उज्ज्वल आँखें, उभरी हुई गले की हड्डियाँ। माथे पर वनी रेखाओं की जाली। प्रतिभा सम्पन्न कलाकार, मगर भाग्य के हाथों पिटा हुआ।

आँखों के आगे दुर्भाग्य का ऐसा जीता जागता उदाहरण देख कर भी कृष्णन ने प्रतिज्ञा की थी कि वह कभी नकली का कारोवार नहीं करेगा, असल का सहारा लेगा, प्रतीक्षा करेगा, स्वीकृति के मिलने की। उसकी साधना में अगर धोखे-वाजी न हो तो सफलता एक दिन न एक दिन आयेगी ही। इस विश्वास पर अडिग रह कर वह धीरे-धीरे आगे वढ़ रहा था।

उसके गुरु एक वात और कहा करते, 'अभी मैं तुमसे कहता रहता हूँ यह वनाओ, वह वनाओ। आगे चल कर देखोगे फर्माइशें तुम्हारे अन्तर्मन से आ रही हैं। उस समय तुम स्वंय ही अपने गुरु होगे। तुम्हारी आत्मा विकसित होगी, तुम्हारी सृष्टि में, उन्हीं में फलित होगी वह। तुम्हारे मन की विचित्र लीला, तुम्हारी चिन्ता—भावना—कल्पना यहाँ तक ही तुम्हारे उद्भट ख्यालात। हाँ उद्भट। ये उद्भट या अद्भुत ख्यालात ही तो सृष्टि के मूल हैं। हमारी इच्छा जागी—यह करो, वस। क्यों जागी इच्छा? पता नहीं। पता करने को आवश्यकता भी नहीं।'

वोलते वोलते उनका क्षीण—दुर्वल स्वर लुप्त हो जाता। कुछ समय के लिये वे जैसे किसी मोहमय सपने में खो जाते। फिर मानो जाग उठते। जाग कर उससे पूछते, 'होगा तुमसे? वोलो?'

उनसे कृष्णन कुछ भी न कहता। मन ही मन मगर कहता, 'क्यों न होगा? अवश्य होगा। मेरी कला होगी मेरी इच्छाओं की वाहिका। वह मेरी कामनाओं को रूपायित करेगी। इसके सिवा उसका और कोई भी उत्तरदायित्व नहीं।'

मगर देखा गया कि एक समय ऐसा भी आया, जब उत्तरदायित्व चाहे
हो, प्रयोजन तो है।

'प्रयोजन' शब्द बड़ा स्थूल, बहुत ही निर्दय, साथ ही अत्यन्त वास्तवि
है। उससे पिण्ड छुड़ा कर भागा नहीं जा सकता। वह है, और हर क्षण
अपने होने का इजहार करता रहता है। उसी के द्वारा ताड़ित हो कर कृष्ण
को अपने ख्यालों की, खुशियों की दुनिया छोड़ कर, धरती पर उतर आन
पड़ा। उसने अपनी कला को अपने मन माफिक खेती करने की छूट दे रख
थी। अब उसे कुछ और काम भी सौंपा गया। खेती ऐसी होनी चाहिये कि
औरों को अच्छी लगे, उनके काम आये।

उसके गुरु ने बताया था कि कलाकार के जीवन में इन 'औरों' का स्था
कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं। उन्होंने कहा था, 'मुझे अच्छा लगा, मैं तृप्त हुआ
यही सब कुछ नहीं है। यह भी देखना है कि मेरा यह अच्छा लगना दूसरों
मन में सचारित हो सका या नहीं। अगर नहीं होता, तो मेरी कला निर
र्थक है।'

साथ ही यह कहना भी न भूले, 'ऐसा मगर नहीं होना है कि लोगों की मां
द्वारा मैं चालित होऊं। दूसरे की पसन्द या मनोरंजन का साधन जुटाना मेर
काम नहीं है। मेरी कला किसी के बोझ ढोने का साधन नहीं बन सकती। व
अपने आदर्श को सामने रख अपनी राह पर चलेगा। वह राह मगर इस जीव
की ही राह है। वह जीवन के महान सत्य का रूपकार है। अगर वह इस का
को कर सकता है, तो दूसरे के मन को स्वतः ही अपनी ओर खींचेगा। वह
है उसकी शक्ति की परीक्षा, उसकी सफलता और सार्थकता।'

कभी कहते, 'डोन्ट ट्राई टु बी पापुलर माई ब्वॉय। यू आर नाट टु गि
ह्वाट दि पीपुल वान्ट, यू विल मेक दि पीपुल वान्ट ह्वाट यू गिव देम। अग
तुममें प्रतिभा है तो तुम्हें लोगों के पीछे दौड़ना न पड़ेगा, वे ही तुम्हारे दरवा
पर आकर भीड़ लगा देंगे।'

'पापुलर' या 'जनप्रिय' होने का शौक कृष्णन को कभी भी न था। अप
आदर्शों के सहारे और अपनी रुचि द्वारा चालित हो वह आगे बढ़ता गया
परन्तु गुरु ने जिस बात की आशा की थी—अपनी शक्ति से लोगों की रुचि
परिवर्तन लाना, उन्हें अपनी ओर खींचना, इसकी प्रतीक्षा में वर्ष पर वर्ष बी
गये, मगर उस सफलता का, उस स्वीकृति का साक्षात् न हो सका। दो-चा
मित्रों की प्रशंसा बेशक मिली थी। उसमें कितना उनका स्नेह था और कितन
उनकी गुणग्राहिता, यह एक विवादास्पद विषय है। इसे मान लेने से भी कुछ ला
नहीं कि उनकी तारीफ पूरी तरह से उसकी कला की प्राप्ति थी, क्योंकि नैति
मूल्य उसका कितना भी क्यों न हो, आर्थिक मूल्य उसका कौड़ी-भर भी न था
इधर यह अर्थ नामक वस्तु ऐसे विकट प्रयोजन के रूप में आ धमकी है कि उस

मुँह मोड़ना संभव ही नहीं है ।

इस कारण, अपनी स्टूडियो की निर्जनता से निकल कर, कृष्णन को ऐसी जगह आ कर खड़ा होना पड़ा, जिसे कहा जा सकता है, आर्ट का बाजार । कला वहाँ नगण्य है । खरीददार की आवश्यकताओं पर उसकी कीमत घटती-वढ़ती है । घूम-घूम कर देखना पड़ेगा कि क्रेता कैसा 'माल' चाहता है, किस चीज की कैसी कटौती है । इन सब वातों का ख्याल रख कर आर्डर लेना पड़ेगा, खरीददार की पसन्द मुताविक सामान तैयार करना तथा उसे सप्लाई करना पड़ेगा ।

यहाँ पर भी प्रतियोगियों की कमीं नहीं । उस भीड़ में अपने को वनाये रखने के लिये, वनाये गये सामान को 'स्टैन्डर्ड' वनाये रखने के साथ क्रेता को खुश करने की कला को जानना भी परमावश्यक है । यहाँ यही शायद असल 'कला' है ।

शुरू-शुरू में वहुत घवरा गया कृष्णन, फिर क्रमशः उसने इसे दार्शनिक दृष्टि से देखने की चेष्टा की । अपने मन में उसने समझौते का भाव पनपाया । 'जीविका' के साथ 'जीवन' का समझौता । वड़ा कठिन समझौता, मगर करना ही पड़ेगा । नहीं तो इस संसार में पाँव जम नहीं सकेंगे । संग्राम तो मनुष्य का हरदम का साथी है । यह संग्राम तो अधिकतर उसके अपने साथ ही होता है । कल्पना के साथ वास्तव का, आदर्श के साथ आचरण का । वहाँ किसी एक को झुकना ही पड़ता है । यही देखा जाता है कि आदर्श अपनी ऊँचाई से उतर कर हाथ मिलाता है पारिपार्श्विक स्थिति के साथ, अपने पँखों को काट-छाँट कर परिस्थितियों के अनुकूल वना लेता है । जीवन-'जीवन-यात्रा' का अनुगामी हो जाता है । वह पथ सरल नहीं, सुगम भी नहीं है, हर कदम पर जटिलता और वंजर ।

इस चिरन्तन सत्य को स्वीकार कर लेने के पश्चात् कृष्णन के मन में थोड़ी शान्ति आई । उसका मन नमनशील था, अंग्रेजी में जिसे ''प्लायेव्ल' कहते हैं । यह गुण हो या दोष हो, मगर इस समय इसने उसके मन की स्वच्छन्दता को नष्ट होने से रोका । पिता की वास्तविक बुद्धि, कुछ-थोड़ी वहुत उसके शिल्पी मन में भी संचारित हुई होगी । उसी के फलस्वरूप अवस्था के परिवर्तन से विचलित न होकर, जहाँ तक मुमकिन, सहज रूप से उसे ग्रहण कर पाया और उसका मुकावला करने के लिये अपने को तैयार कर लिया ।

ऐसी कोई वात नहीं कि ललित कला को पेशा वना लेने पर उसका लालित्य घट जायेगा, या कला-लक्ष्मी की मर्यादा कुछ घट जायेगी । कहीं-कहीं पर वेशक हो जाता है, जैसे, जव स्थूल रुचि के कोई ग्राहक कोई खास फर्मायश कर वैठते हैं । मगर ऐसे ग्राहक भी हैं, जो उसे यह स्वतंत्रता देते हैं कि वह अपनी रुचि और पसन्द के अनुसार चल सके । कभी ऐसा भी होता है कि ग्राहकों की अपनी कोई खास पसन्द होते हुये भी कलाकार की रुचि को वे स्वीकार कर लेते हैं ।

कभी-कभी ऐसे व्यक्तियों से भी आर्डर मिल जाता जो कला के कच्चे पारखी हैं।

'आर्डर' शब्द सुनने मे दीन अवश्य है, मगर कभी-कभी उसके माध्यम से ही कलाकार पथ का संधान पा जाता है। एक कोई अब तक न जाना हुआ पथ, जिसे उसने कभी अपनी इच्छा या चेष्टा से चालित होकर न देखा था, शायद कभी देखता भी नही। दूसरे की जरुरत या तकाजे मे जब वह द्वार उसके सामने खुल गया, तब उसने देखा कि उसी माध्यम में उसकी सफलता की समावना छिपी हुई है। इस विशेष पथ के द्वारा ही एक दिन वह सफलता के शिखर पर पहुँच गया है। अगर यह आर्डर उसके पास न आता, तो अपनी शक्ति का प्रयोग तो दूर की बात, उसे परखने का मौका भी कभी नही आता।

यों, कृष्णन को इतना बड़ा मौका तो खैर कभी न मिला, मगर 'आर्डरी' चित्र बनाते रहने के अवसर पर इस सत्य की उपलब्धि उसको हुई थी। अगर वह फर्मायश उसके पास न आती, इस कोण से वह शायद कभी देख न पाता। आया तो वह आर्डर के रूप में, मगर वह उसके सारे शिल्प-चेतना पर छा गया। दिन-पर-दिन चलता रहा, उस रहस्य के उद्घाटन का प्रयास, उसका वैचित्र, उसकी सुषमा और ऐश्वर्य को रूपायित करने की अतिमानविक साधना।

आपात् दृष्टि से वह अति साधारण वस्तु है—वह मानव शरीर।

गुरु के निकट उसे यह पाठ न मिला था। मन्मथ मजूमदार 'प्रकृति-शिल्पी' थे। 'नेचर' की जो अन्तहीन लीला ऋतु-ऋतु में ही नही, हर क्षण प्रकट होती रहती है—आकाश और धरातल सर्वत्र जो व्याप्त है—सूर्य, चन्द्र, तारा, मेघ-माला, नदी, गिरि, अरण्य, प्रान्तर, वर्षा की श्यामलिमा, ग्रीष्म का रुखापन, यह विपुल रूप-संसार-अपनी कल्पना के रँगो मे कूची बोर-बोर कर विचित्र रेखाओं मे प्रकट कर गये हैं। गृह-पालित पशु, अरण्यचारी प्राणी, इन्हें भी वे प्रकृति का अग मानते थे और इसी रूप मे चित्रित किया अपने चित्रों में। ऐसा नही कि मनुष्यो का चित्र उन्होने कभी बनाया ही न हो। पर उनकी संख्या नगण्य थी। और उनमे भी उन्होने उन्ही मनुष्यो को चुन लिया था जो नदी-नालों, खेत-खलिहानो के साथ मिल-जुल गये हैं बिल्कुल। नदी में जाल डालता हुआ मछुआ, खेत मे फसल काटता किसान, गाँव के पथ पर मँजीरा बजाती वैष्णवी, गोधूलि वेला मे ढोर लेकर लौटता चरवाहा।

इससे अधिक कुछ नही।

इस विषय पर उनकी और कृष्णन की बातचीत होती। कहते, 'छोटे बच्चे जैसे पढाई-लिखाई की शुरुआत मे 'लालफूल' 'छोटी चिड़िया' से आरम करते हैं, उसी प्रकार मेरा प्रथम पाठ भी इन्ही लता-गुल्म, राह-पगडण्डी, फूल-पक्षियों से है। बस यही समझो कि मैं जीवन भर इसी एक कक्षा मे रह गया— मेरा कभी प्रोमोशन हो न सका।'

कहते और हँसते। सरल मुक्त हँसी। उसके बाद एकदम सोच मे डूब

जाते। उनके बैठने की जगह के बगल में एक छोटी सी खिड़की थी। काम रोक कर कुछ देर उदास दृष्टि से आकाश की ओर देखते रहते। फिर धीमे स्वर से कहते, 'रवीन्द्रनाथ ने कहा है—'पानी का बरसना, पत्ती का हिलना' ही उनके अन्तर में रहने वाले आदि कवि की प्रथम कविता है। कितने सुन्दर ढंग से कहा है उन्होंने 'उस दिन मेरी सारी चेतना पर पानी बरसने और पत्तियाँ हिलने लगीं।' जिस दिन मैंने इसे पहली बार पढ़ा उस दिन मुझे लगा था कि यह कवि का उच्छ्वास है, उसकी अत्युक्ति है। फिर एक दिन ऐसा भी आया, जिस दिन मुझे लगा कि इसमें कवि की तनिक भी अत्युक्ति नहीं है। पेड़-पौधे, आकाश, जल इन्हें हम केवल आँखों से तो नहीं देखते, अपनी चेतना में प्रत्यक्ष करते हैं। इनके भी प्राण हैं, भाषा है।'

खिड़की से निगाह घुमा कर फिर अपने काम में जुट जाते। अर्ध समाप्त चित्र पर कूँची चलाते-चलाते कहते, 'मगर मेरी तकदीर में इतना ही बदा था। आगे बढ़ना न हो सका।'

'आगे बढ़ना आप किसे कहते हैं सर ?' प्रतिवाद के स्वर में कृष्णन बोला, 'प्रकृति के आगे है ही क्या ?'

'अवश्य है। विधाता पुरुष, पेड़-पौधे, नदी नाले, पहाड़, पर्वत ही बना कर तो चुप बैठ नहीं गये। यह तो हुआ वैज्ञानिकों के कथनानुसार 'जड़-जगत्'। इसके बाद है प्राणी, जगत-मनुष्य। है उसके रूपों का पारावार ? है उसके वैचित्र्य का अन्त ? नर-नारी-शिशु ये सब हैं एक-से-एक महान शिल्प-कार्य। ए ग्रेट वर्क आफ आर्ट।'

सश्रद्ध कृष्णन उस दिन तन्मय होकर उनकी बातें सुनता रहा। वे बातें उसके मन को छू गई थीं। मगर वह उन बातों की गहराई तक पहुँच न पाया था। उस गहराई की थाह वह पा सका था बहुत दिन बाद। तब तक गुरु भी न थे, पिता भी चल बसे थे। क्या करे, किस रास्ते चले, इन विषयों पर नाना प्रकार से परीक्षा-निरीक्षा करने के बाद, कुछ-कुछ बाहरी आर्डर लेने का सिद्धान्त बना चुका था।

पहला आर्डर आया एक कपड़ा-मिल का विज्ञापन। सुषमामयी नारी। प्रिन्टेड साड़ी लपेट कर मोहमयी मुद्रा में खड़ी हँसी की फुलझड़ी उड़ाती।

जैसे-तैसे तैयार हुआ, मगर मिल-मालिक पूरी तरह सन्तुष्ट न हुये। बोले, 'केशविन्यास और आधुनिक होता तो अच्छा होता।' कृष्णन का ख्याल था कि इस चित्र में साड़ी ही आकर्षण का केन्द्र है। जोर उसके बाँधने के तरीके पर और बाँधने वाली की देहलता पर देना है। किया भी वैसा ही था। उसके समझ में यह न आया, कि केशविन्यास इस कार्य को कहाँ तक सहायता दे सकेगा।

अगला आर्डर और भी जटिल था। एक मंजन के कारखाने से एक किशोरी का चित्र आया। उसके एक हाथ में मंजन का ट्यूब, दूसरे में ब्रुश। हाथों को फैलाये बत्तीसों दाँत निकाल कर हँसती हुई।

इस आर्डर के लाने वाले अति रसिक थे। आर्डर देते समय चित्रकला पर एक छोटा-मोटा व्याख्यान ही दे डाला, जिसका सार था कि उस हँसी से ही खरीददार को घायल करना है।

कृष्णन ने सोचा इसमें कठिनाई ही क्या है? विशेष कर जब बत्तीस दाँतों की सहायता उसे प्राप्त है।

चित्र देख कर कम्पनी के मालिक स्वयं ही घायल हो गये! उन्हीं की सिफारिश से अब एक पोर्ट्रेट का आर्डर मिला। कल्पना से नहीं, जीवित मनुष्य को सामने रख उसकी हूबहू अनुकृति। स्टूडियो में बैठ कर बनाया न जा सकेगा। चित्र के मालिक एक प्रौढ़ व्यवसायी हैं, दमदम में है उनका विलास-भवन। वहीं दिन भर की सारी आवश्यकताओं का इन्तजाम रहेगा। सन्ध्या के समय कलाकार घर लौट आयेंगे।

बढ़िया पहने-ओढ़े एक महिला इजेल के सामने आकर बैठ गई। सज्जन ने 'पत्नी' कह कर ही परिचय कराया था। परन्तु महिला के हाव-भाव और बातचीत के तरीके से, विलास-भवन के परिवेश से, और आने-जाने वाले अतिथि-आगन्तुकों के हाव-भाव से उसे सन्देह हुआ कि इनका सम्पर्क थोड़ा टेढ़ा-मेढ़ा है। शुरू-शुरू में उसे कुछ विचित्र अवश्य लगा था, मगर फिर उसने इस पर ध्यान ही न दिया था। उसने अपने से कहा था कि वह चित्र बनाने आया है, चित्र बनायेगा। यहीं तक उसकी सीमा है। बाकी से उसे क्या लेना-देना?

पोर्ट्रेट बनाने का यही उसका पहला आर्डर था। मनुष्य शरीर को, विशेष कर नारी शरीर को इतने निकट से देखने का, या उस विषय पर प्रत्यक्ष ज्ञान-लाभ करने का अवसर पहले कभी न आया था। इतने करीब से विभिन्न अंगों का यथार्थ रूप से कैनवस पर मूर्त करने के लिये उस पर जो गहरी, तीक्ष्ण दृष्टि डालनी पड़ रही है, उसका भी यही पहला अनुभव था।

प्रथम-प्रथम उसे झिझक ने आ घेरा। ज्यों-ज्यों मन कार्य में निविष्ट होता गया, त्यों-त्यों उसकी झिझक भी घटती गई इस ओर से, जिसका चित्र बन रहा था, उनकी भी काफी मदद थी। गृहस्वामी के चाल-ढाल, बात चीत का तरीका बिल्कुल पुरातन-पंथी था। महिला अगर उसी प्रकार की 'कुल-लक्ष्मी' होती तो कृष्णन को अग्रसर होने में दिक्कत होती। ये मगर उसके विपरीत थीं। काफी हद तक उच्छृंखल, प्रगल्भा भी, अंगरेजी में जिसे 'फारवर्ड' कहा जाता है।

अत्यधिक साज-सज्जा पोर्ट्रेट के लिये अनुकूल नहीं। पहली सिटिंग के बाद

यह बात उनकी समझ में आप ही आ गई। जरूरत के अनुसार अपने को उन्मुक्त करने में भी वे न हिचकीं। कलाकार के निर्देश की प्रतीक्षा किये बिना ही जहाँ जितना वस्त्र उन्मोचन करना आवश्यक था, उसे कर डालतीं। इससे कृष्णन का कार्य सरल हो गया।

इस चित्र से धन प्राप्ति बहुत तो न हुई, मगर ख्याति बहुत मिली। इस नाते कई आर्डर आये। अधिकतर नारी चित्र। सुदेही पुरुष भी एक थे। बूढ़े, मगर बुढ़ापा उनके पेशीपुष्ट अँगों की उज्ज्वलता को तब तक म्लान न कर पाया था। किसी समय कसरत करते थे। यत्न और निष्ठा से शरीर को धीरे-धीरे संगठित किया था। उसके चिह्न अंग-प्रत्यंग में झलक रहे थे। निकट आ कर जब कुर्ता उतार कर खड़े हुये, मोहित हो गया कृष्णन। आयु के हिसाब से जरा के आने का समय हो गया है, पर उसे आने का साहस नहीं हो रहा है। आँखों में, शकल पर, चिबुक पर, गले में, उसकी छाया गहराई है, मगर कन्धे, बाहुयुगल आदि उसके स्पर्श से अभी अछूते हैं।

पौत्र साथ आया था। देख कर लगा कि शरीर की साधना वह भी करता है। आयु में किशोर, शरीर यौवन लावण्य से परिपूर्ण। उसके कन्धे पर हाथ रखे सीढ़ी पर चढ़ते-चढ़ते एप्रन परिहित कृष्णन को देखते ही बोले, 'आप ही चित्रकार हैं?'

'जी हाँ।'

'अरे वाह, यह तो खूब बंगला बोलता है जी! 'कृष्णन' सुन कर मैं तो घबरा गया था। उनकी किड़मिड़ तो मुझे आती नहीं। अंगरेजी में वार्तालाप करने लायक विद्या भी नहीं। और हो भी तो उसमें तृप्ति कहाँ? बड़ी चिन्ता थी कि मुँह पर ताला लगा कर कैसे रहूँगा। बूढ़ा हो गया हूँ, अब तो बात करना ही एकमात्र काम रह गया है। जान में जान आई। अरे भाई आर्टिस्ट बाबू, तुम तो निहायत बच्चे हो मेरे आगे। 'आप' 'जी हाँ' वगैरह तो मैं तुमसे कह न सकूँगा।'

'यह तो बड़ी खुशी की बात है। आप मुझे अवश्य ही 'तुम' कहिये। इच्छा हो तो 'तू' भी कहिये।'

'वाह! वाह! ऐसा न हुआ तो आर्टिस्ट क्या? बातें भी ऐसी जैसे कूँची का नरम खिचाव! समय खूब कटेगा।'

पौत्र ने कहा, 'इसी कारण इनसे दिन भर बातें करते न रह जाइयेगा। इन्हें काम करने में दिक्कत होगी।'

'तब तो मामला गड़बड़ है। तुम्हारी क्या राय है? जब तक चित्र बनाओगे मुझे चुप्पी मार कर बैठना पड़ेगा?'

'न, न। आपका जितना मन हो बातें करियेगा। बस, जहाँ मैं कहूँ, 'अब रुक जाइये', तब थोड़ी देर के लिये रुक जाइयेगा।'

'तब तो ठीक ही है। अब तो बताओ कि कितने दिन तुम्हारी कैद में रहना पड़ेगा मुझे ?'

'बहुत थोड़े दिन।'

'मतलब यह कि बताना नहीं चाहते। रोको जब तक चाहो। पोते को जब जिद सवार है कि बाबा को दीवाल में टाँगे बिना उसकी कसरत ठीक से न होगी, तब और रास्ता भी क्या है ? मैंने कहा था कि इतना ही शौक है तो फोटो खिंचवा कर टाँग ले दीवाल पर। कम झंझट से काम बन जाता। मगर इन्हें तो 'पोर्ट्रेट' चाहिये। ले भाई पूरी कर ले अपनी जिद।'

कृष्णन का मन हुआ कहे, 'आप अपने पौत्र को रुपये पैसे से भी कीमती सम्पदा दे रहे हैं। अपनी देह सम्पदा।'

बात सुनने में कविता जैसी हो जाती, इसलिये वह कुछ बोला नहीं।

'देह सम्पदा !' शब्दों को मन-ही-मन दोहराते हुये उसे ख्याल आया उसके गुरु ने कहा था—'प्रत्येक शरीर एक महान शिल्प-सृष्टि है। ए-ग्रेट वर्क आफ आर्ट।' उस दिन इस बात का तात्पर्य उसके समझ में न आया था। क्रमशः समझ रहा है। बात अक्षरशः सच है। मन्मथ मजूमदार ने तनिक भी बढ़ा कर नहीं कहा था।

केवल चित्रकला ही नहीं। मानव-देह ही हर प्रकार के ललित कला का आधार है। है उसका प्रधान आश्रय।

कठिन पत्थर को छेनी से काट कर अद्भुत सुन्दर रूप सृजन करता है कलाकार। दो हाथ और लकड़ी की एक छोटी टुकड़ी के बल पर मृतशिल्पी मिट्टी के लोदे से विचित्र भंगिमामय मूर्ति बना देते हैं। कवि अपनी लेखनी से उसे अपरूप महिमा-मण्डित कर देते हैं। इसकी हर रेखा में व्याप्त है अपना जो महान रूप रहस्य, चित्र-शिल्पी उसे व्यक्त करते हैं अपनी तूलिका की रेखाओं द्वारा।

पोर्ट्रेट और विज्ञापन की तस्वीरें बनाते-बनाते कृष्णन को इस महान सत्य का सन्धान मिल गया। उसके बाद से उसने इसी मार्ग को अपना लिया—नई-नई देह सम्पदाओं का आविष्कार।

जब दूसरों की फर्माइश पर काम न करना होता—अपनी मौज-मर्जी पर तूलिका चलाने का अवसर आता है, तब वह देह-शिल्प की चर्चा का आनन्द उठाता है। दार्जिलिंग से लौट कर जब अपना शौक पूरा करने का अवसर आया तब वह फिर इसी में लीन हो गया। परन्तु हिमालय के अरण्य पथ पर जो जीवन्त चित्र उसे अनायास ही मिल गया था, जिसे उसने अपनी मन-मंजूषा में बड़ी सावधानी से सहेज कर रखा था आज तूलिका की रेखा में उसे पकड़ नहीं पा रहा था। लग रहा था, कहीं पर कुछ खो गया है।

॥ तीन ॥

कार्ड में सात बजे का समय छपा हुआ था। कृष्णन उससे पन्द्रह मिनट पहले ही 'स्टार' थियेटर के सामने जा पहुँचा। जो लोग फाटक पर खड़े थे, सुव्रत भी उनमें था। बढ़ कर स्वागत किया। हाल के बगल वाले दक्षिण के बरामदे से जाते-जाते किसी से उसने पूछा, 'फंक्शन शुरू होने में थोड़ी देर है न ?'

कृष्णन ने पूछा, 'आर्टिस्ट लोग तैयार नहीं हो पाये क्या ?'

'आर्टिस्ट तो सब तैयार हैं। क्लब के सभापति ही आज के जलसे में सभापति हैं। उनका फोन आया है, साढ़े सात से पहले वे वहाँ पहुँच नहीं पायेंगे। मारपाड़ा के निकट किसी जूट मिल में एसिस्टेन्ट-मैनेजर हैं। लेबर ट्रबुल के कारण रुक गये हैं।'

'उनके न आने तक शुरू न हो सकेगा क्या ?'

'कैसे हो सकता है ? ढेर-सा चन्दा देते हैं, बड़े पेट्रन हैं। समझ ही रहे हैं।'

आडिटोरियम के सामने आकर सुव्रत रुक गया। बोला, 'इतनी जल्दी अन्दर जाकर भी क्या करेंगे ? यहाँ तो बड़ा हल्ला-गुल्ला है। चलिये ग्रीन-रूम में चलें।'

'ग्रीन-रूम में ?'

'हाँ। एतराज है ?'

'नहीं-नहीं मुझे एतराज क्यों होगा ? मेरा मतलब था कि वह तो 'नो एडमिशन' इलाका है।'

'है तो बेशक। लेकिन आज तो हमारे ही दखल में है।'

बरामदे के बाद हा आँगन। उसको पार कर स्टेज के पीछे की निषिद्ध, दुनिया, जिसके विषय में औरों की तरह कृष्णन के मन में भी कौतूहल था। रंगमंच पर, प्रदीप के सामने, रोशनी में जगमगाते नट-रूप में जो सामने आते हैं, उनका एक साधारण रूप भी है। इन्हीं दो स्वरूपों के बीच अन्तराल बन कर जो खड़ा है, उसका नाम है 'ग्रीन-रूम'। इस रहस्यमय ग्रीन-रूम के स्पर्श से नर-नारियों में अद्भुत रूपान्तर घट जाते हैं। रूपान्तर केवल शरीर का ही नहीं, किसी हद तक मन का भी।

घन्टे भर पहले जो आदमी, बीसवीं सदी के कोलाहलमय कलकत्ते की सड़कों

से ट्राम पर, बाजार की थैली पकड़े लौट रहा था, ग्रीन-रूम के दो जादूगर, जिनके नाम हैं पेन्टर और ड्रेसर, तूलिका की चन्द रेखाओं और साज पोशाक के सहारे उसे सोलहवीं या अट्ठारहवीं सदी में ले पहुँचाते हैं। वह जब ग्रीन-रूम के अन्दर घुसा था तब वह ढेढ़-सी 'रुपल्ली' का साधारण गृहस्थ यदुपति सरकार था; वहाँ से निकल कर जब स्टेज पर जा खड़ा हुआ, तो वह या छत्रपति शिवाजी, नहीं तो सूबा बंगाल का मालिक सिराजुद्दौला।

सोचने पर अचम्भा होता है न?

अन्दर, पहला कमरा ही बैठक है। वहाँ, अभी कोई नहीं। आगे थोड़ी खुली जगह। यहाँ-वहाँ अभिनेतागण मेकप लगा रहे हैं। देखा गया, दुर्वासा जी सा अलखल्ला डाले, ढेरों केश-दाढ़ी जमाये कोई मिट्टी के कुल्हड़ में चाय का शौक फर्मा रहे हैं। कोई अति आधुनिक कट का सूट चढ़ाये बेखबर हो बीड़ी फूँक रहे हैं। ये साधारण स्तर के अभिनेता हैं। दो चार सीन में ही पार्ट खतम।

इन लोगों के साथ दो-चार बातें कर मुग्न कृष्णन को लेकर विशिष्ट कलाकारों के निकट पहुँचा। यहाँ के कमरे भी विशिष्ट रूप से सज्जित हैं। बड़े-बड़े शीशों और सुन्दर-सुन्दर असबाबों का सम्मेलन।

मोहित मिला। वही नायक है। सजधज का क्रम समाप्ति पर था। बस, अन्तिम रेखायें, 'फिनिशिंग टच' बाकी है।

कृष्णन को देख वह आगे बढ़ा। कहने लगा, 'आप आ गये यह तो बहुत ही अच्छा हुआ। देखिये तो ठीक है या नहीं?'

कृष्णन उसे देख कर बोला, 'बड़े अच्छे लग रहे हैं आप। रोल क्या है?'

'एक बंगाली युवक। नयी-नयी नौकरी लेकर दार्जिलिंग आया है। यह उसके दफ्तर की पोशाक है।'

'सुन्दर है। नाटक का नाम क्या है?'

'तुषार-कन्या।'

'प्रेम-प्रेम का मामला है?'

'किसी हद तक। एक पहाड़ी लड़की से······'

'देखिये न, क्या इस पर'···· ''एकाएक नारी का स्वर सुन कर दृष्टि फेरते ही कृष्णन तो बस देखता ही रह गया। अद्‌भुत सिमिलैरिटी। मिचल लेक से दूर, जनहीन गिरिपथ के किनारे जिसे देखा था, मानो वही, किसी जादू के बल से यहाँ आकर खड़ी हो गयी है, स्टार थियेटर के मेकप-रूम के द्वार पर। नहीं, शक्ल में कोई सिमीलैरिटी नहीं। शक्ल तो किसी बंगाली लड़की की है, पर बाकी शरीर उसी पर्वत-कन्या का। वही कन्धे, गले की वही बनावट। उसके

॥ तीन ॥

कार्ड में सात बजे का समय छपा हुआ था। कृष्णन उससे पन्द्रह मिनट पहले ही 'स्टार' थियेटर के सामने जा पहुँचा। जो लोग फाटक पर खड़े थे, सुव्रत भी उनमें था। वढ़ कर स्वागत किया। हाल के वगल वाले दक्षिण के वरामदे से जाते-जाते किसी से उसने पूछा, 'फंक्शन शुरू होने में थोड़ी देर है न ?'

कृष्णन ने पूछा, 'आर्टिस्ट लोग तैयार नहीं हो पाये क्या ?'

'आर्टिस्ट तो सब तैयार हैं। क्लव के सभापति ही आज के जलसे में सभापति हैं। उनका फोन आया है, साढ़े सात से पहले वे वहाँ पहुँच नहीं पायेंगे। मारपाड़ा के निकट किसी जूट मिल में एसिस्टेन्ट-मैनेजर हैं। लेवर ट्रवुल के कारण रुक गये हैं।'

'उनके न आने तक शुरू न हो सकेगा क्या ?'

'कैसे हो सकता है ? ढेर-सा चन्दा देते हैं, वड़े पेट्रन हैं। समझ ही रहे हैं।'

आडिटोरियम के सामने आकर सुव्रत रुक गया। वोला, 'इतनी जल्दी अन्दर जाकर भी क्या करेंगे ? यहाँ तो वड़ा हल्ला-गुल्ला है। चलिये ग्रीन-रूम में चलें।'

'ग्रीन-रूम में ?'

'हाँ। एतराज है ?'

'नहीं-नहीं मुझे एतराज क्यों होगा ? मेरा मतलव था कि वह तो 'नो एडमिशन' इलाका है।'

'है तो वेशक। लेकिन आज तो हमारे ही दखल में है।'

वरामदे के वाद हा आँगन। उसको पार कर स्टेज के पीछे की निषिद्ध, दुनिया, जिसके विषय में औरों की तरह कृष्णन के मन में भी कौतूहल था। रंगमंच पर, प्रदीप के सामने, रोशनी में जगमगाते नट-रूप में जो सामने आते हैं, उनका एक साधारण रूप भी है। इन्हीं दो स्वरूपों के वीच अन्तराल वन कर जो खड़ा है, उसका नाम है 'ग्रीन-रूम'। इस रहस्यमय ग्रीन-रूम के स्पर्श से नर-नारियों में अद्भुत रूपान्तर घट जाते हैं। रूपान्तर केवल शरीर का ही नहीं, किसी हद तक मन का भी।

घन्टे भर पहले जो आदमी, वीसवीं सदी के कोलाहलमय कलकत्ते की सड़कों

से ट्राम पर, बाजार की थैली पकड़े लौट रहा था, ग्रीन-रूम के दो जादूगर, जिनके नाम हैं पेन्टर और ड्रेसर, तूलिका की चन्द रेखाओं और साज पोशाक के सहारे उसे सोलहवीं या अट्ठारहवीं सदी में ले पहुँचाते हैं। वह जब ग्रीन-रूम के अन्दर घुसा था तब वह डेढ़-सौ 'रुपल्ली' का साधारण गृहस्थ यदुपति सरकार था; वहाँ से निकल कर जब स्टेज पर जा खड़ा हुआ, तो वह था छत्रपति शिवाजी, नहीं तो सूबा बंगाल का मालिक सिराजुद्दौला।

सोचने पर अचम्भा होता है न?

अन्दर, पहला कमरा ही बैठक है। वहाँ, अभी कोई नहीं। आगे थोड़ी खुली जगह। यहाँ-वहाँ अभिनेतागण मेकप लगा रहे हैं। देखा गया, दुर्वासा जी सा अलखल्ला डाले, ढेरों केश-दाढ़ी जमाये कोई मिट्टी के कुल्हड़ में चाय का शौक फर्मा रहे हैं। कोई अति आधुनिक कट का सूट चढ़ाये बेखबर हो बीड़ी फूँक रहे हैं। ये साधारण स्तर के अभिनेता हैं। दो चार सीन में ही पार्ट खतम।

इन लोगों के साथ दो-चार बातें कर सुव्रत कृष्णन को लेकर विशिष्ट कलाकारों के निकट पहुँचा। यहाँ के कमरे भी विशिष्ट रूप से सज्जित हैं। बड़े-बड़े शीशों और सुन्दर-सुन्दर असबाबों का सम्मेलन।

मोहित मिला। वही नायक है। सजधज का क्रम समाप्ति पर था। जरा, अन्तिम रेखायें, 'फिनिशिंग टच' बाकी हैं।

कृष्णन को देख वह आगे बढ़ा। कहने लगा, 'आप आ गये यह तो बहुत ही अच्छा हुआ। देखिये तो ठीक है या नहीं?'

कृष्णन उसे देख कर बोला, 'बड़े अच्छे लग रहे हैं आप। रोल क्या है?'

'एक बंगाली युवक। नयी-नयी नौकरी लेकर दार्जिलिंग आया है। यह उसके दफ्तर की पोशाक है।'

'सुन्दर है। नाटक का नाम क्या है?'

'तुषार-कन्या।'

'प्रेम-व्रेम का मामला है?'

'किसी हद तक। एक पहाड़ी लड़की से……'

'देखिये न, क्या इस पर……'एकाएक नारी का स्वर सुन कर दृष्टि फिराते ही कृष्णन तो बस देखता ही रह गया। अद्भुत सिमिलैरिटी। सिंचल लेक से दूर, जनहीन गिरिपथ के किनारे जिसे देखा था, मानो वही, किसी जादू के बल से यहाँ आकर खड़ी हो गयी है, स्टार थियेटर के मेकप-रूम के द्वार पर। नहीं, मगर में कोई सिमिलैरिटी नहीं। प्रथम तो किसी बंगाली लड़की की है, पर बाकी शरीर उसी पर्वत-कन्या का। वही कन्धे, गले की वही बनावट। उसके

नीचे—

एक अपरिचित, भिन्न प्रान्तीय युवक की तीखी निगाहों से, विशेष रूप से उसके सङ्ग का सर्वेक्षण करती हुई दृष्टि से, वह वेचारी परेशान हो रही थी।

एक बार देख कर ही निगाह नीची कर ली। जरा खिसिया भी गई।

उसे वाक्य असमाप्त छोड़ते देख मोहित ने कहा, 'क्या कह रही थी?'

'कह रही थी, क्या इसके ऊपर दुपट्टे की जरूरत है?'

'तव गुणी व्यक्ति से ही सलाह ली जाय। जानती हो ये कौन हैं? प्रसिद्ध, चित्रकार एस० कृष्णन।'

फिर उसने कृष्णन से कहा, 'देखिये तो, इसका मेकप कैसा हुआ है? साधारण मध्यमवर्गीय परिवार की पहाड़ी लड़की। गाँव से हाल में ही शहर आयी है। यही हमारी आज की नायिका हैं—मलया दे।'

स्मित हास्य से कृष्णन ने नमस्कार किया। मलया गम्भीर हो गई। किसी तरह प्रति नमस्कार कर दूसरी ओर देखती रही। दो मिनट तक कृष्णन उसे ऊपर से नीचे तक देख-कर बोला, 'कुछ कमियाँ रह गई हैं। मगर लगता नहीं कि कलकत्ते के लोग उसे पकड़ पायेंगे। दार्जिलिंग में होती तो पकड़ जाती।'

मोहित मंजा हुआ परिचालक है। उसने कहा,

'पकड़ पायें या न पायें, कमी रहेगी क्यों? क्या ख्याल है सुव्रत?'

'अवश्य। ये जव मिल ही गये हैं, तव क्यों न सव सुधार लिया जाये?'

पोशाक में कई कमियाँ थीं। जहाँ जितना अदल-वदल करना था, कृष्णन ने वता दिया।

नायिका ही नाटक पर छायी रही। उसे वहुत वार स्टेज पर आना पड़ा। उसका अभिनय वहुत अच्छा तो न था, नाटक भी घटिया ही था। कृष्णन का ध्यान इन वातों पर न गया। वह तो अभिनेत्री को ही देखता रहा। उसके शरीर की भिन्न-भिन्न अभिव्यक्तियाँ और व्यंजनायें। देखते-देखते, उसके चित्र की जो गलतियाँ थीं, या यों कहिये कि गलतियाँ नहीं, मगर तूली की रेखा में जो प्रस्फुटित न हो पा रहीं थीं, वे किसी हद तक पकड़ में आ गईं।

फिर भी कुछ वाकी रह गया। उन्हें पूरा करने के लिये इसे और निकट से देखना पड़ेगा। इजेल के फ्रेम से मढ़ी जो खड़ी है उसके वगल में इसे खड़ी करके मिलान करना पड़ेगा। केवल खड़ी ही नहीं करना है, भिन्न-भिन्न अंगों के जिन विन्यासों को वह चाहता है, उन्हें इससे करवा कर देखना है। मतलव यह कि कलाकार के स्टूडियो में माडल का काम। वह जो चित्रकार या कलाकार की इच्छाओं को अपने शरीर पर रूपायित करता है। उसका वही रूप तूलिका या

छेनी की चोटों से खिल उठता है। उन जगहों पर, चित्रशाला में, मूर्तशिल्प में—मानव शरीर जहाँ विभिन्न भावों में व्यक्त है, मॉडल का विशेष अवदान है। दर्शक की दृष्टि से सदा दूर रहते हुये भी, उस अवदान की कीमत कम नहीं।

पोर्ट्रेचर में मॉडल की आवश्यकता नहीं। जिनका चित्र है, वे ही माडल हैं। परन्तु विज्ञापन-चित्र बनाते समय कृष्णन ने कई बार माडलों की सहायता ली है। कम्पनी के मालिकों ने ही माडल लाकर दिया था।

एक सिगरेट कम्पनी के मालिक एक बार एक तरुण-युगल को ले आये। युवक के मुख में लगी सिगरेट सुलगा रही है युवती। परिकल्पना कृष्णन की थी। मैनेजर की इच्छा थी कि सिगरेट दोनों के मुख पर रहे। दर्शकों की ओर देख सहर्ष पीते हुये।

कृष्णन ने कहा, 'महिला के मुख पर सिगरेट, इस देश के अधिकाश कस्टमरों को यह खल जायेगी, और उनके मन की विरूपता का प्रभाव सिगरेट की बिक्री पर पड़े बिना न रहेगी। और, विज्ञापन का उद्देश्य तो है बिक्री बढ़ाना।'

यह सुन कर मालिको ने डिजाइन चुनने का भार कलाकार पर ही छोड़ दिया था।

माडल युगल का परिचय कृष्णन ने न पूछा था। उनकी शक्ल-सूरत, उनकी बातों और हाव-भाव से लगता था कि वे भद्र परिवारों के हैं। या तो एक ही कालेज में पढ़ते हैं, नहीं तो एक ही मुहल्ले में रहते हैं। इस बहाने कुछ जेब-खर्च बना लेंगे। दो-चार पिक्चर और दो-चार पैकेट सिगरेट की कीमत निकल ही आयेगी।

संगिनी के कान में उस लड़के ने कहा, 'अगर तुम्हारे घर पर किसी ने यह विज्ञापन देखा तो क्या होगा?'

वह एकदम घबरा गई। फिर उस घबराहट को झाड़ फेंकती हुई बोली, 'इलस्ट्रेटेड विकली हमारे घर पर आती ही नहीं।'

'मान लो कोई परिचित व्यक्ति जाकर कह दे।'

'किसकी ऐसी आफत आई है?'

'मैं भी तो जाकर कह सकता हूँ।'

'तुम अपनी नाक काट कर मेरा अहित करोगे?'

कहती हुई हँस कर लोट गई। फिर हँसी रोक कर छद्म गम्भीरता से बोली, 'एक बार करके देखो न? ताऊजी की मोटी लाठी बहुत दिनों से काम नहीं आई है।'

हँसी की फुलझड़ियाँ फिर झरने लगी। इस प्रकार के माडलों का मिलना कुछ मुश्किल नहीं। छोटा सा काम, और उसमें गलत ठहराया जाने लायक

कुछ नहीं। परन्तु एक अपरिचित कलाकार के स्टूडियो के एकान्त में भद्र परिवार की कोई बेटी आकर खड़ी होगी, उसके निर्देश पर अपने को, जब जैसा आवश्यक हो अनावृत करेगी, आर्टिस्ट की इच्छानुसार अपने अंगों को संचालित करेगी, कलाकार की निगाह में इसमें कुछ अनुचित न होते हुये भी, कृष्णन जानता था, वर्तमान सामाजिक स्थिति में यह दुराशा मात्र है। इस कार्य के लिये एक विशेष प्रकार की स्त्रियाँ हैं, जो शायद साधारण भद्र परिवारों की नहीं मानीं जातीं। अपने कलाकार मित्रों के स्टूडियो में कृष्णन ने उन्हें यदा-कदा देखा भी है। उनमें कृत्रिमता बहुत है—जैसे मशीनी गुड़िया हों, जीवन्त मनुष्यों की सजीवता उनमें नहीं। उससे भी बड़ी बात यह है कि अपने को व्यक्त करने की इच्छा तथा प्रगल्भता उनमें बहुत अधिक होती है। अपने को इस प्रकार फैला कर रखती हैं कि उनमें नूतन के आविष्कार का कोई उपाय कलाकार के लिये रह नहीं जाता। अधिक समय से फूले हुये पुष्प में जैसे पुष्प की सुषम सजीवता नहीं होती, लगता है कि उसके पुष्पत्व का लोप हो गया है, इस प्रकार की नारियों में उसी प्रकार नारीत्व का सन्धान मिलना कठिन हो जाता है।

मगर माडल की जरूरत तो इन्हीं से पूरी करनी है !

इस प्रकार के नाटक लोग ज्यादातर अन्त तक नहीं देखते हैं। देखना कष्टसाध्य हो जाता है। पूरा देखने की इच्छा कृष्णन की भी नहीं थी। मगर वह रह गया था, यद्यपि अन्तिम दृश्यों में, और नाटक के बीच में भी कहीं-कहीं उसने नाटक की गति का अनुसरण नहीं किया था। उसका ध्यान अक्सर बिखर जाता। दो-चार विशेष दृश्यों के अलावा अभिनय के प्रति उसका ध्यान था।

पर्दा अन्तिम बार गिरने के साथ ही साथ ही फिर उठा, और भाग लेने वाले कलाकार स्टेज पर इकठ्ठे उपस्थित हुये (इधर हाल में तो यह नाटकों की रीति हो गई है) तब नायक की दृष्टि उस पर पड़ी। इशारे से मोहित ने उसे रुकने को कहा और क्षण भर बाद एक बालक आकर उसे फिर ग्रीन-रूम में लिवा ले गया।

मुँह पर का पेन्ट उतारते-उतारते मोहित ने पूछा, 'कैसा लगा ?'

'बहुत अच्छा।'

'सच बोल रहे हैं ?'

उत्तर न दे कृष्णन मुस्कराया। मोहित ने कहा, 'इतना ही काफी है।' आप जैसे कलाकार की निगाह में जब उतर गया है तब यह ठीक ही हो गया है। इससे अधिक हम कुछ चाहते भी नहीं।'

कृष्णन चला आ रहा था। दरवाजे पर मलया मिली। इस समय वह अन्य वेश में थी। साधारण सी छापे की साड़ी, रंगीन ब्लाउज, पीठ पर बिखरे

देर। होंठ, गाल, माथे पर पेन्ट नहीं, आँखों का काजल भी पोंछा जा चुका है। शान्त मुख-मण्डल, जरा मुरझाया हुआ, उस पर थकावट की छाया।

कृष्णन देखता रहा। निगाह मिलते ही मलया ने आँखें झुका लीं। नमस्कार कर बोली, 'चलूं मोहितदा।'

'अच्छा। निकाला मिल गया ?'

'हाँ।'

'कोई पहुँचाने जाये ?'

'नहीं, नहीं। मैं खुद ही चली जाऊँगी। अभी तो बसें चल रही हैं।'

शीघ्रता से वह बाहर निकल गई। कृष्णन की निगाह ने उसका अनुसरण किया। ख्याल कर मोहित बोला, 'इसका अभिनय कैसा लगा ?'

'बुरा क्या है ?,

'देखने में भी बुरी नहीं है लड़की। बस ऊँचाई जरा कम है।'

'फिर भी फारमेशन ठीक है।'

'आपके लिये तो यही सबसे जरूरी है। हमारी लाइन में भी यही है, किसी हद तक। अन्यान्य गुण चाहे जितने भी हों, साइज ठीक न होने पर अभिनय करने की योग्यता नहीं आती।'

कृष्णन ने सुव्रत के लिए पूछा। वह जा चुका था। कुछ आवश्यक काम था, इस कारण अन्त तक रह नहीं सका।

करीब तीन दिन बाद स्टूडियो में ही मुलाकात हो गई। हँसमुख ने उसे इस बार नीचे न रोक कर सीधे ऊपर आने को ही कहा। बैठक में कृष्णन न मिला। खँखारते ही बगल वाले कमरे से आवाज आई, 'कौन ?'

'जी, मैं हूँ सुव्रत।'

'अरे ! आइये भाई, आइये।'

'वहीं आ जाऊँ ?'

'हाँ, हाँ ! हर्ज क्या है ?'

स्टूडियो में पैर रखते ही सुव्रत की नजरें ईज़ल पर जा टिकीं। कुछ देर देखते रहने के बाद बोला, 'सुन्दर ! अति सुन्दर ! एक बात पूछूँ ?'

'पूछिये।'

'यह चित्र बनाना कब से शुरू किया है ?'

'चार बरस होने रहे हैं, बाद में नहीं है। चित्र उसके बहुत पहले शुरू किया गया था।'

'मैंने ऐसा शायद आर्टिस्ट कहीं नहीं देखा हो।'

'ऐसी बात नहीं। मगर मैं भी इनकार नहीं कर सकता कि कोई बहुत
३

प्रेरणा वहाँ से भी मिली। कम से कम इतना तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि अगर उस दिन मैं नाटक देखने न जाता, तो इसे आप आज यहाँ न देखते। इसकी जगह पर कोई और चित्र होता।'

'अरे यह तो अभी तक पूरा भी नहीं लगता। क्या समाप्त किये बगैर ही हटा देते?'

'वैसा तो कितनी ही बार होता है। शुरुआत तो कलाकार के हाथों में है, मगर उसका परिणाम निर्भर करता है चित्र की जो अपनी गति है उस पर। मतलब यह कि मैं तो केवल उसे खड़ा करने की कोशिश कर सकता हूँ, वह खड़ा होगा या नहीं, खड़ा होगा भी तो किस रूप में, यह तो वह स्वयं तय करता है। बात आपको पहेली सी लग रही है न?'

'ऐसा तो कह नहीं सकता कि आपकी बात पूरी तरह समझ रहा हूँ। याद आता है किसी लेखक से भी मैंने एक बार ऐसी ही बात सुनी थी। उससे पूछा गया था, 'आपने जिन चरित्रों की सृष्टि की है, उनमें से कौन आपका सब से प्रिय है?' हँस कर उन्होंने कहा था, 'सृष्टि मैंने किसी की भी नहीं की है, वे तो सब अपनी-अपनी इच्छा से बने हैं। मैंने उन्हें अपने रास्ते पर पर छोड़ दिया है। अगर ऐसा न करता तो वे मशीनी गुड्डे-गुड़िये हो जाते, जीते जागते चरित्र नहीं।'

'बजा फर्माया था उन्होंने। चित्र भी उसी प्रकार अपने रास्ते पर चलता है। आर्टिस्ट तो केवल उसे उसकी राह का पता बता देता है। इसे मैं वह भी नहीं दे पा रहा। इसी कारण थम गया है।'

सुव्रत चुप हो गया। यूँ, कृष्णन की बातें तो बड़े हल्के ढंग से कही गई थीं, पर व्यर्थता का जो अन्तर-स्पर्श उनमें था, सुव्रत उन्हें समझ गया था। मगर वह क्या कहता? दूसरा कोई प्रसंग छेड़े या नहीं, जब वह इस उधेड़-बुन में लगा था, तभी कृष्णन ने फिर कहा, 'उस दिन आपके यहाँ से इसका कुछ पता ले आया था, मगर फिर भी काम आगे न बढ़ा।'

शिल्प का इतना सुन्दर नमूना यों ही असमाप्त रह जायगा? यह बात सुव्रत को बहुत बुरी लगी। यों तो उसके करने को कुछ है नहीं, फिर भी, बात आगे बढाने की इच्छा से वह यों ही पूछ बैठा, 'कैसे आगे बढ़ सकता है यह?'

इसका उत्तर कृष्णन ने फौरन ही न दिया। एक बार सुव्रत को देखा, फिर चित्र को। कुछ देर सोचता रहा। फिर बोला, 'यह तो नहीं जानता कि आपको मैं अपनी बात समझा सकूँगा या नहीं। मेरे गुरु कहते थे, 'कलाकार को अगर स्रष्टा कहा जाय, तो इस विश्व-संसार में एक ही कलाकार हैं—वे जिन्होंने इस विश्व-ब्रह्माण्ड को बनाया है। हम जो करते हैं, वह तो केवल अनुकरण मात्र है।' उनकी बात बिल्कुल सच है। ऐसे तो अनुकरण करना भी सहज नहीं। जो कुछ मैंने देखा, उसकी छाया मन पर पड़ी। उसे रूप देना है। रूपायित करते समय एक ऐसा क्षण आता है, जब जिसका अनुकरण मैं कर

रहा हूँ, उसका सामने होना बहुत आवश्यक हो जाता है। लैण्डस्केप बनाते समय भी अक्सर रंग, कूँची, कागज लेकर मैदान में जा बैठना पड़ता है। मन के देखने और आँखों के देखने में बड़ा अन्तर है।'

सुव्रत इशारा समझ गया। इज़ेल पर रखी तस्वीर को वह अब तक यों ही देख रहा था। अब उसने उसकी ओर गहराई से देखा। चित्रकारी वह नहीं करता। चित्रकारी वह जानता भी नहीं, मगर कभी-कभी फोटो उतारते रहने के कारण फोटोग्राफी जानता था वह। उसे लगा, शायद इसीलिये उस दिन कृष्णन पहाड़ी नायिका को इतने आग्रह से देख रहा था। उस दिन उसके आग्रह के पीछे कलाकार के कौतूहल के अलावा और कुछ भी था। इस चित्र के साथ उसका कहीं मेल है और वह केवल पोशाक का ही नहीं।

'आपके 'इन्सपिरेशन' शब्द का अर्थ शायद मेरी समझ में आ गया है।' चित्र को देखते हुए सुव्रत ने कहा, 'और मेरा जो प्रश्न था कि काम कैसे आगे बढ़ जाता है, का उत्तर भी पा गया हूँ। दिक्कत यह है कि उन लोगों के साथ मेरा कोई सरोकार नहीं। मोहित, यानी हमारे ड्रामा परिचालक इन बातों की देख-भाल करते हैं। देखूँ क्या कर पाता हूँ।'

सुव्रत किवाड़ की ओर पीठ किये खड़ा था। झन-झन का मधुर शब्द उधर से आते ही उसने घूम कर एक दूसरा चित्र देखा। साँवले मुख पर, घनी पल्लवों वाली आँखों पर, फैली चाँदनी सी मुस्कान। कवि और चित्रशिल्पी शायद इसी को 'काले बादलों के बीच शुभ्र तड़ित शिखा' कहते हैं।

कृष्णन भी उधर ही देख रहा था। उसकी दृष्टि प्रसन्न और प्रफुल्ल थी। कपट क्रोध से बोला, 'कहाँ था अब तक ?'

मुस्कराहट फैली मगर स्पष्ट न हुई। दबी हि-हि सी आवाज। जवाब न दे, झुक कर छोटी मेज पर दो प्याले काफी समेत ट्रे रख दिया हँसमुख ने।

॥ चार ॥

मलया जब घर पहुँची तब रात काफी हो चुकी थी। मुहल्ला (शहर कलकत्ते से बाहर, नारकेल डांगा में था) नौ बजते ही सुनसान हो जाता है। कुछ देर पहले नन्दी बाबू के घर की घड़ी में ग्यारह की घन्टी सुनी है प्रियनाथ ने। बच्ची नौकरानी सो गई थी। उसे जगा कर घर भेज दिया।

इस प्रकार मलया को कभी-कभी देरी हो जाया करती है। आज कुछ ज्यादा ही हो गई है। प्रियनाथ मन-ही-मन घबरा रहा था। इस बार किवाड़

का शब्द सुन कर पुकारा, 'लक्ष्मी—आ गयी ?'

यही मलया का नाम है। वाहर निकलते समय जैसे घर की साड़ी उतार कर अच्छी-सी साड़ी पहन लेती है, कभी-कभी नकली सोने के कड़े भी, वैसे ही यह नकली और वाहर इस्तेमाल होने वाला नाम भी वह ओढ़ लेती है। घर लौट कर साड़ी, कड़े की तरह इसे भी उतार कर रख देती है।

घर पहुँचते ही वही करने वाली थी। मैली साड़ी उठा कर, फिर रख कर वोली 'आई भैया।' अगले ही क्षरण उस कमरे में आकर वोली, 'तुम अभी सोये नहीं ? खा तो लिया न ?'

प्रियनाथ ने इन दोनों प्रश्नों में से किसी का उत्तर न देकर कहा, 'आज तूने वड़ी देर लगाई ?'

'अरे न कहो ! छुट्टी के वाद आज मालकिन के घर जाना पड़ा था।'

'क्यों ?' प्रियनाथ के स्वर में असन्तोष की झलक।

'उनकी तवीयत खराव है। इधर तीन-चार सहेलियों को खाने पर वुलाया था। मौका देख कर रसोइया भी गायव हो गया।'

'और उन्होंने तुझे रसोईदारिन के काम में लगा लिया ?'

'वे भी थीं। दोनों ने मिल कर झटपट वना डाला।'

'कल वर्तन मलने भी जाना पड़ेगा, क्यों ?' स्वर में व्यंग स्पष्ट था। लक्ष्मी वोली नहीं, मुस्करा दी वस। फर्मान जारी करने वाले स्वर में प्रियनाथ वोला, 'कल से तुम्हें वहाँ नहीं जाना है।'

भाई के सिर पर हाथ फेरती हुई लक्ष्मी शान्त स्वर से वोली, 'कल की वात कल होगी। अव क्रोध न कर, सो जाओ। काफी रात हो चुकी है।'

कातिक के अन्तिम दिन थे। जाड़ा आ रहा था। चादर उसके गले तक तान, जूठे वर्तन उठा, लक्ष्मी अपने कमरे की तरफ वढ़ गई।

यहाँ भी नाटक। स्टेज पर खड़े होने का मौका तो रोज नहीं आता, पर यहाँ तो उसे हर समय अभिनेत्री का मुखौटा चढ़ाये रहना पड़ता है। वना-वना कर डायलाग वोलना पड़ता है। सोचती है तो कभी हँसी आती है, कभी क्षोभ, दुःख और निराशा से सारा मन भर जाता है। क्या जीवन भर ही उसे इस प्रकार मिथ्याचार करते रहना पड़ेगा ? क्या केवल मिथ्याचार ही ? कदम-कदम पर भय, हर क्षरण पकड़े जाने की आशंका, आत्मीय परिजन, परिचित लोगों की नजर वचा कर चोरों की तरह भागते फिरना, कितने वेकार लोगों के मन की करते रहना। कभी-कभी असह्य हो जाता है यह सव। थकान से शरीर व मन टूटने लगता है। फिर भी उठना पड़ता है। वहुत दूर तक दृष्टि फैला कर देखने पर भी इससे छुटकारा मिल पाने के कोई आसार नजर नहीं आते।

इस भाई का हाथ पकड़ कर एक दिन उसे 'देश' से भाग आना पड़ा था। 'देश' अब उसे कैसे कहे ? नितान्त विदेश से भी पराया। पृथ्वी के दूसरे छोर में, अफ्रीका या दक्षिण अमेरिका के किसी गाँव में जाकर तुम स्वच्छन्द घूम फिर सकते हो, यद्यपि उनकी भाषा, पोशाक-पहनाव, रीति-नीति, सभ्यता और संस्कृति सभी भिन्न हैं और तुम्हारे लिये एकान्त रूप से अपरिचित। मगर तीन हाथ के फासले पर तुम्हारी एकान्त परिचित सड़क-गलियाँ, नदी-नाले, लोग-जनों के बीच तुम खड़े नहीं हो सकते। वहीं तुम्हारा जन्म हुआ, तुम खड़े हुये, उनकी भाषा तुम्हारी भी भाषा है, वहाँ की जीवन-धारा से तुम्हारे रक्त का सम्पर्क है। फिर भी नहीं जा सकते। वह देश तुम्हारे लिये सुदूर विदेश है। उस देश के अधिवासी तुम्हारे परम शत्रु हैं। विश्व भर में इससे अधिक आश्चर्य-जनक और क्या हो सकता है ? साथ ही इससे अधिक निर्दय सत्य भी कोई नहीं।

इस प्रकार की चिन्तायें जब भी आ घेरतीं, तभी उन्हें धक्के से हटा देती लक्ष्मी। सोच कर होगा क्या ? इससे कहीं अधिक निकट, कहीं अधिक स्पष्ट है आज का दिन। यहाँ आकर भी क्या उसकी मुलाकात अपने लोगों से हुई है ? नहीं। साधारण भाषा में जिन्हें अपना समझा जाता है, यानी खून के रिश्ते हैं जिनसे, उन्होंने भी खास सम्पर्क नहीं रखा। सभी अपने एकान्त, अन्तरंग, संकीर्ण दायरे में किसी तरह जीवन-धारण किये रहने की चेष्टा में उद्‌भ्रान्त हैं। दायरे के बाहर झाँकने की फुर्सत कहाँ है ?

अपनी एकाकी चेष्टा पर स्थापित होना पड़ा था प्रियनाथ को। डोल नहीं, कैम्प नहीं, जबरदखल कालोनी नहीं, पुनर्स्थापित होने के लिये [illegible] सरकारी दया की ओर हताश नयनों से देखते रहना भी नहीं। [illegible] शारिरिक श्रम के बल पर दो आदमियों का प्राथमिक [illegible] और सिर छिपाने के लिये थोड़ी सी जगह।

वह उसे मिल गया था। किसी हद तक [illegible] है। [illegible] उसकी कालेजी शिक्षा उसके किसी काम न आई [illegible] के इस पर लोहे के एक कारखाने में जगह मिल [illegible] का कारबार। उन्हें हिलाते-डुलाते सावधानी [illegible] पड़ते हैं। यह सब तो अभ्यास से ही आते हैं। [illegible] है। इसमें समय लगता है। प्रियनाथ [illegible] था। वह, इस प्राथमिक [illegible] था। वह चाहता था कि इस [illegible] लेविल' पर ले जाना। [illegible]

उसकी इस चेष्टा को देख [illegible] जल्दी न करो [illegible]। [illegible] है।

तुम भी उसी को मान कर चलो। शार्ट-कट से मत जाओ।'

जिस कारीगर से वह काम सीखता था, उसने भी उसे बार-बार सावधान किया था। कहा था, 'यह साला मशीन बहुत हरामी है प्रियनाथ बाबू ! ठीक से चलाओ तो यह तुम्हारा गुलाम है, जरा इधर-उधर हुआ कि यह एकदम दुश्मन हो जायेगा। तब सँभाले न सँभलेगा। होशियार रहना।'

मगर प्रियनाथ को रुपयों की जरूरत है, और बहुत सारे रुपये। छोटी बहन का दाखिला स्कूल में करा दिया है। उसकी सहायता के लिए एक बच्ची सी नौकरानी भी रखी है। स्कूल जाती ही है, दस लड़कियों के साथ उठना-बैठना, इस कारण कपड़े-लत्ते, तेल-साबुन-कंघी का भी ख्याल रखना पड़ता है। केवल मजदूरी से गुजारा नहीं हो रहा था। थोड़ा 'ऊपर' चढ़ना जरूरी है, तब 'हफ्ता' कुछ बढ़ जायेगा। लकीर पीटना उसे अच्छा नहीं लगता। जरा स्पीड बढ़ानी पड़ेगी।

मगर इस संसार में तो कुछ भी तुम्हारी इच्छा या प्रयोजन के अनुसार नहीं चलता। अगर जबरदस्ती करो तो जो घट जाता है, उसे दुर्घटना कहा जाता है। प्रियनाथ के साथ भी वैसा ही हुआ। लछमन सरदार की भाषा में मशीन 'हरामीपन' कर बैठी। एक भारी लोहा, न मालूम कैसे, आकर पाँव पर गिरा। कई एक हड्डियाँ चूर-चूर हो गईं।

काफी दिनों अस्पताल में रह कर जब घर लौटा तब सभी ठीक-ठाक था। बस दो पैसे कमा कर घर लाने के लिये जिन दो पाँवों की जरूरत होती है, उनमें एक नदारद था। लाठी टेकता, लँगड़ाता हुआ किसी तरह आकर तख्तपोश पर बैठ गया।

लौटते समय एक दूसरी जिस घटना के लिये मन-ही-मन तैयार होकर आया था प्रियनाथ, लौट कर देखा वह घटी नहीं है। इस बीच लक्ष्मी मरी नहीं थी। बाद में पता चला था कि कारखाने का एक दूसरा कामगर उसकी बाकी तनख्वाह तथा मुआवजे के रुपये में से थोड़े से रुपये दे गया था। शायद उसके कटे पाँव की कीमत। यों तो मालिक को हर्जाना देना न था, क्योंकि भूल उनकी नहीं थी। 'एक्सीडेन्ट' सम्पूर्ण रूप से सोपार्जित, असावधानी या उससे भी अधिक उसकी अपरिणामदर्शिता का पुरस्कार।

बिस्तर पर पड़े-पड़े भी रोजगार चल सकता है। मगर उसके योग्य विद्या, संगति या सहायता प्रियनाथ को उपलब्ध न थी। उसकी इस कठिनाई को लक्ष्मी ने समझा और जीवन संग्राम में जूझने को कूद पड़ी। स्कूल तो पहले ही छूट गया था। अब भाई को बता कर और बिना बताये भी इधर-उधर पूछ-ताछ करने में लगी। इस नाते समाज सेविका श्रीमती सुनीता दत्त से परिचय हो गया। कुछ थोड़ी-सी विस्थापित लड़कियों को लेकर वे एक संस्था स्थापित करने में लगी थीं। उनका काम था अचार, बड़ियाँ, मुरब्बे, दालमोट जैसी कम दामों में

हैं, उनमें 'नाइट' के हिसाब से थोक मेहनताना लेने वाली अभावग्रस्त, निम्न-मध्यमवर्गीय परिवारों की जो लड़कियाँ इस काम की ओर क्रमशः बड़ी संख्या में आगे आ रही हैं, उन्हीं में से एक को कह कर पक्का कर लिया है। अब 'साइड एक्ट्रेस' के लिये, (जो यों तो प्रधान भूमिका नहीं है, मगर रोल आकर्षक है) एक कम उम्र की सुन्दर लड़की चाहिये। इस लाइन में काम करने वाली लड़कियों में बहुत छानबीन करने पर भी जैसी उसे चाहिये, वैसी मिली नहीं। मोहित बहुत चिन्तित था। ऐसे मौके पर लक्ष्मी दीख गई। वह भी बड़े नाटकीय रूप से।

आफिस से लौट रहा था मोहित। घर के करीब आकर देखा—मुख्य-द्वार खुला है। अन्दर किसी ने कहा, 'आज फिर चलूं भाभी।' स्वर में मिठास है। महीन मगर वाल्यूमदार। एक चीज और भी है, जिसे स्वर की सम्पदा कहा जा सकता है, स्वर के अन्त में एक हल्की-सी झँकार।

और कोई समय होता तो मोहित इस पर ध्यान ही न देता। आई होगी कोई जया के पास। मगर उस दिन, उस समय तो साइड-एक्ट्रेस की रोल का चुनाव करीब-करीब व्यर्थ हो चला था। इधर का रिहर्सल काफी आगे बढ़ गया था, अब बन्द भी नहीं किया जा सकता। राह चलते भी कोई कम उम्र की लड़की दीख जाती, तो उसी को ध्यान से देखने लग जाता। शायद उसके काम आ जाय। अतएव इसके विषय में भी उसका कौतूहल जागा। दरवाजे के बाहर ही रुक गया। उसने सुना पत्नी कह रही है, 'हाँ जाओ, वह सारा सामान लेकर कल आ रही हो न ?'

'कल ही ?'

'तो फिर परसों ?'

'नहीं। चौथे दिन। मंजूर है ?'

'अच्छा, किया मंजूर।'

फिर दोनों हँसीं। उसकी पत्नी की हँसी को पछाड़ कर अपरिचिता की हँसी की लहरें गूँजती रहीं। अगले क्षण ही वह बाहर आई और दरवाजा पार करते ही ठहर गई। पहले एक चकित दृष्टि, इस अवस्था में जो स्वाभाविक थी, फिर शायद पेशे की खातिर या शायद सुनीति दत्त के प्रवचनों के फलस्वरूप एक सप्रतिभ-हँसी-घुली नमस्कार।

स्वर सुनते ही मोहित के मन में जो भावना अंकुरित हुई थी, शक्ल देखते ही उसका विस्तार होने लगा। चौखट पार होकर भी बड़ी देर तक देखता रहा, चलात हुआ शरीर जब तक देखा जा सका। फिर अन्दर आकर पत्नी से पूछा, 'कौन है ?'

'चोरी हो गई न ?'

'चोरी ? कैसी चोरी ? कहाँ ?' घबराया मोहित।

हँस कर जया आगे बढ़ी । दाहिना हाथ पति के सीने पर रख कर बोली, 'यहाँ ।'

'यह कहो ।' हँसा मोहित भी । तुमने तो मुझे डरा ही दिया था । फिर धीरे से बोला, 'वहाँ तक पहुँचना इतना आसान नहीं ।'

'रहने भी दो । ऐसा भी क्या गुमान करना !'

'और फिर, चुराया जा चुका सामान भला कौन चुरायेगा ?'

अर्थपूर्ण दृष्टि से उसने पत्नी को देखा । जया खुश हुई । 'चुराया जा चुका सामान' का अर्थ समझी । फिर भी ऊपरी तौर से लापरवाही दिखाती हुई बोली, 'ले न ले जिसका मन है । मुझे उस पर लोभ नहीं, पुराना हो गया है ।'

'ठीक है । समझ गया ।'

नाश्ते की प्लेट पति की ओर बढ़ाती हुई पहले वाली बात पर लौट आई जया । बोली, 'जैसा तुम चाह रहे हो, उससे न होगा । वह, तुम्हारे स्टेज पर जाने वाली लड़कियों में से नहीं है ।'

पति की समस्या से जया अनजान न थी । इस लड़की को देखते ही उसके समाधान की जो आशा उसके मन में झांक रही थी उसे भी वह भाँप गई थी । मोहित ने भी छिपाया नहीं । आशा भी न छोड़ी । पूछा, 'वह करती क्या है ?'

'कुछ खास नहीं ।'

'लगा कुछ बेचने आई थी ।'

'हाँ । यह जो दालमोट खा रहे हो, यह उसी से खरीदा है । बहुत स्वादिष्ट है न ? उसी के हाथ की बनायी है । उस जैसी और भी कई एक हैं । रोजगार क्या होता होगा, समझ ही सकते हो । फिर भी किये बगैर काम नहीं चलता । बहुत गरीब हैं । होने से क्या होगा ? उसका बड़ा भाई है, मयकर पुरातन-पंथी, और बहुत चाहता है बहन को । उसकी बिल्कुल इच्छा नहीं कि यह घर से बाहर निकले । उसे मालूम है कि यह एक महिला के घर बैठी यह सब बनाती है । घर-घर फेरी करना पड़ता है, यह उसे नहीं पता । यह उससे छिपा कर करती है । न करे तो नौकरी न रहे ।'

'उसके बड़े भाई क्या करते हैं ?'

'कुछ नहीं । बिस्तर पर पड़े हैं ।'

लक्ष्मी का सारा इतिहास, जिसे उसने थोड़ा-थोड़ा करके मालूम किया था, जया ने पति को बताया । अन्त में बोली, ज्यादा पढ़ी भी नहीं है । अगर होती तो मैं तुमसे उसे किसी दफ्तर में लगवा देने को कहती । बड़ी अच्छी लड़की है । लक्ष्मी तो बिल्कुल लक्ष्मी ही है ।'

जया ने भरोसा तो न दिया, मगर सब सुन कर मोहित को आशा बंधी । बोला, 'ठीक तो है । हमारी बात उसे तुम कह कर देखो । अभी जो कुछ कर

रही है वह भाई से छिपा कर, यह मामला भी उससे छिपा ही रहेगा।'

'राजी होगी भी ?' सन्देह से जया ने कहा, 'और शायद नाटक-वाटक तो कभी किया नहीं है।'

'सिखा लेंगे। असल चीज तो है फिगर, स्वर। ये तो उसके पास हैं ही। अभिनय सीखना कुछ मुश्किल नहीं। कितने दिन लगेंगे ?'

'बड़ी चिन्ता देखती हूँ !' आँखों से विद्युत की छटा बरसाती जया बोली, 'क्यों, इसमें मेरा क्या स्वार्थ है ? नहर काट कर घड़ियाल में घर क्यों लाने लगी ?'

'नहीं, नहीं, मजाक नहीं। अनुनय से मोहित बोला, 'मेहरबानी करके तुम एक बार कोशिश करके देखो—प्लीज।'

अगले दिन जब वह आई, इधर-उधर की बातों के बीच जया ने यह प्रसंग भी छेड़ा। लक्ष्मी एकदम बिदक गई। प्रतिवाद करती हुई बोली, 'नहीं ! नहीं ! यह आप क्या कह रही हैं ? स्टेज पर जाकर नाटक करूँ ? अरे राम ! राम !'

शौकिया नाट्य संस्थाओं की किराये पर लाई गई अभिनेत्रियों के सम्बन्ध में जया की धारणा अच्छी न थी। गृहस्थ परिवारों की बेटियाँ मजबूर होकर यह पथ अपना रही हैं, मगर क्या वे अपनी इज्जत-आबरू बचा पाती हैं ? इस लड़की से उसे स्नेह था। उसका मन नहीं था कि यह भी उस मोड़ में जा फँसे। फिर भी पति की खातिर, उसी के पक्ष की होकर बोलती रही। बोली, 'पेशेवर नट नहीं, दफ्तर के बाबू लोग कर रहे हैं। सभी शिक्षित भद्र लोग हैं। नौकरी की तरह यह भी सचाई की कमाई है। बहुत लड़कियाँ कर रही हैं आजकल।'

लक्ष्मी चुप रही। उसका मन मान नहीं रहा था। 'सोच कर देखूँगी,' कह कर उठ खड़ी हुई।

इसके बाद जया ने, पति के इसरार पर, उससे लक्ष्मी का परिचय करा दिया। उस समय मोहित ने अपने पक्ष के समर्थन में बड़ी जोरदार तकरीर पेश की, जिसका सार-र्मम था कि इसमें दोषनीय या निन्दा करने योग्य कुछ भी नहीं है। इस लाइन में आने वाली सभी लड़कियाँ भद्र परिवारों की हैं। और माँ-बाप की राय से ही आई हैं। रिहर्सलों में और नाटक के दिन गाड़ी से लाने-पहुँचाने का इन्तजाम है। पैसा भी काफी मिलेगा। थोड़ी जान-पहचान हो जाने पर बुलावा नियमित रूप से आता रहेगा। वगैरह वगैरह।

इन सारी बातों का अन्तिम भाग ही लक्ष्मी के लिये कुछ आकर्षक था। सुनीति दत्त के अचार का कारखाना अन्तिम साँसें गिन रहा है। किसी भी दिन दम तोड़ देगा। दो तीन लड़कियाँ जा चुकी हैं। जो नहीं गई हैं, उनके रुके रहने का एकमात्र कारण है किसी अच्छी नौकरी का न मिल पाना। उन्हीं में एक लड़की थी जिससे लक्ष्मी की गाढ़ी मित्रता थी। जिससे वह सारी बातें बताती

थी। मोहित के प्रस्ताव के विषय में सुन कर वह उछल पड़ी, 'तू अभी चली जा लक्ष्मी। अब मन डोलने मत दे। तेरी जैसी सुन्दर अगर मैं होती तो दौड़ती जा पहुँचती। मगर मुझे तो वे लेंगे नहीं।'

मुस्करा कर लक्ष्मी बोली, 'तेरी वकालत वहाँ करूँ क्या ?'

'अरे रहने दे। तू अपनी देख।'

बहुत सोच-विचार के बाद लक्ष्मी राजी हो गई।

इसके कुछ ही दिनों बाद सुनीति दत्त के अचार के कारखाने में ताला लग गया। उससे लक्ष्मी का तो फायदा ही हो गया। वहाँ जाना न होता, मगर वहीं का नाम लेकर वह घर से निकलती। सीधे जा पहुँचती रिहर्सल में। उसने इसलिये एक झूठ और जोड़ दिया था—'शिफ्ट बदल गई है। सुबह के बैच से शाम के बैच में तबदील किया है मिसेस दत्त ने।'

जिस दिन बहुत देर होती, वह कहती, 'मालकिन ने रोक लिया था, क्या करूँ ?'

इन लड़कियों से मिसेस दत्त अपना घरेलू काम भी करवाया करती हैं यह बात तो प्रियनाथ ने पहले ही सुनी थी। उसी पुरानी बात से लक्ष्मी उसका सन्देह-मोचन करती रहती। जब कभी बहुत देर हो जाती तो बिगड़ खड़ा होता, 'छोड़ दे, अब नहीं जाना है।'

मगर उसके प्रतिवाद में ताकत कहाँ थी ?

भाई से झूठा-झूठा झूठ बोलते उसे बुरा तो बहुत लगता। कभी-कभी वह परेशान भी होने लगती। नहीं ! ऐसे काम नहीं चल सकता। बता दूँ न सारी बात, फिर जो होना होगा, होता रहेगा। पर कह न पाती। भाई के सन्देह के खण्डन के लिये फिर किसी नये झूठ का सहारा लेती। भाई को तो वह खूब पहचानती है। उनकी समझ में स्त्री जाति की आबरू पर्दा ही सबसे कीमती वस्तु है, साथ ही क्षणभंगुर भी। घर के बाहर जो दुनिया है, उनकी धारणा में, यह उसकी एक चोट भी नहीं सह सकती।

एक बार बात-बात में उसकी जबान से फिसल गया कि घर-घर अचार पहुँचाने का काम भी सुनीति दत्त लड़कियों से ही कराती हैं। थोड़ी देर तो प्रियनाथ चुप्पी साधे रहा। फिर एकाएक पूछ बैठा, 'तुझे भी भेजती हैं फेरी करने ?'

'नहीं, मुझसे तो नहीं कहा। और कहें भी तो मैं जाने क्यों लगी ?'

बहन की तरफ कुछ देर पैनी दृष्टि से देखता रहा प्रियनाथ। फिर कहने लगा, 'और लड़कियाँ जब भेजी जा रही हैं तब तुझे भी एक न एक दिन जाना ही पड़ेगा। ठीक है, चली जाना, मगर एक काम करना। जाने से पहले मेरे पास कुछ पैसे छोड़ जाना।'

'पैसे ?' भाई की वातों के ढंग से चकराई लक्ष्मी ।

'हाँ, किसी से थोड़ा जहर मँगा लूँगा ।'

इस आदमी से कैसे कहा जा सकता है कि उसकी वहन नाटकों में काम कर रही है ? मगर लक्ष्मी करे-भी तो क्या ? इससे अच्छी, निगाह में इज़्ज़तदार नौकरी कौन देगा उसे ? यह वात उसे समझाई नहीं जा सकती । वह समझ भी नहीं सकता ।

इस दुनिया में कुछ ऐसे लोग हैं जो किसी दिन आँख खोल कर नहीं देखते । अगर देखते भी हैं तो अपने चारों तरफ की हालत, दुनिया के वदलते रूप-रंग को कभी नहीं देख पाते । कुछ थोड़ी-सी घिसी-पिटी धारणायें और संस्कार, जो कभी किसी हालत में नहीं वदलते, उन्हीं को सशक्त रूप से पकड़े रहते हैं । वे ही उनके लिये आदर्श हैं ।

प्रियनाथ इसी दल का सदस्य है ।

अपने कमरे में आकर लक्ष्मी ने कपड़े वदले वगैर, यों ही लेट गई थी । खाने का झमेला तो था नहीं । यह काम वहीं से पूरा कर आई थी । दोपहर से इतनी रात गये तक लगातार व्यस्तता और उत्तेजना में बीता है । अब उसी की प्रतिक्रिया भुगत रही है । सारे शरीर में थकान, सारे मन पर अवसाद छाया है ।

थोड़ी देर पड़ी रह कर वह उठी । साड़ी ब्लाउज वदलना है । मच्छर वहुत हैं, मच्छरदानी भी लगानी है । वड़ी देर से प्यास लगी है, एक गिलास पानी पी गई । उस कमरे से नियमित साँस लेने-छोड़ने का शब्द सुनाई दे रहा था । सो गया है प्रियनाथ । वहुत पहले ही सो गया होता । अव तक उसी के लिये जग रहा था । खालिस झूठ की नींद की गोलियाँ खिला कर उसी ने वेचारे को सुला दिया है । वड़े दुःखों में भी हँसीं आई लक्ष्मी को । क्या जिन्दगी है !

दीवाल पर टँगे शीशे के आगे खड़ी हो ब्लाउज उतारते कई साल पहले की एक वात याद आई । याद आते ही शर्म से घिर गई वह !

कमरा उनके पास दो नहीं, एक ही है । बीचो-वीच आदमी की ऊँचाई का प्लाइ-उड का पार्टिशन । ठीक वीचो-वीच नहीं, उसकी तरफ जगह ज्यादा है, भाई की तरफ कम । उस दिन यह पार्टीशन न था, एक ही कमरे के दो तरफ विछे दो तख्तों पर भाई-वहन सोते थे । हठात् एक दिन प्रियनाथ कारखाने न जाकर कहीं से मिस्त्री पकड़ लाया और साथ लाया लकड़ी के नख्ते, कील वगैरह और हाथों-हाथ यह पार्टीशन लगवा डाला । उसके हिस्से वाला साइड वड़ा और भाई वाला छोटा क्यों होगा, इस मामले पर प्रतिवाद करने की इच्छा होते हुये भी वह मुँह न खोल सकी । पिछली रात की घटी एक घटना की स्मृति उसे

है, उसकी आवश्यकतायें अधिक हैं। बीच में लकड़ी की दीवाल, एक किनारे से खुला हुआ, जिस पर मोटे कपड़े का भारी पर्दा लटक रहा है।

लेटते ही सो जाना था। मगर नींद नहीं आई। उसके जीवन की कितनी ही स्मृतियाँ सिनेमा की तरह उसकी आँखों के सामने आती जाती रहीं। एक समय उन्हीं के बीच आकर खड़े हो गये, आज ही के देखे एक दीर्घदेही अपरिचित पुरुष, विशेष कर उनकी आँखें, जिनके आगे उसे थोड़ा अजीब लगा था। वह ज़रा खिकिया भी गई थी। देखने का यह भी कोई तरीका है? फिर उसने अपने को यह कह कर समझाया था कि वह अभिनेत्री है। जिस दिन से उसने इस पथ पर कदम रखा है उसी दिन से किसी भी मनुष्य को किसी भी दृष्टि से उसे देखने का अधिकार उसने खुद ही दे दिया है। अब इस पर प्रतिवाद करने का सवाल ही नहीं उठता।

एक बात और भी है। उन आँखों में और जो भी रहा हो किसी भी प्रकार असम्मान की भावना न थी। आग्रह था, तीक्ष्णता थी, परन्तु क्षुधा या लालसा का निशान तक न था, स्टेज पर खड़ी, उसके शरीर से दर्शकों की आँखों से अक्सर निकल कर जो टकराता है। शुरू-शुरू में ग्लानि से, अपमान से, मन कड़ुवा हो जाता, धीरे-धीरे वह भी सह गयी।

उस समय के वार्तालाप से ही उसे पता चल गया था कि सज्जन कलाकार हैं। चित्रांकन करते हैं। अगर कलाकार न होते तो पूर्णरूप से अपरिचित की ओर इस साग्रह और अकुण्ठ दृष्टि से न देखते।

क्या देख रहे थे इस तरह? रूपवती तो वह है नहीं। मोहित होकर देखने लायक उसमें है ही क्या? हो शायद कुछ। शायद उसे पता नहीं। कलाकार की दृष्टि में वह उजागर हो गई है। या यों ही अच्छी लग गई हो उन्हें। 'अच्छा लग जाना' तो कभी कारण-सापेक्ष नहीं होता।

क्या सच ही अच्छी लग गई है?

ख्याल आते ही सारे अंगों में फुरहरी सी छा गई। पुरुष की दृष्टि में अच्छी लग जाने के लक्षण उसे पहले भी मिले हैं। अक्सर उनका 'यह अच्छा लग जाना' उसे अच्छा नहीं लगा है। मगर यह अनुभूति उन सबों से भिन्न है। इसका स्वाद नया है।

ग्रीन-रूम की तेज रोशनी में सबके सामने क्षण भर को देखी हुई उन आँखों को रात्रि के निविड़ अन्धकार और एकान्त में उसने फिर से देखने की चेष्टा की। सुन्दर। अति सुन्दर। शक्ल-सूरत भी उतनी ही भावमय।

सुखद स्मृति का मधुर आवेश उसके तन-मन पर छा गया।

॥ पाँच ॥

नायिका की भूमिका में मलया पहली बार 'तुषार-कन्या' में ही आई थी। इसके पहले उसने जिन नाटकों में भाग लिया था, सभी में उसे पार्श्व-चरित्र मिले थे। सभी मोहित के क्लब के तो नहीं, मगर उसी किस्म के अन्य प्रतिष्ठानों में भी। मगर कोशिश उसी की थी। इसी कारण वह मोहित के आगे कृतज्ञता के भार से झुकी थी।

इस प्रकार के शौकीन नाटकों का अपना मौसम होता है। साधारणत. पूजा या बड़े दिन के आस-पास। इसके अलावा वैसाख के अन्त से ज्येष्ठ के बीचो बीच तक रवीन्द्र जन्मोत्सव के उपलक्ष मे भी नाटक खेले जाते हैं। बाहर की अभिनेत्रियाँ भी उसमें कभी कभी बुलाई जाती हैं। बरसात मे नाटक का काम बिल्कुल बन्द रहता है।

'तुषार-कन्या' से पहले काफी दिनों तक मलया बेकार बैठी थी। गृहस्थी की गाड़ी रुक रही थी। मोहित ने ही कर्ज देकर उन दिनों उसकी गाड़ी को बिल्कुल रुकने से रोका। इधर दूकान से सामान उधार लाना पड़ा है। 'तुषार-कन्या' के पैसों से कर्ज पाट कर विशेष कुछ बचा नहीं। फिर किसी जगह से बुलावा आना जरूरी है। जल्दी ही न आया तो मामला गड़बड़ हो जायेगा।

मोहित ने कह रखा है, 'जब किसी चीज की जरूरत पड़े तो मुझे बताना, शर्माना नहीं। कभी-कभी आती रहना। मैं तो तुम्हारे साथ योग-सूत्र जोड़ नहीं पाता, इस कारण काम का पता लगता भी है तो तुम्हें खबर दे नहीं पाता। तुम्हीं को पता लगाते रहना पड़ेगा।'

बात सही है। भाई को अभी तक यही मालूम है कि वह सुनीति दत्त के अचार कारखाने की कारीगर है। प्रियनाथ को उसने यह भी बताया कि वहाँ काम खूब चल निकला है। बड़ी, अचार, दालमोट के साथ अब लड़कियाँ तरह-तरह के नाश्ते का सामान भी बनाने लगी हैं। अगर ऐसा न कहती तो अपनी थोड़ी-बहुत उन्नति, थोड़े-बहुत अच्छे कपड़े जो अब भी बहुत जरूरी हो गये हैं, का क्या कारण बनाती ? भाई की निगाह बहुत पैनी है। ओढ़ना-बिछावना, खाने-पीने की चीजों मे भी अब थोड़ा-बहुत परिवर्तन हो गया है। मतलब यह कि रुपये हाथ लगते ही खर्च अधिक करती लक्ष्मी और भाई के कभी साधारण, कभी तीखे प्रश्नों के उत्तर मे कहती, 'मालकिन ने बोनस दिया है।'

'वाकई ?' खुश होता प्रियनाथ। तब तो उनका कारबार खूब चल निकला है। मेरी अगर ऐसी दशा न होती तो तेरे प्रतिष्ठान के लिये मैं भी कुछ करता। तेरी मालकिन तो भई बड़ी बहादुर है। मगर, आखिर है तो महिला ही। इन कामों में पुरुष की सहायता की बड़ी जरूरत होती है। मगर मैं तो—'

और फिर बड़ी करुण दृष्टि से अपने कटे पाँव को देखता रह जाता।

मोहित के पास फिर जाना जरूरी हो गया है। दिक्कत यह है कि वह घर पर मिलता नहीं। घर पर मिलना वह चाहता भी नहीं। उसने कहा है, 'मुझसे मिलना हो तो पाँच बजे के बाद मेरे आफिस के सामने आ जाना। ऐन सामने नहीं, जरा आगे जो बड़ा बैंक है उसकी बगल में। अगर उसमें कोई दिक्कत महसूस होती हो तो इडेन गार्डन में, नहीं तो कर्जन पार्क आ जाना। आने से पहले दफ्तर के पते पर एक इनलैण्ड डाल देना। जहाँ कहोगी, आ जाऊँगा।'

उसके बताये हुये तरीके पर दो दिन मिल चुकी है मलया। इडेन-गार्डन या कर्जन पार्क में नहीं, उसके दफ्तर के सामने जा पहुँची है पाँच बजे के बाद। मुलाकात हुई है। मोहित जरा नाखुश हुआ है। इशारे से उसे आगे बढ़ने को कह कर तीखेपन से कहा है, 'यहाँ क्यों चली आईं ? क्या कहा था मैंने तुमसे ? अच्छा चलो।'

डलहौजी स्क्वेयर से पैदल चल कर चौरंगी जा पहुँचे। जरा आगे बढ़ कर किसी दिन पार्क-स्ट्रीट तक।

ऐसी ही एक बार की बात। भीड़ से हट कर मोहित ने पूछा, 'खाओगी कुछ ?'

'नहीं।' सिर हिलाती मलया जमीन की ओर देखने लगी।

'नहीं क्यों ?' मोहित ने पूछा।

'अभी-अभी खाकर आई हूँ।'

'तो क्या हुआ ? थोड़ा कुछ खा लेने में बुराई क्या है ? चलो।' कहता हुआ मोहित ने उसकी पीठ पर हाथ रख कर सड़क के उस पार शानदार रेस्तोराँ की ओर कदम उठाया। मलया को साथ जाना ही पड़ा। जिस काम से वह उसके पास आई है उसे कहने का मौका ही अभी तक नहीं आया है। और फिर इसी आदमी के सहारे उसकी और एक असहाय लँगड़े आदमी की रोटी जुड़ी है।

पर्देदार केबिन के अन्दर डबल-सीट पर उसे बगल में बिठा कर और कन्धा पकड़ कर उसे करीब खींच कर मोहित ने कहा, 'तुम आज इतनी बदहवास क्यों हो मलया ?'

मोहित की पकड़ ढीली होते ही मलया थोड़ा दूर हट गई। इस हट जाने की चेष्टा के अलावा किसी और आचरण से उसने अपने उभरते क्रोध और खिसियाहट को प्रकट न होने दिया। फिर भी मोहित ने उसे जली-कटी सुना ही

दिया। बोला, 'अपनी यह गंवारू आदतें तुम कब छोड़ोगी मलया ? तुमसे पहले भी कह चुका हूँ, आज फिर कह रहा हूँ कि नवेली दुल्हन बन कर नाटक में कोई सफल नहीं हो सकता। स्पर्श मात्र से जिसका धर्म नष्ट होता है, उसका इस लाइन में आना उचित नहीं। स्पर्श-कातरता न छोड़ने से इस लाइन में कोई शाइन नहीं कर सकता।'

मलया चुपचाप सुनती रही। वह कह न सकी कि यह केबिन स्टेज नहीं, अभिनय की आवश्यकता के कारण जितना करीब आना जरूरी होता है उसके लिए तो वह कभी मना नहीं करती, मगर उसके आगे-पीछे उसे ये बातें अच्छी नहीं लगती। मगर वह कुछ बोली नहीं, बोल ही नहीं सकी। मास्टरजी की फटकार सुन कर छात्रा जैसे मुँह फुला लेती है, वह भी वैसे ही मुँह फुलाये बैठी रही।

अब मोहित जरा नरमी से बोला, 'मेरी समझ में नहीं आता कि तुम मुझसे इतना डरती क्यों हो ? मैं कोई शेर हूँ या चीता ? बोलो ? जवाब दो ?'

'नहीं, नहीं, डर किस बात का ?'

'फिर ?'

उसने इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। बोली, 'किसी काम का पता लगा ?'

खाने का सामान आ गया था। चम्मच-काँटा उठाता हुआ मोहित बोला, 'ता लो, बताता हूँ।'

इसके बाद भी उसे उसके पास जाना पड़ा है। आशा दिलाई है मोहित ने, 'अगले मंगलवार को फिर मिलना। एक पार्टी से बातचीत हो रही है।'

काम ढूँढ़ती हुई वह यदा-कदा जया के पास भी जाती। बातों-बातों में बहुत सा समय गुजर जाता, मगर जिस कारण आई होती वह शुरू ही न कर पाती। जया भाभी से उसका सम्पर्क बिल्कुल अपनों जैसा है। जाओ तो उठने नहीं देती। चौके में बिठा कर अपने हाथों बना कर खिलाती हैं। उठने का नाम सुनते ही कहती हैं, 'अरे, बैठो न। अभी क्या जाना ?'

उनसे यह सब कारोबारी बातें नहीं बताई जाती। उसकी भेंप को समझ कभी कभी जया ही पूछती, 'कामकाज का क्या हाल है.?'

काफी दिनों से कोई काम नहीं मिला, जान कर भरोसा देकर बोली, 'वे आयेंगे तो कहूँगी। उन्हें तो बहुत क्लबों से बुलाते हैं, डाइरेक्शन देने के लिये। कहीं न कहीं से कुछ पता लेकर ही आयेंगे।'

मलया को पता चला है कि इसके बाद कुछ न कुछ करने के लिये जया भाभी पति के नाकों दम किये रहती। अपने आप मोहित जितना करता, अब उससे अधिक तत्पर होना पड़ता। पत्नी से काफी घबराते हैं महाशय।

इसी तरह फिर कुछ हाथ आ जाता।

इधर मगर काफी दिनों से कुछ भी हाथ नहीं आया था।

'तुषार-कन्या' का आवेश समाप्त होते समय लगेगा। वे लोग शीघ्र ही कोई दूसरा नाटक मंचस्थ नहीं करेंगे। इन दिनों दूसरी जगहों पर भी मन्दी चल रही है। पर जरूरत बुरी बला है। फिर खोज-पड़ताल में जुटना ही पड़ेगा। मोहित के पास न जा मलया सीधे जया भाभी के पास पहुँची। उस समय करीब साढ़े-पाँच बजे थे। मोहित और देर से आता है।

बैठक में सुव्रत बैठा था। रिहर्सल के समय परिचय हुआ था। उठ कर उसी ने पहले नमस्कार किया।

'मुझे पहचाना ?'

सिर हिला कर मलया ने हामी भरी। सुव्रत के आगे वह संकुचित हो रही थी। सुना था वह किसी कालेज में पढ़ाता है। उसने ख्याल किया था कि वह मोहित वगैरह की तरह मिलनसार भी नहीं है।

सुव्रत ने फिर कहा, 'बैठिये।'

'जया भाभी हैं?'

'हाँ। अभी तक यहीं थीं। टेलिफोन की घन्टी बजने के कारण अन्दर गई हैं।'

'मैं अन्दर चली जाऊँ ?'

'जरूर जाइये।'

फोन रखती जया भाभी उसे देख बोल उठीं, 'लक्ष्मी ? तुम्हारी उम्र तो खूब लम्बी है।'

'कैसे पता ? न हाथ देखा, न कुण्डली।'

वह सब तो साधारण ज्योतिषियों का काम है। मैं तो शक्ल देख कर बताती हूँ। और जो कुछ कहती हूँ वह सब फल भी जाता है।'

'जीने का मन किसका नहीं होता भाभी ? मगर इस तरह जिन्दा रहने से तो—'

बात पूरी किये बगैर ही रुक गई लक्ष्मी।

अपने निकट उसे खींचती जया भाभी बोलीं, 'इतनी जल्दी हार मान लेने से कैसे काम चलेगा ? बुरे दिन हमेशा थोड़े ही रहते हैं। जाने दो इस बात को। सुव्रत बाबू को तो जानती हो न ? उनसे अभी तुम्हारी बात ही हो रही थी।'

'मेरी बात ?' लक्ष्मी अचकचा कर बोली।

'हाँ। वे तुम्हारे लिये एक काम का पता लेकर आये हैं। अबकी नाटक नहीं। एक नये ढंग का काम। शुरू-शुरू में तुम्हें सुन कर धक्का जरूर लगेगा। मुझे भी लगा था। मगर सब ओर सोच कर देखने पर—अच्छा उनके पास चलो, वहीं बात करेंगे।'

सुव्रत जिस उद्देश्य से जया भाभी के पास आया था, उसका आरंभ कृष्णन के स्टूडियो में हुआ था। उस दिन, इजेल पर टिकाया वह चित्र, जो अन्तिम

रेखाओं के पास आकर थम गया था, वे सामने खड़े होते ही उसकी भावनायें जड़ से हिला दी गई थी। कला से उसे प्रेम है। इतना सुन्दर चित्र, थोड़ी सी कमी के कारण असमाप्त रह जायेगा। कलाकार के इतने दिनों की आकांक्षा, चेष्टा और परिश्रम व्यर्थ होगा, यह चिन्ता उसके दिमाग को साल रही थी। कृष्णन की बातें वह भूल नही पा रहा था। आज वह मन में संकल्प लेकर चला था, इस मामले में उससे जितना बन पड़ेगा, करेगा।

अगर कोई भी माडल होने से काम चलता, तो मामला इतना जटिल न होता। कुछ पैसे और कुछ खोजबीन। बस काम बन जाता। मगर यहाँ तो एक विशेष की ही आवश्यकता है। उसके विषय में उसने जितना सुन रखा था, उससे सुव्रत को खास भरोसा भी न था।

मलया से उसका परिचय बहुत थोड़ा था। मोहित उसे अच्छी तरह जानता है, उस पर कुछ प्रभाव भी रखता है। इस कारण, प्रस्ताव लेकर पहले उसी के पास गया था। मोहित ने भी सुनते ही मना कर दिया था, 'एक बार कह कर देखो न? मुँह की खाकर लौट आओगे। तुम्हारा प्रस्ताव मुझे भी कुछ जँच नही रहा है। माडल बनेगी मलया? भद्र परिवार की एक लड़की भूख की मारी हमारे पास सहायता के लिये आई है, और हम इस तरह उसका सत्यानाश करें?'

'सत्यानाश का क्या है!' मित्र की बात पर प्रतिवाद करता सुव्रत बोला, 'बल्कि मुझे तो लगता है कि रंगमच पर और उसके अन्तराल में भद्र परिवार की लड़कियों को जो इनुडिगनिटी सहती पड़ती है, कलाकार के स्टूडियो में वह उन सबों से बची रहेगी।'

'बची रहेगी।' आसमान से गिरा मोहित, 'इसक अर्थ यह है कि तुम्हे कुछ पता ही नही कि माडल का काम क्या है, और कलाकार वर्ग उनसे क्या कुछ करवाते हैं। वहाँ जाते ही जिस वस्तु से उन्हें हाथ धोना पडता है, वह चला जाय तो स्त्री के पास फिर रह ही क्या गया?'

सुव्रत ने कहा, 'तुम अस्मत की बात कर रहे हो, न नाटक मच पर उसका कितना बचा पाती हैं वे? सीधी बोली में 'शी हैज टू एक्सपोज हरसेल्फ बिफोर द पब्लिक आई'। हजारों लोग उसे देख रहे हैं, किन निगाहो से देख रहे हैं, कैसे-कैसे मन्तव्यों की फुलझड़ियाँ छोड़ते रहते हैं, यह तो तुम्हे भी मालूम है, मुझे भी। वहाँ उसे देखेगा एक आदमी। वह कलाकार है। उसकी दृष्टि मे और चाहे जो हो—'

'अरे रहने दो अपने कलाकार को।' मोहित का पारा चढ गया, 'उन लोगों के कारनामों से मैं खूब वाकिफ हूँ। कलाकार!'

तर्क इसके आगे बढ नही सकता। मगर सुव्रत ने हथियार डाले नही। उसने सुन रखा था कि मलया को स्टेज पर लाने का श्रेय जिन पर है, वह हैं जया मामी। उस लड़की पर उनका बड़ा प्रभाव है। आकर्षण पारस्परिक है।

एक बात उसने और सुने रखी थी। वह यह कि इस काम को मलया पसन्द नहीं करती। वह इसमें सुखी नहीं है।

मोहित के जो मित्र हैं, खास कर जो इस मुहल्ले के रहने वाले हैं, जया भाभी के द्वार उनके लिये सदा खुले रहते हैं। सुव्रत का स्थान उसमें भी विशिष्ट है। इस तरुण अध्यापक से उसे बड़ा स्नेह है। मोहित का कोई भाई छोटा नहीं। एक देवर का शौक था उसे। शादी के बाद घर बसाने जाने वाली हर लड़की के मन में ही शायद रहता होगा। उसकी इस इच्छा को सुव्रत ने बहुत हद तक पूरा किया था। उसके लिये भी जया भाभी सगी भाभी से कम नहीं, बल्कि ज्यादा ही है। एक ही परिवार के लोगों के आपसी रिश्तों में स्वार्थ की गन्ध रहती है। यहाँ वह सब नहीं है।

जया भाभी से असली बात बताने से पहले उसने उन्हें कृष्णन और उसके चित्र का इतिहास बताया। कृष्णन से जया का परिचय तो न हुआ था, मगर उसकी बातें वह बहुत कुछ पहले भी सुन चुकी थी। इसके फलस्वरूप सुव्रत के मन में कृष्णन के प्रति जो श्रद्धा पनपती थी उसके अंकुर उसके मन में भी संचारित हो चुके थे। उसे दो-चार बार देखा भी है। 'तुषार-कन्या' नाटक की शाम को तो काफी निकट से ही देखा है। कृष्णन उसे अच्छा लगा था। उसकी आँखों की बाल-सुलभ उत्सुकता ने जया को विशेष रूप से आकर्षित किया था। सब कुछ देख रहा है पर किसी के प्रति आसक्ति नहीं। सुन्दर लड़कियों को जब देखता तो उसमें कोई चोरी-छिपाव नहीं। आँखें पूरी फैला कर देखता। साधारण रूप से पुरुष जिस तिरछी निगाह से उन्हें देखते हैं—वैसी नहीं—खुली हुई, स्वच्छ दृष्टि। देखते ही मालूम हो जाता कि इसके मन में आविलता नहीं। मन के कोनों में अन्धकार नहीं। जिसके होता है उसकी निगाहों में यह दृष्टि नहीं खिलती।

बात यह नहीं कि नाटक की ही शाम को जया ने इतना कुछ सोच डाला था, इस विषय पर शोध किया हो। पुरुष की दृष्टि के विषय में स्त्री-जाति के पास प्रकृति की दी हुई सूक्ष्म अनुभूति है। देखते ही वे पहचान लेती हैं, समझ जाती हैं, किसकी क्या भाषा है।

एक अविवाहित युवक, जिसके घर में कोई औरत नहीं, अपने निर्जन स्टूडियो के एकान्त में एक लड़की को कई घन्टा रोक रखेगा। किसी दूसरे का मामला होता तो इस लड़की के बचाव का प्रश्न ही पहले उठता। कृष्णन के मामले में मगर जया को इस एक बात का पूरा भरोसा था। वह किसी प्रकार का अशालीन आचरण न करेगा। यहाँ मगर विवेचना का वही एक विषय नहीं। एक और विषय है। नारी शरीर की आबरू की रक्षा! वह तो निर्भर है कि कृष्णन किस प्रकार का चित्र बनायेगा उस पर। अगर उसे पेशेवर

साधन की जरूरत होती, तो उसे पाने की बहुत-सी जगहें हैं। उसके लिये सुव्रत से कहने की क्या आवश्यकता थी? और कहता भी तो सुव्रत छोटा यहाँ क्यों आता? इसे जब बुलाया है, तब यह तो मानी हुई बात है कि उस कार्य में असम्मानजनक कुछ नहीं हो सकता। फिर भी जया दिल पक्का नहीं कर पा रही थी, यहीं पर उसके कदम रुक रहे थे।

लक्ष्मी को साथ ले वह बैठक में वापस आई। सुव्रत से बोली, 'मैंने अभी इससे कुछ कहा नहीं है देवरजी! तुम्हीं कहो। एक चलते-फिरते अध्यापक के आगे मेरी जैसी मूर्ख औरत क्या मुँह खोले?'

सुव्रत ने भी तपाक से जवाब दिया, 'अध्यापक होऊँ या कोई और, मगर विधाता ने हम पुरुषों को विशेष-विशेष जगहों पर मुँह बन्द रखने का हुक्म दिया है।' कहते हुये उसने इशारे से उन्हीं दोनों को दिखा दिया—शायद यही बताने के लिये कि किन-किन जगहों पर।

'आ गई बात समझ में। तुम मर्दों की योग्यता को मैं खूब जानती हूँ।'

अपने इस वाक्य से उसने हल्की सी डाँट बताई सुव्रत को, फिर लक्ष्मी से बोली, 'कृष्णन को तो तुमने देखा ही है। इनके मद्रासी दोस्त, चित्रकार हैं, इसी मोहल्ले में रहते हैं।'

लक्ष्मी ने हामी भरी।

'बस नाम बदल देने से उन्हें पूरी तरह से बंगाली कहा जा सकता है। क्यों देवरजी?'

कपट गम्भीरता से सुव्रत ने कहा, 'नहीं, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता। कम-से-कम एक शख्स के लिये वे साहब हैं।'

'वह कौन?'

'उनका एकलौता ब्वॉय, बेयरा, बावर्ची, अभिभावक भी कहा जा सकता है, हँसमुख।'

'अरे वह छोकरा?' कहते हुए हँस कर लोट गई जया। [illegible] कि हँसमुख का परिचय उसे मालूम है। हँसी थमने पर वह फिर लक्ष्मी से बोली, 'कृष्णन की इच्छा है कि तुम उसके चित्र बनाने के कार्य में कुछ सहायता करो।'

'चित्रकारी में सहायता? मैं?' लक्ष्मी की आँखें फटी की फटी रह गईं।

'नहीं, तुम्हें चित्रकारी नहीं करनी है। कुछ भी करना नहीं है। बस केवल बैठी रहोगी। वे तुम्हें देख-देख कर चित्र बनायेंगे।'

लक्ष्मी के मुँह पर मानों किसी ने गुलाल मल दिया हो। केवल मुँह ही नहीं, उसके मन पर भी छा गई कुछ दिन पहले देखे स्वप्न की सुखद-स्मृतियाँ। मन के

गड़ गई वह। बार-बार सिर हिला कर कहती रही 'नहीं, नहीं, छिः।'

इस स्वर को जया खूब पहचानती थी। 'नहीं, नहीं,' 'छिः' का आक्षरिक अर्थ जो भी हो, उनके उच्चारण में जो माधुरी निहित थी, उसकी नस वह पहचान गई। बस एक बात उसकी समझ में न आई। वह यह कि वह मद्रासी 'तस्वीरवाला' कब, किस मौके पर आकर इसके मन पर अपने लिये इतनी जगह बना गया। शायद वह स्वयं भी इस बात को न जानती हो।

सुव्रत के मन की सारी द्विविधा कट गई। खुशी केवल अपने मिशन में सफल होने की ही नहीं, खुशी इस बात की थी कि जया भाभी ने कितनी कुशलता से, कितनी आसानी से उसकी सफलता का मार्ग निकाल लिया। 'माडल' शब्द का उच्चारण भी न करना पड़ा। उस शब्द के साथ जो रूढ़, वास्तव में समस्या जुड़ी हुई हैं उनका उल्लेख भी नहीं करना पड़ा। वह सब ये लोग स्टूडियो में बैठ कर आपस में निपटते रहेंगे। उसका जो काम था, उसे उसने बेखटके पूरा कर दिया है।

बाद में एक दिन उसने, इसी प्रसंग पर जया से कहा, 'आप जादू जानती हैं भाभी।'

प्रशस्ति को चुटकी से उड़ा कर जया ने कहा था, 'अरे हटो! मैंने क्या किया? असल जादूगर तो है तुम्हारा वह कलाकार दोस्त।'

॥ छः ॥

पहले दिन केवल परिचय, पहचान बढ़ाना और थोड़ा सा वार्तालाप।

सुव्रत ही ले आया था लक्ष्मी को। उन्हें स्टूडियो में ले जाकर बैठाया कृष्णन ने। फटी-फटी आँखों से लक्ष्मी चारों तरफ देखती रही। यहाँ का परिवेश उसके लिये बिल्कुल नया और विस्मयकारी था। इजेल पर की तस्वीर भी उसने देखी। इस पहाड़ी लड़की की पोशाक में ही इन्होंने इसे पहले दिन देखा था। न जाने क्या था उसमें। वह तो उसका असल रूप नहीं है। शायद उन्हें वही रूप सुहाया था। यह ख्याल आते ही उनके मन में उस चित्र के प्रति ईर्ष्या का भाव जागा। फिर अपने बचपने पर उसे खुद ही हँसी आई। कलाकार के विचित्र ख्याल। बनायें उनकी जैसी इच्छा! पोशाक कैसा भी हो, मानवी तो वही है। उसी का चित्र। इतना बड़ा गौरव उस जैसी नाचीज को आज तक किसने दिया है?

अपने नियमानुसार हँसमुख ट्रे लेकर आ पहुँचा। एक प्याली लक्ष्मी के सामने रखते ही वह मृदुल स्वर में बोली, 'मैं चाय नहीं पीती।'

हँसमुख ने सगर्व प्रतिवाद किया, 'चाय नहीं, यह काफी है।' और वह हँसने लगा।

'काफी भी नहीं पीती।' लक्ष्मी ने फिर कहा।

इस पर हँसी नहीं, विस्मय फैला हँसमुख के चेहरे पर। यह तो उसके सपनों से भी परे है कि उसकी बनाई काफी को कोई मना करे।

कृष्णन ने कहा, 'तो फिर इनके लिये कोकाकोला या और कुछ—'

मालिक की बात पूरी होने के पहले ही झटपट प्याली उठा कर भागा हँसमुख। चलते-चलते कहता गया, 'समझ गया, बस पाँच मिनट रुक जाइये—'

क्या समझा, समझ न पा लक्ष्मी और सुव्रत ने जिज्ञासा से कृष्णन की ओर देखा। कृष्णन ने कहा, 'शायद दूध-वूध और डाल कर इसीको किसी दूसरे ढंग से बना लायेगा।'

'इसका अर्थ समझीं न ?' सुव्रत ने लक्ष्मी से कहा, 'यहाँ आने पर हँसमुख की काफी से छुटकारा नहीं किसी को। बनाता भी खूब है। पीने की आदत न भी हो तो अच्छी लगेगी।'

कृष्णन ने जोड़ा, 'अच्छी न भी लगे तो भी इस परेशानी को मान ही लेना पड़ेगा। उस बिचारे का यही एक स्ट्रांग प्वाइन्ट है। दो एक घूँट भी न पियेंगी तो उसे बड़ा दुःख होगा।'

लक्ष्मी की समझ में बात आ गई। थोड़ी देर में दूसरी प्याली जब आई तब उस पर होंठ लगा कर ही लक्ष्मी ने हँसमुख से कहा, 'बहुत अच्छी बनी है।'

उद्भासित हो गया हँसमुख का मुख। उसके सभी दाँत निकल पड़े।

कुछ देर बातचीत करके सुव्रत जब चला गया, तब कृष्णन ने कहा, 'सिर्फ हँसमुख नहीं, उसके मालिक के भी कुछ उपद्रव आपको सहने पड़ेंगे। कभी कहूँगा 'मेरी तरफ देखिये', 'अच्छा अब नीची कर लीजिये आँखों को।' कभी कहूँगा, 'जरा घूम कर बैठिये, इधर पीठ करके बैठिये,...सामने थोड़ा झुक कर—नहीं, इतना नहीं, अच्छा अब उठ कर खड़ी हो जाइये।' कह कर वह हँसा। उच्छवासमय, सरल हास्य। फिर उसने कहा, 'आप नाराज तो नहीं होंगी ?'

सिर हिलाया लक्ष्मी ने। ऐसे गंभीर हुक्म के अन्दाज से कृष्णन ने इन बातों को कहा था कि बड़ी मुश्किल से वह अपनी हँसी रोक पाई थी।

चारेक सिटिंग के बाद एक दिन जब लक्ष्मी चलने को तैयार हुई तब कृष्णन ने कहा, 'आप से एक बात पूछना चाहता था, बुरा तो नहीं मानेंगी ?'

'नहीं नहीं; बुरा क्यों मानूँगी ?' इधर लक्ष्मी का संकोच काफी कम हो चला था।

'नाटकों में आपको कितने पैसे मिलते हैं ?'

'कितना ? हर नाटक में पचास रुपये ।'

'महीने भर में कितने नाटक होते है आपके ?'

'कोई ठीक नहीं । किसी महीने दो, यदा-कदा किसी महीने में तीन भी हो जाते हैं । कभी-कभी दो तीन महीने यों ही निकल जाते हैं ।'

'अच्छा, मैं अगर आपको महीने में डेढ़ सौ रुपये दूं, तो हो जायेगा न ?'

लक्ष्मी का सिर झुक गया । वह मूर्ख नहीं । सांसारिक अनुभवों की भी कमी नहीं । अभिनय की तरह यह भी तो एक पेशा ही है । पहले कोई पक्की बातचीत तो नहीं हुई थी, मगर इतना वह समझ ही गई थी कि जया भाभी जिसको 'चित्र बनाने में सहायता' कहती हैं, इसका भी कुछ मेहनताना अवश्य होता है । कलाकार ने उसे यों ही नियुक्त नहीं किया है ।

मगर ये पैसे वह हथेली फैला कर लेगी कैसे ? यह तो उसी का चित्र है । इस कैनवस पर कलाकार तो उसी का चित्र बना रहे हैं । कितना परिश्रम, कितनी निष्ठा, कितने यत्न से रफ्ता-रफ्ता उसमें प्राण फूंक रहे हैं । क्यों ? कौन सी आफत आई थी ? दुनिया भर में इतनी लड़कियाँ हैं, उनमें से किसी को उन्होंने क्यों नहीं चुन लिया ? उसके लिये यह तो अकल्पित गौरव है । इसी के लिये तो वह सदा-सदा उनकी ऋणी बनी रहेगी । उनसे रुपये वह कैसे लेगी ? क्या दिया है उसने ? बल्कि लिया ही है, मिल रहा है, मन-प्राण परिपूर्ण हैं उसके । इन चन्द रुपल्लियों के लिये वह अपने को छोटा न कर सकेगी । नहीं, रुपये वह नहीं ले सकेगी ।

लक्ष्मी को चुप देख कर कृष्णन ने कहा, 'यों तो रुपये बहुत कम हैं । पर फिलहाल – '

'क्या कह रहे हैं आप ? ये तो बहुत रुपये हैं । मुझे इतने, इतने की भी कभी आशा न थी । मैं यह नहीं सोच रही थी ।'

'फिर ?'

'इस कार्य के लिये आप मुझे पैसे लेने को मत कहिये । यह मुझसे नहीं होगा ।'

'क्यों ?' विस्मित हो कृष्णन ने कहा था ।

लक्ष्मी निरुत्तर हो गई । कृष्णन कह चला, 'रोज-रोज इतना समय देना पड़ रहा है आपको । और यह तो बड़ा परेशान करने वाला काम भी है । क्या इसकी कोई कीमत नहीं ? बल्कि जितना देना मुनासिब है, उतना मैं आपको दे नहीं पा रहा । नहीं, नहीं, रुपये आपको लेने ही पड़ेगे मिस दे । आज कुछ एडवान्स लेती जाइये । मुझे पहले ही देना था, मगर याद ही न आया ।'

स्टूडियो से लगी हुई जो छोटी सी बैठक है, बातचीत वहीं पर हो रही थी । एक तरफ दीवाल से लगाई हुई एक मेज है । जैसे ही कृष्णन ने आगे बढ़ कर उसकी दराज को खोला, लक्ष्मी बोली, 'आज रहने दीजिये ।'

सुव्रत दो-एक वार आकर पता लगा गया कि चित्र कहाँ तक पहुँचा। पूरा होने पर फिर आया। देर तक देखता रहा। फिर बोला, 'मुँह पर किसी की तारीफ करना मेरे स्वभाव के विरुद्ध है। वह मुझसे होता नहीं। मगर इस समय मैं निःसंकोच कह रहा हूँ, यह आपकी महान कृति है मिस्टर कृष्णन।'

कृष्णन भी चित्र को ही देख रहा था। उसने सुव्रत की वात सुन कर कहा, 'महान कृति है या नहीं, यह तो मालूम नहीं। मगर इतना तो कहना की पड़ेगा कि अगर इसमें कृतित्व कुछ भी है तो उसका अधिकांश इनको प्राप्य है।' इशारा लक्ष्मी की ओर था। उस समय वह, जैसा रहती है, उसी प्रकार कोने में चुपचाप वैठी थी। वात उसने मानी नहीं, मगर प्रतिवाद में कुछ वोली भी नहीं। वस आँखें नोची कर ली।

वड़े उत्साह से सुव्रत ने कहा, 'सो तो है ही। वह न होतीं तो यह चित्र वन ही न पाता। उसके लिये कुछ थोड़ा वहुत कृतित्व मेरा भी है, यह तो आपको मानना ही पड़ेगा।' कह कर हँस पड़ा। कृष्णन ने जोड़ा, 'एक वार नहीं, सौ वार मानता हूँ। आपके निकट मेरा—'

सुव्रत ने टोक कर कहा, 'अरे वाह भाई! आपने मेरी वात सिरियसली ले ली क्या? मैं तो मजाक कर रहा था। असलियत में इनके यहाँ आने के मामले में मैंने कुछ भी नहीं किया, मैंने तो इनसे कहा भी नहीं। चाहे इन्हीं से पूछ लीजिए। उसके लिये जो कुछ करना था, वह तो हमारी जया भाभी ने किया है।'

'अगर मुझे एक दिन आप उनके पास ले चलें, सुव्रत बाबू, तो मैं उन्हें अपनी कृतज्ञता जतला आऊँ।'

'वे स्वयं ही एक दिन आपके स्टूडियो में आना चाहती हैं। चित्र देखने का मन है और साथ—'

दरवाजे पर पदचाप सुनाई पड़ी। उधर देख सुव्रत ने अपनी वात खत्म की, 'आपके हँसमुख को।'

'अरे सच?' कृष्णन ने हँस कर कहा, 'इसकी वातें वहाँ भी पहुँच गई हैं?'

'वहुत दिन पहले।'

'वे आयेंगी, यह तो मेरा परम सौभाग्य है। अव आप देर न करें। सुव्रत वावू! जल्दी ही ले आइये उन्हें एक दिन। न हो तो मैं ही जाकर—'

'न, न। आपके जाने की कोई आवश्यकता नहीं। वे स्वयं ही आ जायेंगी।'

कोई तीन दिन वाद जया आई। संग थे सुव्रत और लक्ष्मी। कृष्णन फाटक पर ही था। सादर स्वागत कर ऊपर वैठक में ले गया। जया ने कहा, 'चलिये पहले चित्र देखूँ।'

'चलिये।'

चित्र को इजेल से उतार कर बगल में खड़ा किया गया था। जया कुछ देर देखती रही, फिर बोली, 'यह तो लक्ष्मी है, बस शक्ल छोड़ कर। उसकी नाक इतनी चिपटी नहीं है। मगर सब मिला कर देखने में काफी मेल है। है न देवरजी ?'

'विशेष कर आँखों की पुतलियाँ, जया की बगल में खड़ा सुव्रत धीरे से बोला।

'ठीक कहते हो।'

कृष्णन से उसने कहा, 'आर्ट-वार्ट तो मुझे मालूम नहीं। अच्छा चित्र मैं उसे मानती हूँ, जो देखने में अच्छा लगे, जिसे देखने को पाँव ठहर जांय। इस दृष्टि से आपने बहुत ही असाधारण काम कर डाला है। लक्ष्मी, यह तुम्हारी भी अति महान विजय है।'

'विजय !' यह शब्द सुनते ही सोते से जागी लक्ष्मी। वह जानती है कि यह उसकी महान पराजय है। दो दिन पहले भी वह इस बात को सोच कर पानी-पानी हुई जा रही थी। इसमें वह कहाँ ? उसे पछाड़ कर सभी आगे बढ़ गये हैं—उसके शरीर का विकास, उसका वक्षस्थल, गला, कन्धा, शायद उसकी आँखों की पुतलियाँ। इनसे उसका क्या ? मगर बात किसी को समझाई नहीं जा सकेगी। कोई समझेगा भी नहीं।

जया बड़ी मिलनसार हैं। कृष्णन सदा का शर्मीला। मित्र-मण्डली में उसकी वाकपटुता की ख्याति नहीं। महिला समाज में तो वह बिलकुल खोटा सिक्का हो जाता है। मगर जया के सम्पर्क में आकर थोड़ी ही देर में सारी शर्म-झेंप भूल कर सहज ही घुल-मिल गया। लक्ष्मी भी चुपचाप बैठ न सकी। दो चार नुकीली बातें सुनते ही उसे भी मुँह खोलना पड़ा।

करीब घन्टे भर की गपशप के बाद जया बोली, 'अरे, आपका वाहन तो दिखाई न पड़ा ! मुझे देख कर भाग गया क्या ?'

'अरे सच !' सुव्रत ने भी ख्याल किया, 'इतनी देर तक गायब रहने वाला तो वह है नहीं।'

कृष्णन उठ कर उसे बुलाने ही वाला था कि सुव्रत ने उसे रोका, 'अरे आप क्यों परेशान हो रहे हैं ? वह अपने वक्त से आ ही जायेगा। हमें कोई जल्दी तो है नहीं। क्यों भाभी ?'

'बिल्कुल नहीं। मगर वह गया कहाँ ?'

'वह शायद किचन में है।' कैफियत दी कृष्णन ने।

'किचन में ?'

'हाँ। देखिये न, मैंने कहा वे लोग आ रहे हैं, सामने तो कुछ रखना ही पड़ेगा। घर में कुछ बने ऐसा उपाय जब नहीं है, किसी अच्छी दुकान से खरीद ले आ। मगर मेरा कहना वह कब मानता है ? अगर मानने लगे तो उसकी

करामात कौन देखे ? मालूम नहीं क्या बना रहा है तब से।'

'यह बात है ? चलिये तो जरा देखूँ कि क्या बना रहा है। देवरजी, लक्ष्मी तुम लोग भी आओ।'

हँसमुख तब तक कटलेट तैयार कर काफी का पानी चढ़ा मेज सजाने में लगा था। जया के, सबके साथ वहाँ पहुँचते ही वह जरा सकुचा सा गया। मगर वह तो क्षण-मात्र के लिये। दौड़ कर जया के चरणों में प्रणाम कर दाँत निकाल कर खड़ा हो गया।

जया ने जल्दी मचाई, 'अरे लड़के, चरण-वरण बाद में छूना। पहले तेरी विद्या तो परख लूँ। ले आ क्या बनाया है ?'

हँसमुख किचन की ओर भागा। केवल कटलेट ही नहीं और भी सामान ला कर मेज पर रखने लगा। जया बोली, 'वाह रे लड़के! तूने कितना सामान बनाया है ?' यहाँ तो पार्टी का पूरा इन्तजाम है। अरे आप लोग खड़े क्यों हैं, बैठिये न।'

यह तो उसने कृष्णन और सुब्रत से कहा, फिर लक्ष्मी से बोली, 'तुम्हें क्या हो गया जी ? बनाया तो खैर हँसमुख ने, परोसेगा कौन ? लो जल्दी करो। तुम क्या केवल पट पर बनाया चित्र ही हो ?'

अपने कथन में उसने ऐसी आवृत्ति का सुर मिलाया कि पुरुष कंठ के ठहाकों से कमरा गूँजने लगा। इस शोर-शराबे में लक्ष्मी का कहा हुआ वाक्य, 'और अधिक क्या ?' और किसी ने तो न सुना, मगर जया के कानों में वह पड़ ही गया।

चकित जया उसे देखती रही। लक्ष्मी तब तक परोसने में लग गई थी। इस हँसी-खुशी में भी जया ने एक मेल न खाने वाली विषादमयी वाणी को सुन ही लिया था। वह चिन्तित हुई। मगर हँसी-मजाक की लहरों में सबको प्लावित कर दिया उसने।

परोसने का भार लक्ष्मी पर यों ही पड़ गया था। हँसमुख उसकी सहायता करता रहा। जया यह-वह फरमायश करती रही। मौके से उसने एक बार कृष्णन से कहा, 'हमारी लक्ष्मी बड़ी अच्छी लड़की है। कभी-कभी उसे स्टूडियो से छुट्टी दे दिया करियेगा। आपके हँसमुख को वह बहुत कुछ बता सकेगी।'

'हद करती हैं आप भी! वे इन झंझटों को क्यों पालने लगीं ? यों ही उन्हें बहुत देर रुकना पड़ता है।'

जया ने कहा, 'यहीं आप लोग बहुत बड़ी भूल करते हैं। जहाँ, जितनी देर रुकना क्यों न पड़े, घरेलू काम कभी भी झंझट नहीं लगते। अरे, यहीं तो हमारा राजपाट है।'

अब तक जया ने जो कुछ कहा था, वह सब हास्य-परिहास के सुर में कहा गया था। इस वाक्य का सुर मगर कुछ और ही था। बात ही केवल सीरियस

नहीं थी, उसके कहने का तरीका भी वैसा ही था। यह अन्तर कृष्णन और सुव्रत दोनों ने ख्याल किया।

सुन कर लक्ष्मी अपने अनजाने ही सिहर उठी। 'क्या कहना चाहती हैं जया भाभी?' उसने जया को देखा, और आँखें मिलते ही निगाहें नीची कर लीं।

॥ सात ॥

'गवर्नमेन्ट आर्ट स्कूल' में प्रदर्शनी का आयोजन था। ख्यात, अख्यात अनेक चित्रकारों ने अपने चित्र भेजे थे। सुव्रत तथा अन्य मित्रों के अनुरोध पर कृष्णन को भी उसके हाल में बनाये चित्र भेजने पड़े। सुव्रत ने उनका नामकरण किया 'तुषार-कन्या'। उसका कहना था कि जिस उत्स से चित्र का जन्म हुआ और जिन घटनाओं के मध्य इसने पूर्णता प्राप्त की है, सभी बातों का सगम इस नाम में है। हिमालय की निर्जन वनभूमि के साथ जुड़ गया 'स्टार' का जनाकीर्ण रंगमंच। यह इसका नाम नहीं—इतिहास है।

अध्यापक की व्याख्या—कलाकार की हिम्मत क्या कि विद्रोह करे?

गृहस्थी विशेष मालामाल नहीं। फिर भी इस चित्र को अपने से अलग करने का उसका मन नहीं था। नुमायश में भेजने से पहले कृष्णन ने उसके एक कोने पर कागज का एक टुकड़ा चिपका दिया था। उस पर लिखा था—NOT FOR SALE.

चित्र ने दर्शकों की प्रशंसा पाई। यदि वह मत-परिवर्तन को तैयार होता तो अर्थ-प्राप्ति भी होती। गुण-ग्राहियों का आग्रह और उसके लिये जो कीमत देने को वे तैयार थे, उसका लुभावना अंक आयोजकों ने उसे सूचित भी किया, मगर वह अडिग रहा।

प्रत्यक्ष रूप से नहीं तो परोक्ष रूप से इस चित्र ने उसकी आय का पथ बना दिया। कई जगह से अच्छे-अच्छे आर्डर आये। कुछ पोर्ट्रेट्स के भी थे। अभी फौरन उन्हें हाथ में लेने का मन नहीं था। साफ मना कर दिया। कुछ आर्डर ऐसे थे, जिन्हें 'तुषार-कन्या' के दल में डाला जा सकता था। भिन्न-भिन्न परिवेशों में कल्पित नारी-मूर्तियाँ, पार्टी से साफ-साफ कुछ नहीं कहा। कहा, 'सोच कर देखूँगा।'

लक्ष्मी ने सोचा था कि उसके यहाँ का काम तो अब खत्म हो गया है यद्यपि कृष्णन ने ऐसा कुछ कहा नहीं था। फिर भी वह अक्सर आ जाती कुछ देर बैठी रहती। जाने कब छुट्टी हो जाय, इस शंका में मन डोलता रहता, फिर उठ कर घर चली जाती।

कभी-कभी आर्ट सम्बन्धी आलोचनायें भी होतीं—ठीक आलोचना नहीं, कृष्णन कहता वह सुनती। अधिकतर बातें देह-शिल्प पर होतीं। मानव-शरीर के अंगों में निहित जो विपुल ऐश्वर्य है, प्रति अंग में लावण्य का जो विस्तार है, सभ्यता के आदि-पर्व से, नहीं, उससे भी पहले से जब निर्वस्त्र मानव एक टुकड़ा कोयला ले पहाड़ के ऊपर या पेड़ के तने पर लकीर खींचता था, तभी से कलाकार उसे विभिन्न रूपों में रूपायित करने में लगे हैं। कोई चित्र बना रहे हैं, कोई पत्थर तराश कर मूर्ति बना रहे हैं, मिट्टी सान कर कोई गुड़िया बना रहे हैं—वे सभी इस शरीर की भिन्न-भिन्न भंगिमायें, भिन्न अभिव्यक्तियाँ ही तो हैं। कुछ लोग उसी को स्याही-कलम से कागज पर अभिव्यक्त करते हैं। स्वर माधुर्य विभूति से जो विभूषित हैं वे इसकी सुषमा की स्तुति संगीत द्वारा करते हैं। कवि, औपन्यासिक, गीतकार, गायक—इनके उपकरण हैं शब्द और स्वर। वे उन्हीं के द्वारा देह की अपूर्व कान्ति और व्यजंना को रूपायित करते हैं।

इसी प्रसंग में एक दिन उसने लक्ष्मी से उस चित्र के बारे में बात शुरू की, जिसके विषय में वह कई दिनों से सोच रहा था, मगर मन पक्का नहीं कर पा रहा था।

कुछ देर के सोच-विचार के बाद उसने कहा, 'अच्छा मिस दे, आपको याद है, कुछ दिन पहले आप जब घर जा रही थीं, बैठक में बैठे एक सज्जन ने आप के विषय में पूछा था?'

लक्ष्मी ने हामी भरी। उसे याद आया, नीचे बैठक में एक सज्जन कृष्णन से बात कर रहे थे। घर जाते समय बैठक की किवाड़ के सामने खड़ी होकर उसने कृष्णन से जब कहा--'पिंक रंग बिल्कुल खत्म हो गया है,' तब वह सज्जन उसे गौर से देख रहे थे। जब वह चलने लगी, उसने अपने पीछे प्रश्न सुना—'यह कौन हैं?' और कृष्णन का उत्तर—'मेरी असिस्टेंट।'

कृष्णन कहता रहा, 'वे ही एक चित्र बनवाना चाह रहे हैं। वस्तु विचित्र है। वैष्णव-काव्य की दो पंक्तियाँ। उसमें जो वर्णना है वे उसे चित्रित करवाना चाहते हैं। वे स्वयं कवि हैं। चित्र-शिल्प का ज्ञान भी है, रुचि भी रखते हैं। उल्टा-सीधा कुछ बना कर उन्हें दिया नहीं जायेगा। इसी कारण सोच रहा था। अगर हिम्मत बँधायें तो हाँ कह दूँ। आदि से अन्त तक आपकी सहायता की जरूरत होगी।'

लक्ष्मी यह नहीं समझ पाई कि नये सिरे से कृष्णन सहायता की बात क्यों कह रहा है। वह तो इसीलिये यहाँ आई है। नियमित रूप से पैसे भी ले रही है। इस मामले में वह 'हिम्मत' कैसे बँधायेगी? वह तो मशीनी गुड़िया जैसी सिर्फ हाथ-पाँव हिलाती है। फिर भी बोली, 'ठीक तो है, आप ले लीजिये। मुझे क्या करना होगा बता दीजिये।'

'यही हिम्मत बँधाने को तो मैं आपसे कह रहा था। आपको जरा लिबरल,

यानी उदार होना पड़ेगा । पूरे मामले को कलाकार की दृष्टि से देखना होगा ।'

बात साफ तो नहीं हुई, मगर लक्ष्मी ने कुछ अन्दाज जरूर लगा लिया । वह लजा गई ।

उसे एक और दिन की बात याद आई । तब वह नई-नई आई थी यहाँ । कृष्णन कहीं गया था । वह स्टूडियो के बगल वाले कमरे में इन्तजार कर रही थी । एक मोटी सी अंगरेजी पुस्तक सोफे पर पड़ी थी । आर्ट की किताब थी कोई । वह उठा कर पन्ने उलटने लगी । बहुत से चित्र थे उसमें । अतीव आश्चर्य मूर्तियाँ—नारी पुरुष । बहुत से निर्वस्त्र । थोड़ी झेंप तो लगी थी, फिर भी अच्छी लगी थीं तस्वीरें । एक बार वह अचार के कारखाने की लड़कियों के साथ गंगा के किनारे एक बहुत बड़े और बहुत पुराने मकान में गई थी । वहाँ बगीचे में ग्रीक देवी-देवताओं की मूर्तियाँ उसे जैसी अच्छी लगी थीं, ये चित्र भी वैसे ही अच्छे लगे थे । कैसी जीती-जागती । पूर्ण रूप से नग्न, मगर देख कर तनिक भी लज्जा नहीं आई । ऐसा लगा कि हर एक देह से पवित्रता छलक रही है ।

पद-चाप सुन उसने किताब बन्द कर झट सोफे पर रख दी । दिल धड़कने लगा । जैसे कोई चोरी करते पकड़ी गई हो । उसका यह सहमा-सहमा भाव कृष्णन ने ख्याल तो जरूर किया होगा मगर उसके हाव-भाव में इसका कोई प्रकाश नहीं था । बाद में एक दिन ब्रश चलाते चलाते उसने कहा था, मिस दे, जब आप इस लाइन में आ ही गई हैं, तो इस विषय पर आपको कुछ पढ़ना भी पड़ेगा । वह जो पुस्तक उधर पड़ी है, आर्ट पर इससे अच्छी पुस्तक शायद ही कोई हो । उसमें जो चित्र दिये गये हैं, संसार के श्रेष्ठ कलाकारों ने बनाये हैं उन्हें ।'

जरा रुक कर, फिर ब्रश चलाता हुआ कहने लगा, 'हो सकता है शुरू शुरू में थोड़ी-बहुत हिचक हो । क्रमशः जैसे-जैसे कलाकार की दृष्टि से देखेंगी, हिचक दूर होती जायेगी । तब आपके सामने केवल उनका सौन्दर्य ही होगा । अर्थात् उनका कलात्मक सौन्दर्य ।'

उस दिन भी कृष्णन ने यही शब्द कहे थे, 'कलाकार की दृष्टि से देखना ।' उस दिन की वह घटना याद आते ही उस दिन की तरह वह फिर झेंप गई । मगर उसकी मात्रा बहुत कम थी । इतने दिनों का साथ, परिचय और वार्तालाप ने उसे काफी सहज बना दिया था । मगर आज भी वह आँखें मिला न सकी, वे आपही आप झुक गईं ।

इतना कुछ ध्यान न किया कृष्णन ने । वह अपनी धुन में मस्त कहता गया, 'कविता की पंक्तियाँ, मेरे चित्र का जो विषय है, शायद चण्डीदास की हैं । शर्तिया तो कह नहीं सकता । आधुनिक बंगला साहित्य पढ़ने की कोशिश जरूर थोड़ा बहुत करता हूँ, मगर वैष्णव साहित्य का ज्ञान मुझे जरा भी नहीं । आप शायद जानती हों । श्रीराधा के स्नान का दृश्य । यमुना के जल से बस

उठी ही हैं। नीली साड़ी पहने हैं। इसके सिवा कोई दूसरा रंग उन पर खिलता नहीं, यह तो वैष्णव कवि खूब जानते थे। कनक-चम्पा सा वर्ण---उस पर नीले वस्त्र। कितना अद्भुत काम्बिनेशन ! वे केवल कवि ही नहीं, चित्र-शिल्पी भी थे। वह पंक्ति एक बार याद तो कीजिये :—

चले नील साड़ी निंगाड़ि-निंगाड़ि पराण सहित मोर।

'खैर। जो कह रहा था। स्नान समाप्त कर राधा घर जा रही हैं। सिक्त वसन, सिक्त केशराशि। उनमें से पानी टपक रहा है। पीछे खड़े कवि विमोहित हो देख रहे हैं। उनकी दृष्टि भाषा में प्रकट हुई, 'सिनिया उठिते, नितम्ब तटेते पड़याछे चिकुर राशि, कान्दिया आँधार कनक चाँपार शरण लइल आसि।'

धीरे-धीरे कृष्णन का मृदु गंभीर स्वर शान्त हो गया। आयत्त नयन मुँद गये। उनके चेहरे पर प्रसन्न तन्मयता का भाव छा गया। मानो, मानस दृष्टि से वह सद्यस्नाता राधारानी के गमन के दृश्य का आनन्द उठा रहा हो। फिर उसने लक्ष्मी की तरफ निगाह फिराई। वह भी भावों की गहराई में डूबी हुई थी। कृष्णन की बातों से चौंक कर जागी, 'याद ही नहीं आता कि ऐसी आश्चर्यजनक इमेजरी पहले कभी देखी हो। सिक्त वसन की नीलिमा भेद कर कटि तट का उज्ज्वल और प्रभासित है। उस पर जल टपकती काली केशराशि। उस रूप को देख कर कवि को लगा कि रोकर अन्धकार ने आ कनकवर्ण चन्द्रमा की शरण ली है ! क्या अपरूप उपमा है !'

कृष्णन अब तक भाव-राज्य में विचरण कर रहा था। स्वर भी उसका भाव गंभीर था। अब सहज स्वाभाविकता में लौट आया। लक्ष्मी से हँस कर कहा, 'यही चित्र बनाना है। बना सकूंगा ?'

उज्ज्वल हो उठी लक्ष्मी। शब्दों से तो उत्तर न दिया, पर उत्तर तो स्पष्ट था, 'जरूर बना सकेंगे।'

कृष्णन का यह रूप उसके लिये एक दम नया ही था। वह इससे बहुत प्रभावित हुई थी। उसकी नीरवता इसी की अभिव्यक्ति थी। उसकी स्मित मुस्कान ने कृष्णन को भी शान्ति पहुँचाई। आश्वस्त होकर बोला, 'तो फिर ले रहा हूँ। वे सज्जन आज फिर आने वाले हैं। इस चित्र के लिये आपको क्या कुछ करना है यह मैंने सोच रखा है---कल बताऊँगा। आज बहुत परेशान कर चुका हूँ, अब और नहीं।''

अगले दिन जाते ही लक्ष्मी को क्या-क्या करना है, सब बता दिया। बताने के पहले उसकी भूमिका थी, 'मैं जानता हूँ, मिस दे, इसमें कुछ बातें ऐसी हैं जो आपकी रुचि तथा संस्कारों को चोट पहुँचाएं। ऐसा कुछ अगर हो तो उसे करने को मैं कभी आपको बाध्य न करूंगा। आवश्यकता होने पर चित्र ही छोड़ दूंगा, इसकी चिन्ता न करें।'

परिमाण की दृष्टि से देखने से लक्ष्मी का काम ऐसा कुछ अधिक न था। नीलाम्बरी साड़ी और राधा के उपयोगी कुछ पुराने जेवर वे सज्जन पहले ही रख गये थे। उन्हें पहन, बगल वाले बाथरूम में नहा, गीले केश और गीले कपड़ों में आकर स्टूडियो के एक विशेष स्थान पर पीठ फेर कर खड़ा होना है। चरण, पीठ, सिर की जिन विशेष भंगिमाओं की आवश्यकता है, चित्रकार उन्हें क्रमशः बताते रहेंगे।

लक्ष्मी चुपचाप सुनती रही। उसका मन एकदम विद्रोह कर उठा, 'नहीं, यह उससे नहीं होगा। छिः!'

फिर वह एक-एक कर कृष्णन से सुनी हुई बातों को अपने मानस पटल पर ले आई। साथ ही उसने उसकी आँखों को याद किया, जिन्हें देख कर लगता है कि सामने जो कुछ है, उसे हटा कर वे बहुत दूर चली गयी हैं, शायद किसी निजी भावराज्य में। उस दृष्टि में ध्यान के अभिनिवेश के सिवा और कुछ नहीं है। वे तो साधना में डूबी हुई रहती है। एक अद्भुत आनन्द की चमक भी उसने उनमें देखा है। उसके सुन्दर तन का सुषमा-मण्डित-रूप कृष्णन को भाया है, बार बार देखता है उसे और तूलिका की सहायता से उसे कैनवस पर मूर्त करता रहता है, उस पर कोई लोभ नहीं, कोई आसक्ति नहीं। मानो यह किसी सुन्दर नारी का शरीर नहीं, सुन्दरी युवती के सुपुष्ट, सुविन्यस्त अंग-प्रत्यंग न हुये, केवल ढेर सारी सुन्दर वस्तुयें हैं जिनके विषय में वह अवसर बोलता रहता हैं, जिसे किसी अंगरेज कवि ने कहा है, 'ए थिंग आफ ब्यूटी?'

एक बात लक्ष्मी के मन में आयी। यह चित्र कृष्णन के लिये आर्डर मात्र नहीं है। उसके संग उसकी शिल्पी-आत्मा एकात्म्य हो कर घुल-मिल गई है। ऐसा लगता है कि वैष्णव कवि की इन पंक्तियों को रंग-तुली द्वारा रूपायित करने में ही उसकी सार्थकता है। लक्ष्मी की दी हुई आशावाणी ने उसकी प्रेरणा को बल दिया है। मन ही-मन काफी आगे बढ़ गया है वह। उसके दिये हुए वचन के भरोसे पर ही आगे बढ़ा है। अब वह पीछे कैसे हट सकती है?

और फिर, किसी किस्म की लुका-छिपी भी तो उसने नहीं की है। आज जिस चीज की माँग पेश कर रहा है, उसकी ओर वह बार-बार इशारा कर चुका है। कहा है, 'कलाकार की दृष्टि में नग्नता नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। उनका लक्ष्य तो है मानव शरीर की सुषमा की ओर। वस्त्रों की आवश्यकता तो तब तक है, जब तक वे उस सुषमा को प्रस्फुटित होने में सहायता करते हैं। जहाँ नहीं करते वहाँ उनकी आवश्यकता नहीं।'

विभिन्न अवसरों पर कही विभिन्न बातें लक्ष्मी के मन पर उभर कर आती-जाती रही।

कृष्णन प्रतीक्षा कर रहा था। मन स्थिर करते कुछ समय तो अवश्य लगेगा। काफी समय बीत जाने पर भी जब कोई उत्तर न मिला, तब वह उठा

और कहने लगा, 'आपकी असुविधा को मैं समझ रहा हूँ। ठीक है, रहने दीजिये।'

लक्ष्मी बोल पड़ी, 'आज ही काम शुरू करना है ?'

'इरादा तो ऐसा ही था।'

'सामान कहाँ है ?'

'देता हूँ।'—दराज खोल साड़ी और जेवर लक्ष्मी को थमा कर बोला, 'पहन कर बुलाइयेगा।'

उठ कर जाते-जाते उसने कहा, 'जूड़ा खोलेंगी जरा ?'

झेंप से गड़ी जाती लक्ष्मी ने जैसे ही जूड़े की पिन खोल कर सिर को झटका दिया, आषाढ़ के बादल जैसे काले केश पीठ पर फैल गये।

'वाह !' कृष्णन ने मुग्ध होकर कहा, 'ऐसे ही केश देख कर शायद कवि ने इन पंक्तियों की रचना की थी।'

॥ आठ ॥

आफिस जाते समय जया जब मोहित को टिफिन का डिब्बा पकड़ाने लगी, तब उसने पूछा, 'मलया आई थी इधर ?'

'नहीं तो।'

एक जगह एक साइड-रोल की बात हो रही है। वे उसे देखना चाहते हैं। आये तो उससे कह देना।'

'अच्छा, कह दूंगी।'

जया के इस छोटे से उत्तर पर मोहित को जरा विस्मय हुआ। इसके पहले इन मामलों में जया उत्सुकता प्रकट करती थी। कब, कहाँ, वे कितने पैसे देंगे, उसे जल्दी खबर भिजवानी है कि नहीं, ढेर सारे प्रश्न पूछती वह। उस लड़की से स्नेह है, उसकी पारिवारिक अवस्था को वह जानती है और सदा चिन्तित भी रहती है। मगर आज जया बड़ी निर्लिप्त सी लगी। मोहित ने उसकी शक्ल को पढ़ना चाहा, मगर वहाँ कोई 'क्लू' न मिला और वह पढ़ भी कैसे सकता था ? स्त्री जाति के मुख के भावों से कब, कौन-सा पुरुष कुछ जान पाया है ? सात वर्षों से जिसके संग गृहस्थी बसा कर दिन काट रहा है, उसके विषय में भी यही सत्य है। इस सनातन दार्शनिक सान्त्वना से अपने को सहलाता हुआ आफिस चला गया मोहित बोस।

जया ने मगर समझ लिया कि लक्ष्मी के मामले में उसका निर्लिप्त भाव उसके पति ने गौर किया है। अभी दफ्तर की जल्दी थी, इसलिए बात आगे

नहीं बढ़ी। रात को शायद फिर उभरे। मगर बात चलेगी तो उस समय इन्हें कुछ बता दिया जायेगा। असल बात तो इनसे बतायी न जा सकेगी। कारण दो हैं। एक तो यह कि वह जानती है कि लक्ष्मी के इस नये कार्य को मोहित जी कितनी विरूपता से देखते हैं। यह खबर सुनते ही वे उसे वहाँ टिकने ही न देंगे। उसे वहाँ से घसीट लाने की कोशिश में लग जायेंगे। ,दूसरे—हाँ, यह जरा गंभीर बात है।

उस दिन, लक्ष्मी को अपने नाटक में पार्ट करवाने के लिए जब मोहित ने जया की सहायता माँगी थी, तब जया ने कहा था, 'नहर काट कर मगरमच्छ को मैं घर क्यों बुलाने लगी।' तब उसने महज मजाक किया था। स्वभाव से ही वह परिहास-प्रिय है। मगर दिन गुजरने के साथ वह देख रही थी कि उसका यह मजाक बहुत महँगा पड़ रहा है। रह-रह कर उसका मन भारी हो जाता है। उस भारीपन को जया ठहरने तो नहीं देती मगर वह फिर-फिर आता रहता है।

जया इस युग की नारी है। छुई-मुई नहीं। बात-बात पर आहत होने वाली भी नहीं। खाये हुये चोट को वह बड़ी आसानी से नकार देती है। सेन्टि-मेन्टल तो वह है, मगर वह इस विषय पर सदा सजग रहती है कि इस सेन्टि-मेन्ट के बोझ से दब कर वास्तविक बुद्धि कहीं मर न जाये। पति-पत्नी के सम्पर्कों के विषय में भी वह उदार मतों वाली है।

एक बार कालेज युग की एक सहेली मिली। वह शादी के बाद अहमदाबाद चली गई थी। पाँच वर्ष बाद कलकत्ते आई है। अजीब डूबी-डूबी सी हालत थी उसकी, जैसे कोई काँटा चुभ रहा हो कहीं। सहेली के आगे भी खुल नहीं पा रही थी।

मौका पाते ही जया ने पूछा, 'तुझे क्या हो गया है ?'

'होगा क्या ?'

'देख, मुझसे बन मत, जानती है मैं तुझसे पूरे दो साल सीनियर हूँ ?'

'कैसी सीनियर ? उम्र में तो मैं ही बड़ी हूँ।'

'अरे वह सिनियारिटी नहीं।' अपनी सिन्दूर चर्चित माँग पर उँगली रख कर बोली वह, 'इसकी। तेरे पाँच, मेरे सात।'

'यह कह !' सखी हँस दी। फिर अपनी मनोवेदना की कहानी खोल कर रख दी। वही पुरानी कहानी। अब तक तो ठीक-ठाक था। इधर महाशय की कुछ महिला मित्रों का समागम होने लगा है। घर से बाहर रहने की घड़ियाँ दीर्घ से दीर्घतर होती जा रही हैं।

'यह बात !' जया ने ऐसे कहा कि मानो यह कोई बात ही न हो। 'अरे इतने दिन तो खूँटे से बाँध रखा उसे, जरा चरने-कुलाचे भरने का मौका भी तो

दे वेचारे को।'

'तुझे तो हर वात में केवल मजाक ही सूझता है। पड़ती अपने पर तव आती अक्ल।'

'हाँ। तव भी यही अक्ल आती कि दाम्पत्य वन्धन नाम की जो रस्सी है उसके फेरे सात हों चाहे सत्तरह, उसे ज्यादा खींच-तान नही करना चाहिये। वर्ना'—

'टूट जायेगी, यही न ?'

'जा सकती है।'

'जाये तो जाने दे।'

'अगर जाये तो वे तो ठीक ही रहेंगे, हम विचारियाँ ही मुँह के वल गिरेंगी।'

अपनी प्रिय सखी को कही वातें प्रवचन देने के छल से ही कहीं गई थी, मगर वे केवल दार्शनिक तत्व नहीं थे। जया ने अपनी स्वच्छ साँसारिक वुद्धि से अपने जीवन में भी इसी नीति का अनुसरण किया था। इसलिए उसने जिस दिन सुना कि मलया नाम की मलय समीकरण उसके पति के मन-मन्दिर की खिड़की से आ-जा रही है, और फिर सुनने को मिला (किसी व्यर्थ मनोरथ प्रतिद्वन्दी से) कि 'तुषार-कन्या' के नायक अपनी नायिका को स्टेज के वाहर भी नायिका-रूप में पाने की कोशिश में हैं, तव और स्त्रियों की तरह जया पाँव फैला कर रोने नहीं वैठी। न ही स्वर के आरोह-अवरोह द्वारा, अथवा, कोप भवन में आसन जमा दाम्पत्य अधिकारों को पुनरस्थापित करने में लगी। और न ही 'कंगन छनकाती, सूटकेस सजाती' मायके को पधारी। पति को पता ही न लगने दिया कि उसे कुछ पता है। लक्ष्मी को सावधान कर सकती थी, मगर ऐसा करने से उसके मर्यादा-वोध ने रोका। इसके अलावा उसका ख्याल है कि इन मामलों पर अगर रोक-थाम की जाये तो यह थमती तो हैं नहीं, उल्टे जिद चढ़ जाती है। फिर तो तेजी से वात आगे वढ़ती है। जलस्रोत की गति जहाँ प्रवल है, वांध वहाँ नहीं लगाये जाते। वरन् उसे थोड़ा वह जाने दिया जाये तो अच्छा। गति जव जरा धीमी हो जाये, तो कौशल से उसे आयत्ताधीन करना ही वुद्धिमत्ता है।

किस प्रकार वह किया जाये, और साथ ही उस निःसहाय लड़की की रक्षा भी की जाये (जया खूव अच्छी तरह जानती थी कि मोहित की 'जीवन नायिका' होने की उसमें जरा भी इच्छा नहीं), इसी उधेड़-वुन में जव वह लगी थी तभी आया सुव्रत। वह जिस प्रस्ताव को लेकर आया था उससे उसके दोनों उद्देश्यों की पूर्ति होती थी। मोहित की मुट्ठी से निकल जायेगी मलया और जया को भी किसी अरुचिकर परिस्थिति का सामना नहीं करना पड़ेगा। पति से प्रत्यक्ष या

परोक्ष किसी प्रकार के संघर्ष का सामना न करना पडेगा। ऊपर से लक्ष्मी का भी फायदा हो जायेगा।

इसके दूसरे पहलू पर सोचते समय उसकी चिन्ता जाकर भी नही जा रही थी। लक्ष्मी का कैसा फायदा ? अंग्रेजी में एक कहावत है, कहीं उसकी तरह कड़ाही से निकल वह लड़की आग मे तो न जा गिरेगी ? कृष्णन का जैसा परिचय सुव्रत ने दिया, और उसने खुद 'स्टार' में उसे जैसा देखा, उससे उसका मन कुछ शान्त हुआ। इस व्यक्ति के निकट शायद लक्ष्मी की सुरक्षा पर कोई संकट न आयेगा, उसकी इज्जत घटने की सम्भावना शायद नही। उपस्थित अवस्था मे ही उसकी समावना अधिक है।

क्या यह नयी जीवन-धारा लक्ष्मी को रुचिकर लगेगी ? क्या उसका मन रमेगा ? या, निरुपाय का एकमात्र सहारा जान किसी प्रकार निगल लेगी ? यह चिन्ता जया को कई दिनों तक सालती रही।

उसकी इन चिन्ताओं का अन्त बडे अप्रत्याशित रूप से हो गया। जब उसने लक्ष्मी से प्रस्ताव किया, और उसकी तरफ ध्यान से देखा, और उसके मुँह से निकले लज्जा से पगे तीन छोटे-छोटे शब्द सुने, तब उसके मन का सारा सन्देह उड़ गया, क्योंकि लक्ष्मी की बातों का एक ही अर्थ हो सकता है, और उसे समझने मे कोई स्त्री कभी भूल नही करती। उसके उपरान्त भी जो कुछ संशय था उसका निरसन उस दिन हो गया जिस दिन लक्ष्मी को जया उसके नये जीवन के नये परिवेश में देख आई; केवल कलाकार के स्टूडियो मे ही नही, पर उस आत्मविस्मृत व्यक्ति को छोटी-सी गृहस्थी के घेरे मे। चाय की मेज पर होते हास्य-परिहास की आड में वह लक्ष्मी के हर भावान्तर, हर मुद्रा, हर हरकत को ध्यान से देखती रही। उस पर, उसके कहे दो-चार तीखे मन्तव्यों ने परोसने-वाली के मुख और हाव-भाव पर जो परिवर्तन ला दिये थे, वह भी उसने ख्याल किये थे। सब देख-सुन कर वह यही विचार लेकर लौटी थी कि लक्ष्मी 'माडल' का दायरा छोड़ बहुत आगे बढ गई है। अन्यमनस्क कलाकार की मोटी समझ में शायद यह बात अभी उजागर नहीं हुई है, या आई भी है, तो अपने को काबू मे ही रखा है।

बहन से अधिक स्नेह-भाजन यह अनाथ लडकी इतने दिनों तक भटकने के बाद अगर अपनी धुरी से लग सकी हो, तो जया का एकमात्र कार्य है उसे प्रतिष्ठित होने मे सहायता करना। उसी मार्ग को अपना कर उसे आगे बढना है। वह ऐसा कुछ नही कर सकती। जिससे उस मार्ग मे कोई रोडा आवे। इसी कारण पति के प्रश्न का इतना छोटा सा उत्तर देना पड़ा। अभी तक उसने झूठ तो नही कहा, मगर सत्य छिपा ही रहा। जरूरत होने पर वह झूठ बोलने से भी न हिचकेगी।

॥ नौ ॥

केश के पीछे एक पूरा दिन निकल गया। खुले-बिखरे केश, कवि जिन्हें कहते हैं 'कुन्तल', उनमें उद्दाम चंचलता है। वादलों सी उनकी गति है, उसमें छिपी है विद्युत की सिहरन और हजार रहस्य। मुक्त केश के पुंजीभूत वादलों में छिपी होती हैं विजली। कृष्णन मगर आज जिस केश-राशि को रूपायित करने में लगा है, वे शान्त हैं, संयत हैं। क्रन्दनरत् हैं वे, उनमें से जल की बूंदें झर रही हैं। अनुपम एक देह पर अपनी निकष कृष्ण-रूपराशि फैला कर वह स्थिर है।

वार-वार उधर देख मोटी कूची से कैनवस पर लम्वी-लम्वी रेखायें खींच रहा था कृष्णन। उसकी वांई तरफ, अपने चिह्नित स्थान पर दीवाल की ओर मुँह किये शान्त खड़ी थी लक्ष्मी, निश्चल, निर्वाक, सिर तनिक झुकाया हुआ, चरणों पर चलने का आभास। 'सिनिया उठिते' अर्थात्, स्नान समाप्त कर उठी हैं राधारानी। अव घर जायेंगीं।

यह भी एक चित्र है। इजेल पर रखे चित्र सा अपूर्ण नहीं, वल्कि पूर्णाङ्ग।

मोटी कूँची रख कर अपेक्षाकृत महीन कूँची उठा ली कृष्णन ने। अव शुरू होगा महीन काम, सूक्ष्म रेखायें खिचेंगी यहाँ-वहाँ। कूँची धोकर रंग में डुवोते हुये कृष्णन ने इतनी देर की निस्तव्धता को भंग किया, 'हाथ-पाँवों में दर्द तो नहीं हुआ ?'

'नहीं। दर्द क्यों होता ?'

'दोनों गोलियाँ खाई हैं न ?'

'याद ही नहीं रही।'

'याद न रहने से काम कैसे चलेगा ? खा लिया कीजियेगा, वीमार भी हो सकती हैं।'

'इतनी आसानी से मैं वीमार नहीं होती।'

'यह कोई कह नहीं सकता। गीले केश, गीले कपड़ों में इतनी देर तक रहना पड़ता है।'

'कुछ नहीं होगा मुझे।'

'यह तो वड़ी खुशी की वात है। फिर भी सावधान रहना ठीक है।'

बात-चीत और कूँची का चलना साथ-साथ चलता रहा। इसी तरह कुछ समय और निकल गया। एकाएक घड़ी की तरफ निगाह गई कृष्णन की। कूँची को जगह पर रख कर बोला, 'बस, आज यही तक। साड़ी बदल लीजिये, मैं हँसमुख की शरण लेता हूँ।'

गीले वस्त्र से ढंके वक्षस्थल पर दोनों बाँहों को समेटे बाथरूम की ओर जाते-जाते लक्ष्मी ने कहा, 'मैं काफी नही पिऊँगी।'

'काफी नही, चाय। आपके देश की।'

'मेरे देश की ?' विस्मित हो लक्ष्मी ने दोहराया।

'हाँ, दार्जीलिंग टी।' सुस्मित मुस्कान से कृष्णन ने कहा। इशारा 'तुषार-कन्या' की तरफ था।

लक्ष्मी भी हँस दी। लाज-नम्र मधुर मुस्कान। फिर बाथरूम में जा समाई।

अगले दिन भी निश्चित समय पर कार्य शुरू हुआ। जल-सिंचित वस्त्रों से शरीर ढँक कर कलाकार की सद्यस्नाता सहकारिणी जब तक अपनी जगह पर अपनी विशेष भंगिमा मे खडी नहीं हो जाती, कलाकार बाहर प्रतीक्षा करते है। दरवाजे पर दस्तक दे, पूछ कर ही अन्दर आते हैं। आज जब आये। तब चेहरा समाहित, दृष्टि शान्त, मुद्रा गम्भीर थी। धीरे से आकर अपनी चौकी पर बैठ गये।

फिलहाल केश-पर्व समाप्त हो गया है। शिल्पी की तूलिका अब निम्नगामी है। क्षीण कटि और उससे क्रमशः प्रसारित सुडौल फैलाव जो नारी शरीर की अपनी ही सम्पदा है, जिसके लाखो आलेख्य फैले पडे हैं प्राचीन चित्रो मे, मदिरों की दीवालो मे, पर्वत की गुफाओं मे, उसे रूपायित करना है। केवल आकार ही नही, साथ ही उनका जो वर्ण वैशिष्ट है उसे भी अंकित करना होगा। वह यहाँ पूर्णरूप से नही मिलेगा। राधा के अगो की कचन-आभा, जिसकी तुलना कवि ने 'कनक चन्दा' से की है, वह इस लड़की के पास कहाँ मिलेगी ? उसे यथार्थ रूप मे प्रस्फुटित करने के लिये कृष्णन को कल्पना की सहायता लेनी पडेगी। कृष्णन का मन इस समय उसी कल्पनालोक मे विचरण कर रहा है, शायद उसी कारण उसकी मुख-मुद्रा आज इतनी गम्भीर है।

कृष्णन सोच रहा था कि कविगण तो जब-तब जहाँ-वहाँ उपमा के रूप में चन्द्रमा का प्रयोग करते हैं, पर इस एक क्षेत्र में उनका यह प्रयोग कोई मामूली प्रयोग नही है। इसका एक गूढ अर्थ है। चन्द्रमा की ज्योति मे प्रखरता नही है, है स्निग्धता। चांद हीरक नही कनक है। मगर राधारानी की अंग-छटा में तो हीरक की दीप्ति है। जब चलती है तो सौन्दर्य की छटायें बिखेरती है। उनकी ज्योति चाँद से प्रखर, कनक से उज्ज्वल है। इसके उपरान्त भी कवि जब 'कनक चन्दा' कहते हैं तो उसका भी कुछ तात्पर्य है। जिस विशेष अंग का

बाहर आई। गीली नीलाम्बरी पर एक टर्किश लपेट लिया था उसने। मोहित के मुख पर अपनी आँखें स्थापित कर दीप्त स्वर से वह बोली, मैं अपनी खुशी से यहाँ आई हूँ। अगर मैं नष्ट हो गई हूँ, तो वह भी अपनी इच्छा से। मेरे भले-बुरे के लिये आपको चिन्तित होने की कोई आवश्यकता नहीं।'

बात पूरी कह वह पलट कर फिर बाथरूम के अन्दर चली गई। मोहित की तो बोलती ही बन्द हो गई। लक्ष्मी के नाटकीय आविर्भाव के साथ उसने आँखें जो ऊपर उठाई थीं तो अभी तक वह देखता ही रह गया। उसे विश्वास ही न हो रहा था कि यह वही मलया है जो कभी आँख उठा कर देखती भी न थी, जो सर्वदा नम्र, विनीत और प्रायः अश्रुसिक्त स्वरों में ही बोलती थी। आज तो जैसे स्टेज पर खड़ी हो किसी रजिया बेगम या रानी भवानी का पार्ट अदा कर गई। उसके मुँह पर ही दरवाजा बन्द कर चली गई। केवल बन्द ही नहीं किया, बाहर जाने वाला दरवाजा भी दिखा दिया। उसने जो कुछ कहा, उससे तो जो नहीं कहा वे बातें अधिक स्पष्ट हैं। आपको चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं—का अर्थ तो यही है न कि 'आप अब जा सकते हैं।'

ऐसा ही होता है। यही इस संसार का नियम है। उसके पास मलया की जो आवश्यकता थी वह समाप्त हो गई है। मोहित का पार्ट यहीं खत्म, उसे अब जाना है। केवल जाना ही नहीं विदा होना है। मगर नाटक चल रहा है, नई भूमिका में किसी और का प्रवेश हो रहा है।

कुछ समय बाथरूम की तरफ एकटक देख कर मोहित ने अपने को झटका दिया। दाँत पीस कर बोला, 'ठीक है।'

मतलब यह की रंगमंच से इतनी जल्दी हटने वाला बन्दा मोहित बोस नहीं है। उसके 'रोल' को जबरन काट दिया गया! अगर कोई यह सोचता है कि वह इस बात को यूँ ही निगल जायेगा तो उसकी धारणा गलत है। वह भी देख लेगा कि यह नाटक आगे चल कर क्या रूप लेता है।

॥ दस ॥

पति के विषय में जया का अनुमान सही था। मोहित वह पात्र ही नहीं जो उसका छोटा सा उत्तर पाकर मलया के विषय में और खोज-बीन नहीं करेगा। सन्तुष्ट होने के बजाय उसे तभी सन्देह हो गया था कि जया कुछ छिपा रही है। लक्ष्मी के मामले में वह इतनी निरासक्त नहीं है कि दीर्घ दिन तक भी उसकी खबर न पाकर वह चुपचाप रहे। या उसका अता-पता उसे मालूम न हो। उसे यह भी चिन्ता थी कि मलया से उसका इधर-उधर मिलते रहने का हाल

पल्लवित हो जया के कानों तक किसी ने पहुँचा दिया है। ऐसे हिताकांक्षियों की तो कोई कमी नही। इस कारण वह यह नही चाहती कि मलया उसके पति से मिले या उसके सामने आवे। या, यह भी हो सकता है कि उसी के सहारे से मलया को कोई दूसरा सहारा मिल गया हो।

मोहित जानता था कि मुहल्ले में और उसके बाहर भी जया की काफी प्रतिष्ठा है। इसके बल पर लक्ष्मी को किनारे लगाना उसके लिये विशेष कठिन नही। स्त्री-जाति के लिये इस अभिनय वृत्ति का अनुमोदन जया करती भी नही। उसने इस मामले मे जितनी सहायता की थी वह केवल उसकी खातिर, उसके जिद के आगे झुक कर।

आफिस जाते-जाते ही उसने यह सोच लिया कि मलया के प्रसंग में जया से पूछताछ करने से कुछ फायदा तो होगा ही नही, बल्कि नुकसान होने की सम्भावना है। परन्तु इस मामले को यही खत्म कर देने का भी मन नही होता। अपने निकट वह इस बात को नकार भी नही सकता कि मलया ने उसे किसी हद तक मोह लिया है। उसे पाने की इच्छा तो होती ही है। अधिक नही, इतनी ही कामना उसकी है कि उसे इस प्रियदर्शिनी यौवनमयी नारी का निविड एकान्त साथ मिले, कभी-कभी मिले उसके शरीर का उत्तप्त स्पर्श, सुरक्षित एकान्त में पास-पास बैठना, कुछ खाना-पीना, उसके सुन्दर मुख पर मुस्कान लाना, आनन्दोज्ज्वल कण्ठ से कभी दो-चार प्यार-भरी बातें सुनना—उनमे अमृत का रसास्वादन करना। बस इतनी ही कामना है उसकी। इसमे बुराई कहाँ है? कट्टर नीतिवादी के अलावा कौन सा पुरुष है जो ऐसा नही चाहता, या मौका पाकर ऐसा नही करता?

उसे मौका मिला था और उसने उसका फायदा उठाना चाहा था। मगर कामयाब नही हो पाया। उस लडकी को मुट्ठी मे पाकर भी वह उसे वश मे नही कर सका। उसकी तरफ से मोहित की अनुकूल प्रतिक्रिया नही हुई। उसे आशा थी कि धीरे-धीरे वह भी हो जायेगा। एक तो उम्र कम है, दूसरे घर के बाहर हाल ही मे कदम रखा है। इस दुनिया के रंग-रूप से अभी परिचित नहीं हो सकी है। इन्ही कारणो से उसे अपने को व्यक्त करने में इतना सकोच है। उसके लिये प्रतीक्षा तो करनी ही पडेगी। मगर उस प्रतीक्षा का अन्त तो नजदीक नही आता।

उसे सुव्रत की याद आई। एक बार वह पूछने आया था कि मलया उसके कलाकार मित्र के लिये माडल का काम कर सकेगी या नही। उसने मना कर दिया था। उसके मना करने के बाद भी सुव्रत इस ओर बढेगा, ऐसी आशा नही थी। इन मामलों में उलझने वाला वह नही है। शिक्षक है, पढने-पढ़ाने में ही

उसका समय निकल जाता है। नारी-घटित मामलों में सिर खपाने वाला वह नहीं। और फिर, अगर मलया के प्रति उन्मन हो भी तो, वह उसके पास पहुँचेगा किस सूत्र से ?

फिर भी एक बार सुव्रत को पूछने में, उसे साउन्ड करने में हर्ज ही क्या है ? मेनरोड पर आकर, मोहित बस-स्टाप पर खड़ा बड़ी देर तक बस की राह देखता रहा। मगर एक बस भी न आई। बड़ी देर तक खड़े रहने के बाद पता चला कि किसी जगह 'पुलिस' और 'पब्लिक' की मुठभेड़ हो गई है, और इसके फलस्वरूप यातायात के सब साधन रुक गये हैं। मतलब यह कि आफिस पहुँचने की अब आशा नहीं। कुछ देर और खड़ा रह कर वह सुव्रत के घर की ओर चल पड़ा। वह देर से कालेज जाता है, इस समय अवश्य ही घर पर होगा। सड़क की गड़बड़ी की बात अगर पहले सुन न चुका हो तो जब वह मोहित से सुनेगा तब कहीं जाने का सवाल ही न उठेगा। खूब गप्पें होंगी। उसी में मौका देख कर मलया की बात भी पूछ लेगा।

सुव्रत के घर जाने पर पता लगा कि वह कलकत्ते में है ही नहीं। बारा-सात में उसके एक मामा रहते हैं। उनकी बीमारी का हाल सुन कर कल देखने चला गया है। आज बारह बजे के करीब उसके लौटने की बात है। दो बजे से क्लास हैं उसके। सुव्रत की माँ ने मोहित से इन्तजार करने को कहा। मगर रुकना व्यर्थ है, जान कर वह चल पड़ा।

घर लौटने के सिवा और करने को रह ही क्या गया था ? मगर उसका घर लौटने का बिल्कुल मन न था। जया अब तक खा-पीकर आराम कर रही होगी, या आराम करने का इन्तजाम कर रही होगी। पति देवता के इस अस-मय पुनरागमन से वह खुश न होगी। कुछ वर्ष पहले होती। अब उससे यह आशा रखी नहीं जा सकती। ऐसा नहीं कि अब आकर्षण नहीं है, बस उसकी तीव्रता कम हो गई है। पुरानी हो जाने पर जैसे हर चीज की तीव्रता घट जाती है। तब दाम्पत्य सम्पर्कों से भी घरेलू अभ्यासों के समूह की विशेषता अधिक हो जाती है। यह बात तो उस पर भी लागू होती है। दफ्तर से वापसी पर जब चाय पीकर उसके पाँव क्लब जाने को आतुर होते हैं, अगर उस समय पत्नी मचल कर कहे, 'आओ बातचीत करें, तब क्या मन-मयूर खुशी से नाच उठेगा ?

इस समय घर लौटने का मन न होने का एक कारण और भी था। उसे यह बात बहुत लग गई थी कि जया जान-बूझ कर मलया की बात छिपा गई थी। इसी से वह क्षुब्ध और नाराज था।

जब वह इसी उधेड़बुन में था कि कहाँ जाये, कहाँ नहीं, तभी उसे एकदम से ख्याल आया, क्यों न सीधे कृष्णन के घर ही चला जाये। कुछ समय तो

निकल ही जायेगा। उस नाटक के बाद मिलना भी नहीं हुआ, एक दिन जाना चाहिये था। वह काम भी हो जायेगा, और अगर मौका लगा तो मलया की बात भी पूछेगा।

मोहित ने यह कभी नही सोचा था कि उसकी पडताल का समाधान इस प्रकार हो जायेगा।

घटना-प्रवाह की आकस्मिकता से मोहित बदहवास हो गया। सडक पर आने के बाद जब उसकी बदहवासी कुछ कम हुई तब सारी भावनाओं के ऊपर जो भावना थी वह थी आक्रोश की—पराजय के आक्रोश की। केवल पराजय ही नही, अपमान भी। इस प्रकार उसकी अवहेलना कर चली गयी, एक शरणार्थी लड़की! उसकी इतनी जुर्रत की उसे छोड वह आश्रिता बन बैठी उस तस्वीर वाले की? है क्या उसके पास? कितने रुपये देगा वह माडल को, कितने दिन देगा?

दिल उसका जलने लगा, यह सोच-सोच कर कि मलया ने कभी उसे मुँह नही लगाया था। रिहर्सलों के आगे-पीछे वह जब भी घनिष्ठ होने की चेष्टा करता, वह छिटक कर दूर हट जाती। हाथ पकड़ना भी उसे पसन्द नही, थाम लेने पर अगर झटक भी देती तो भी उसकी नीरव आपत्ति अस्पष्ट न होती। होटल की निर्जनता मे हर्षित हो सामने आना तो दूर की बात, तनिक स्पर्श से सिमट जाती। जैसे कोई छुई-मुई की लता हो! आज कहाँ गया उसके साध्वीपन का ढोंग। अपने को बेआबरू करके एक अनजान परदेशी के सामने अपना नंगापन प्रदर्शित कर रही है। जिस बात पर उसे लज्जा से डूब मरना था, उसी के कारए तौलिया लपेट कर आँख तरेर गई। इतनी हिम्मत उसकी? इसे बर्दाशत भला कैसे करे कोई?

इसके अलावा मोहित ने अपने को ही एक तर्क और भी दिया। मलया के मामले में उसका भी कुछ उत्तरदायित्व है। उसी के कहने पर इस लडकी ने एक दिन बड़ी-अचार की फेरी करना छोड कर, नाटक माण्डली में नाम लिखाया। उसका वह एकमात्र अभिभावक, उसका वह मारलिस्ट भाई, मगर उसे मालूम तक नही? उसे पता चलता तो कभी आने न देता। अतएव, मोहित ही उसके अभिभावक का पद संभाल रहा है। अभिनय के सिवा और किसी काम में उसे उसने कभी नही लगाया। आज जब वही लडकी लोभ के कारए केवल असम्मान ही नही, अध:पतन के रास्ते पर चलने को उतारू हो गई है, तब उसके लिये निश्चेष्ट होकर बैठे रहना कदापि सम्भव नही। जैसे भी हो, इस गर्त से उसे निकलना ही पड़ेगा। यह उसका परम कर्तव्य है। अप्रिय कार्य है, सोच कर उसकी अवहेलना या गफलत करने से काम न चलेगा। फौरन ही इस कार्य में लगना होगा। कार्य वह शोभन है या अशोभन, यह सोचने का

भी अवकाश नहीं। नीति का प्रश्न तो उठता ही नहीं। उद्देश्य का पूरित होना ही एकमात्र लक्ष्य है। पथ की बाधाओं की चिन्ता करने की भी आवश्यकता नहीं।

॥ ग्यारह ॥

बाथरूम में जाकर लक्ष्मी ने जो दरवाजा बन्द किया, उसके बाद फिर बहुत देर तक वह चुप रही। आकस्मिक उत्तेजना का ज्वार उतरते ही उसे लगा कि उसने जो किया वह ठीक नहीं किया। कृष्णन के सामने इस तरह निकल पड़ना ? न जाने क्या सोचा होगा ? छिः ! मगर वह और कर ही क्या सकती थी ? इतने बड़े, इतने घृक्षित लाँछन को चुपचाप निगल भी कैसे लेती ? वे जब चुप हो गये, शोर-गुल उन्हें पसन्द नहीं, लक्ष्मी को तब हथियार उठाना ही पड़ा।

कृष्णन अपनी उसी चौकी पर उसी तरह चुपचाप बैठा रहा। यह तो अति जघन्य घटना घट गई, एक ओर जैसे वह इसकी घृण्यता से जितना पीड़ित था, दूसरी ओर इसकी प्रतिक्रियाओं की चिन्ता भी उसे खाये जा रही थी। वह चिन्तित था सिर्फ लक्ष्मी के कारण। मगर उसे तनिक भी पता होता कि उसके यहाँ आने का यह फल होगा, तो वह कदापि-कदापि उस निरपराध को यहाँ आने को न कहता। ऐसी परिस्थिति की कल्पना सुव्रत को भी न थी शायद। कल्पना न होना कोई आश्चर्य की बात भी नहीं। पर एक बात कृष्णन की समझ में नहीं आई थी। मिसेस बोस ने पति से छिपा कर लक्ष्मी को यहाँ क्यों भेजा था ? साफ जाहिर है, वजह जो भी हो, मोहित इसका घोर विरोधी है। या शायद वह लक्ष्मी को अपने प्रभाव से अलग नहीं करना चाहता।

यह सोचना दुराशा-मात्र है कि मोहित यहीं रुक जायेगा। लक्ष्मी की कही गई वे बातें उसे अतीव कुपित कर गई है, वह तो स्पष्ट ही था। अब वह अपने आक्रोश को किस प्रकार प्रकट करेगा, कौन जाने ? आगे वह अगर उसे अपमानित करे या मुसीबत खड़ी करे तो वह उसकी रक्षा किस प्रकार करेगा, इसी की चिन्ता उसे सबसे ज्यादा थी।

घटना तो बेशक बड़ी ही अप्रीतिकर थी, मगर उसके बीच बहती आनन्द की एक सूक्ष्म-धारा उसके मन को बार-बार छू जा रही थी। जिसे कभी सिर उठाते या आँखें मिला कर बातें करते नहीं देखा गया था, जो हर समय शांत और विनम्र रहती है, वह कैसे निकल कर तलवार की धार सी उस आदमी के सामने खड़ी हो गई, और जो कुछ कहा उससे तो एक ही उद्देश्य प्रकट था। सामान्य परिचित एक भिन्न प्रांतीय कलाकार, जिसके निकट वह काम करती

है, एक अति घृणित लांछन से उसकी रक्षा करना। एक बार उसने यह सोच कर भी न देखा कि उसने, अपने इस कार्य द्वारा, अपने लिये कौन सी मुसीबत मोल ले ली। उसमे इतनी बुद्धि तो अवश्य है। सब जान-बूझ कर भी वह आकर उसके बगल में खड़ी हो गई। उसके साथ भी उसका सम्पर्क ही कितना क्या है ?

बाथरूम से लक्ष्मी को निकलते देख कृष्णन की तन्द्रा टूटी। वह उठ कर बगल वाले कमरे में चला गया। कपड़े उठा कर लक्ष्मी फिर बाथरूम में चली गई।

चित्र के काम में दुबारा लगना आज संभव नही। लक्ष्मी ने भी इन्तजार नही किया। बाथरूम से निकल कर बोली, 'मैं जा रही हूँ ?'

'अच्छा ! आपका अकेले जाना क्या उचित होगा ? चलिये मैं आपको छोड़ आऊं।'

'नही ? मैं चली जाऊंगी।'

'तो फिर एक काम कीजिये। नीचे से हँसमुख को ही बुला लीजिये। वह आपको बस-स्टाप तक पहुँचा देगा।'

लक्ष्मी ने हामी भरी।

अगले दिन वह नहीं आई। कृष्णन की चिन्ता बढ़ी। उसके घर का पता मालूम नही। जाकर सुव्रत से पता लगा सकता है। उसका घर भी ठीक से मालूम नही। सड़क तो जानता ही है, पूछ कर पता लगा लेगा। मगर उसे इन बातों का कुछ पता है भी ? अगर होता तो वह खुद न आता ?

बहुत आगा-पीछा सोच कर एक दिन और इन्तजार करना तय किया।

लक्ष्मी का आने का समय था डेढ़ से दो के बीच। वह खाना खाकर आती। इधर कृष्णन भी लन्च समाप्त कर तैयार रहता। उसके आने का अगले दिन भी समय निकल गया। अब तो कृष्णन को बड़ी घबराहट हुई। आज दिन ढलते ही उसे कुछ करना ही पड़ेगा, यह ठान कर वह जर्नल के पन्ने उलटता ही, दरवाजे पर दस्तक सुन कर आश्वस्त हुआ। साथ ही खुश भी। अन्दर आने से पहले, ऐसा ही हल्का-सा दस्तक देकर लक्ष्मी अपनी उपस्थिति के विषय मे उसे ज्ञात कराती।

दरवाजा भिड़काया था। बैठे ही बैठे वह कह सकता था, 'आइये।' मगर नही। उठ कर उसने अपने हाथों से दरवाजा खोला और खोलते ही चौंक पड़ा।

जल्दी से हट कर उनके प्रवेश का रास्ता बना दिया, मगर, इच्छा होते हुए भी अभ्यर्थना के शब्द बोल न सका। नमस्कार करना भी भूल गया।

सामने जया थी। पीछे खड़ा था सुव्रत। दोनों ही जैसे कोई दूसरे लोग हों। शक्लें उतरी हुई। धीरे-धीरे जाकर वे सोफे पर बैठ गये। जबान पर

भी सबके ताले पड़ गये थे।

कृष्णन समझ रहा था कि लक्ष्मी पर कोई भयंकर मुसीबत आई है। मगर पूछने की हिम्मत वह बटोर न पा रहा था। बड़ी चेष्टा से उसने बहुत देर बाद कहा, 'उनका क्या हाल है?'

'ठीक नहीं।' सन्तप्त स्वर में सुव्रत ने कहा, 'उनके भाई ने उन्हें घर में रहने नहीं दिया।'

'हे राम! तो फिर वे कहाँ हैं?'

'अपनी सहेली के घर। वही कल आकर मुझे बता गई।' यह स्वर जया का था। फिर बोली, 'वहाँ तो उसका रहना हो न सकेगा। मैंने उसे अपने पास बुलाया था। वह राजी नहीं हुई। होती भी कैसे?'

अन्तिम वाक्य करुणा से छलछला रहा था। उसमें उसकी अक्षमता की पीड़ा का आभास भी था। कृष्णन समझ गया। अकेली तो रहती नहीं जया। उसके घर जाकर रहने का अर्थ होता एक और जन के निकट होना। वही उस घर के मालिक हैं। लक्ष्मी डूब मरेगी, मगर वहाँ न जायेगी। उसके भाई से शिकायत मोहित ने ही की है, इस बात की तो बताने की भी जरूरत नहीं। साथ ही यह भी सहज ही अनुमेय है कि शिकायत करते समय उसने उसमें ऐसा जहर घोला होगा कि लक्ष्मी के भाई जैसे पुरातन-पन्थी व्यक्ति क्रोध से पागल हो गये।

अब, इस अवस्था में कृष्णन उसकी कैसे सहायता करे, अगर उसके माता-पिता होते तो उन्हें राजी कर लक्ष्मी के यहाँ रहने का इन्तजाम कर सकता, कम से कम प्रस्ताव तो कर ही सकता। इस अकेले घर में वैसा कैसे होगा? खास कर जो घटना घट गई है, उसके यह बात तो बिल्कुल नामुमकिन है। इस समय ऐसा करना तो उसे और भी काँटों में घसीटता होगा। मोहित इसी मुहल्ले का रहने वाला है। उसका कुछ प्रभाव भी है, खास कर नई उम्र के लड़कों पर। उन्हें इस मामले में भड़का देना भी कुछ मुशकिल नहीं। इसके अलावा, ऐसा करना अत्यन्त अशोभनीय होगा—हर तरह से। यह तो सब ठीक है, मगर साथ ही यह भी सच है कि जान कर हो या अनजाने से, उसकी विपत्ति का कारण तो वही है। उसी के कारण, एक निरपराध लड़की कलंक का बोझा लादे निराश्रय हो गई है। उसे पूछने वाला कोई नहीं।

इस जिम्मेदारी से वह किसी भी प्रकार कन्नी नहीं काट सकता। अलग हट कर खड़ा हो जाना भी संभव नहीं। मगर वह करे तो क्या?

कृष्णन को ख्याल आया, नौकरी-चाकरी करने वाली लड़कियों के लिये कलकत्ते में मेस-होटल वगैरह हैं। कहाँ हैं, इसका ठीक-ठीक पता उसे नहीं। सुव्रत से पूछा, उसे मालूम है या नहीं। यह भी कहा कि इन्तजाम तो फौरन ही करना पड़ेगा।

उसी क्षण जया ने कहा, 'इस समय लक्ष्मी के लिये एक ही आश्रय को सोच सकते हैं, और वह भी थोड़े दिनों वाली नहीं, हमेशा वाली।'

कृष्णन ने चौंक कर जया को देखा। फिर आँखें झुका लीं। जया ने फिर कहा 'मेरी बातों का आशय तो आप समझे ही होंगे मिस्टर कृष्णन ?'

न समझने लायक बात तो थी नहीं। कृष्णन ने कहा, 'मैंने उन्हें कभी इस दृष्टि से देखा नहीं मिसेस बोस।'

'मुझे मालूम है। मगर मनुष्य की दृष्टिभंगी बदलती है, उसे बदलना पड़ता है।'

सिर झुकाये, सोच में डूबा, बैठा रहा कृष्णन। जया कुछ देर इन्तजार करने के बाद बोली, 'उसे तो आप काफी दिनों से देख रहे हैं। उसके विषय में कुछ-कुछ जानकारी आपको मिली ही होगी। क्या आपका यह ख्याल है मिस्टर कृष्णन की वह आपके योग्य बिल्कुल भी नहीं है ?'

'नहीं, नहीं। ऐसा तो मैं किसी के विषय में कभी नहीं सोचता। अपने विषय में इतना गर्व मुझे नहीं है। मैं केवल इतना ही कह रहा था कि अभी तक मैंने ऐसा सोचा नहीं था। यह भी नहीं सोचा था कि इधर कुछ वर्षों तक ऐसा सोचने का मौका भी आयेगा।'

उसकी बातें सुव्रत के मन को छू गईं। वह पुरुष है। वह जानता है कि यह एक ऐसा प्रसंग है, जिसके लिये मानसिक रूप से तैयार होना बहुत आवश्यक है। जया के कुछ कह पाने के पहले ही उसने कहा, 'यह तो हम नहीं कहते हैं कि आप अभी शादी करने चलिये। कदम तो समझ कर ही उठाना है।'

जया ने जोड़ा, 'आप यह भी मत सोच लीजियेगा कि आज वह निराश्रय है, इस कारण हम उसे आपके गले मढ़ने के फेर में हैं।'

'अरे छि !' 'लज्जित हो कृष्णन ने कहा। 'आपके या सुव्रत के विषय में ऐसे ख्याल रखूंगा, क्या मैंने अपना यही परिचय आप लोगों को अब तक दिया है ?' कृष्णन के स्वर में पीड़ा का जो आभास था उसने जया को भी प्रभावित किया। अनुतप्त हो वह बोली, 'क्षमा करें मिस्टर कृष्णन। बात मैंने यों ही कह दी। सोच कर नहीं कहा।'

जया जैसे अपने से ही बोली, 'कौन सा परिचय दिया, यह तो मैं...आपके सामने अब क्या कहूँ ?'

सुव्रत ने कहा, 'आज हम चलते हैं। चलिये मानो।'

चलते-चलते जया ने कहा, 'कल हम फिर आयेंगे।'

मेहमानों को जाते देख कृष्णन की तन्मयता टूटी। हड़बड़ाकर बोला, 'किसी की मुसीबत का नाजायज फायदा उठाऊँगा, मगर उनके—'

संशय की रेखायें उसके माथे पर उभर आईं। बाकी शब्द उसी के गले में फँस कर रह गये। जया सुव्रत के पीछे थी। घूम कर खड़ी हो गई। बड़े स्नेह से

कृष्णन को देखा। स्निग्ध मगर दृढ़ स्वर से बोली, 'नहीं। अगर ऐसा ही होता तो यह प्रस्ताव लेकर हम आपके पास कभी न आते। मैं भी तो नारी हूँ। किसी दूसरी नारी की मर्यादा का प्रश्न मेरे लिए बहुत महत्वपूर्ण है, और फिर, आप तो जानते ही हैं कि वह मेरी कितनी प्रिय है।'

'आपको यकीनन मालूम है कि उनकी तरफ से—'

'जानती हूँ भाई।' कृष्णन की पीठ पर हाथ रखती हुई जया बोली, 'आज से नहीं। यह बात तो मैं उसी दिन से जानती हूँ, जिस दिन तुम्हारे पास भेजा था। क्या तुम कभी कुछ भी न समझ पाये ?'

कृष्णन झेंप गया। उसकी सहायता में सुव्रत ने कहा, 'कलाकार तो एक-चक्षु हिरण की तरह है। वह तो केवल एक ही तरफ देखता है।'

तुनक कर जया ने जवाब दिया, 'कलाकार के मत्थे क्यों मढ़ रहे हो ? तुम सब एक जैसे हो।'

रजिस्ट्रेशन आफिस में दोनों तरफ के गवाहों की आवश्यकता होती है। जया और सुव्रत ने इस कार्य को भी आपस में बाँट लिया। पुराने रिश्तों का सूत्र पकड़ कर यही तय था कि वे दोनों यथाक्रम वधू और वर के गवाह होंगे। लक्ष्मी को जया बहन के समान मानती है, सुव्रत कृष्णन का मित्र है। जया ने मगर पक्ष बदल लिये। आफिस में प्रवेश करते-करते उसने कहा, 'कृष्णन मैं तो तुम्हारी तरफ।'

'अवश्य, यह अधिकार तो आप मुझे पहले ही दे चुकी हैं दीदी।'

'तू टुकुर-टुकुर ताकती क्यों है ?' लक्ष्मी को तीर मारा जया ने, 'जली क्यों मर रही है ?'

साथ ही उत्तर मिला, 'मरूँ न तो क्या करूँ ?'

जया ने कहा, 'अरे! इस छोकरी की जबान तो आज खूब चल रही है! अब तक तो गोली लगने पर भी मुँह नहीं खोलती थी।'

जया ने बात ठीक ही कही थी, इसका प्रमाण अगले ही क्षण मिल गया। सब को चकराती वह सुव्रत की ओर खिसक कर बोली, 'जाइये न, मेरे पास तो मेरे भैया हैं।'

सुव्रत बहुत खुश हुआ। चरम अपमान और दुर्दशा के घेरे से निकल कर इस विस्थापित लड़की को स्वाभाविक जीवन में पुनः प्रतिष्ठित करने के लिये जया भाभी जो कर रही हैं उसकी उपमा नहीं। उनकी बराबरी में उसने किया ही कितना ? उस 'तनिक' सा उपकार के लिये उसे इतना बड़ा पुरस्कार देकर धन्य किया जायेगा, यह उसके लिए कल्पनातीत है।

लक्ष्मी के कन्धे पर हाथ रख उसने कहा, 'जरूर हैं। अगर उस दल वालों का ख्याल है कि हम कमजोर हैं, तो यह उनकी गलती है।'

उसे ख्याल आया कि उसे एक काम करना है। इसका उत्तरदायित्व लक्ष्मी ने ही उसे सौंपा है। कुछ मित्रों के सहारे उसे यह कार्य करना पड़ेगा। उसने देखा कि इस आनन्दमय क्षण में भी लक्ष्मी चिन्तित है। उसे उस काम को झट-पट करना होगा।

विवाह के उपलक्ष में कृष्णन ने एक प्रीतिभोज का आयोजन किया। वह चाहता था कि किसी होटल में पार्टी हो। पर जया ने उसका प्रस्ताव रद्द कर दिया। उसने कहा, 'क्यों, तुम्हारा हँसमुख कहाँ गया ?'

'है। मगर —'

'इसमें मगर क्या ? वह लड़का तो लाख में एक है। और अब नहीं तो, हम सब कब काम आयेंगे ?'

आगे चल कर देखा गया कि जया ने ठीक ही कहा था। लाख में एक न भी हो, तीन जवानों के बराबर काम हँसमुख ने कर दिखाया। लक्ष्मी भी पहले दिन की तरह खड़ी न रही। उसे तो नववधू की निष्क्रियता छोड़ कर पहले ही दिन से गृहिणी का पद सँभालना पड़ा था। जया में मगर कुछ परिवर्तन आ गया था। यों तो सबसे पहले आई, सब देखा-सुना, खूब शोर-गुल मचाया, फिर भी रह-रह कर उदास हो जाती। उसका यह परिवर्तन लक्ष्मी ने शुरू से ही देखा-समझा था। मौका पा कर वह एक बार जया के पास आकर उससे लिपट गई। जया समझी। उसने धीरे-धीरे कहा, 'यह उत्सव यहाँ नहीं होना था। होना इसे मेरे घर पर था। इस बात को मैं किसी प्रकार भूल नहीं पा रही हूँ।'

इस कारण वह कितनी दुःखी थी, लक्ष्मी खूब जानती थी। उसके पीछे लज्जा और वेदना से भरपूर जो घटना है, जिसकी याद जया को हर क्षण कचोट रही है, उसे भी लक्ष्मी खूब जानती थी। इसी कारण जया की बात सुन कर वह चुप रह गई। बहुत देर बाद बोली, 'यह घर भी तो तुम्हारा ही है, दीदी।'

'अब चल, बहुत काम पड़ा है।'

इसके बाद तो वह इतना हँसी, इतना बोली, इतने-इतने मज़ाक किये कि उसके दुःख की गहराई का किसी को पता भी न चला। पार्टी में शरीक होने वाले कृष्णन के मित्र और लक्ष्मी की 'अचार-बड़ी युग' की वह सहेली जिसके घर वह उस परम दुःख के समय रही थी, उनको भी भनक ही न लगी। वाक-चतुरा, मधुर-वचना नारी के प्राणोच्छ्वल हास्य-परिहास की धारा में सब बह गये।

जब सारे मेहमान चले गये, और जया बैठक में कृष्णन से बातें कर रही थी, तब लक्ष्मी सुव्रत को बरामदे में बुला ले गई। उसके कुछ कहने के पहले ही सुव्रत ने कहा, 'मैंने पता लगाया था। वे सकुशल हैं। जिससे पता लगवाया है, वह उसी मुहल्ले का रहने वाला है। आदमी भी भला है। नाम है सुदीप, सुदीप सेन।'

'ओह ! सुदीप भैया ?'

'तुम जानती हो उन्हें ?'

'हाँ, मेरे भैया के पास आते रहते हैं।'

'उसी ने कोशिश करके कुछ छोटे लड़कों को इकट्ठा किया है। वे दोनों शाम उन के पास पढ़ने आते हैं। जो कुछ मिलेगा, उससे उनका काम किसी तरह चल ही जायेगा। किसी से कोई सहायता तो वे लेंगे नहीं। और वह नौकरानी भी है। खाना पकाना, झाड़-पोंछ वही करती है। उसकी माँ भी आकर हाल-चाल पूछ जाया करती है।'

उत्कर्ण होकर सुन रही थी। उसे पता ही न चला, कब उसकी आँखें भर आई थीं। सुव्रत ने कहा, 'न रोओ। आज के दिन आँसू नहीं गिराते। घबराती क्यों हो, एक दिन सब ठीक हो जायेगा।'

आँसू पोछती लक्ष्मी बोली, 'कभी-कभी उनके हाल मुझे बता जायेंगे न ?'

'ज़रूर बताऊँगा। यह काम कुछ मुशकिल भी नहीं। सुदीप का छोटा भाई हमारे कालेज में पढ़ता है। मेरा छात्र है वह।'

'अरे ! सच ?'

'हाँ। एक और तरफ भी कोशिशें चलाई जा रही हैं। देखें, कुछ होता है कि नहीं। अगर कामयाबी हासिल हुई तो उनकी तरफ से कोई चिन्ता न रहेगी।'

'कैसी कोशिश ?'

'मैंने तुम्हें पहले बताया नहीं था, क्योंकि इतने दिन बात बनने लायक न थी। अब ज़रा उम्मीद हुई है। बात यह है कि, वे जिस कारखाने में थे, वहाँ के मालिक से बात-चीत चल रही है—उन्हें कुछ काम्पेनूसेशन मिल सकता है या नहीं। सुदीप 'ट्रेड-यूनियन' का काम भी थोड़ा बहुत करता है न, इस कारण सुविधा है।'

'काहे का काम करते हैं ?' यह शब्द लक्ष्मी ने पहले कभी सुना न था।

सुव्रत ने कहा, 'इस बात को समझने में तुम्हें काफी समय लगेगा। मैं भी इस विषय में बहुत कम ही जानता हूँ। मगर काम अच्छा है। कारखानों में काम करने वालों को मालिक-पक्ष ठगने न पायें, उनके प्राप्य से वे वंचित न किये जायें, इन बातों के लिये उन्हें संघबद्ध करना, उनके अधिकारों के लिये लड़ना, यही सब।'

'ओह हो ! सुदीप भैया जो एकबार जेल गये थे, वह भी क्या इसीलिये ?'

'होगा। जो लोग इस किस्म के काम करते हैं, उन्हें तो अक्सर जेल जाना पड़ता है। खैर केवल सुदीप नहीं, उनके नेताओं में से भी एक इस काम्पेनूसेशन वाले मामले में दौड़-धूप कर रहे हैं। मैं भी एक दिन उस कारखाने के मालिक से मिल आया हूँ। उनका कहना है कि एक्सीडेन्ट के लिये वे ही जिम्मेदार हैं

नये को आरंभ किया। शुरू के कुछ दिन तो घूमने-फिरने में ही निकल गये। कई बार शहर से बाहर भी जाना हुआ। यहाँ-वहाँ मिलने भी जाना पड़ा। गप्पें करते घन्टों बीत गये। कितनी ही बातें—घर की सजावट, भविष्य के सपने। धीरे-धीरे ये बातें कम हो गईं। अब कभी बैठा सोचता रहता है, कभी किताबों में डूब जाता। स्टूडियो में भी कभी-कभी चला जाता है, मगर किसी काम में हाथ नहीं लगाता। या तो उतरी हुई सूरत ले छत पर टहलता है, नहीं तो चंचल हो उसे पुकारने लगता है। घबराई हुई लक्ष्मी आकर पूछती, 'क्यों बुला रहे हो ?'

'दिन भर तुम्हें इतना क्या काम रहता है जी ?'

'काम तो बहुत है।'

'नहीं, कोई काम नहीं है।'

'तो फिर फर्माइये, क्या करना है ?'

'कुछ नहीं। आओ।'

हाथ पकड़ उसे ऊपर ले जाता। उसे बाहों में समेट कर बच्चों जैसा चंचल हो जाता। किसी-किसी दिन उसके बादल जैसे केशों में मुँह छिपा कर बैठा रहता।

मौका देख लक्ष्मी ने एक दिन फिर चित्र का प्रसंग उठाया, 'तुम जब बाहर गये थे, वे सज्जन आकर बहुत देर तक बैठे रहे।'

कृष्णन ने यह न पूछा कि कौन से सज्जन। उसे पता है। आज उसने कहा, 'अब जिस दिन आयें, अगर मैं घर पर न रहूँ तो कह देना कि यह चित्र अब नहीं बनेगा। दराज में साड़ी और जेवर हैं, वापस कर देना।'

ठगी सी सुनती रही लक्ष्मी। केवल विस्मय ही नहीं, डर भी लगा उसे। इस चित्र के कारण क्या कुछ हो गया ! कितनी लज्जा, कितना अपमान ! क्या इसी कारण उस चित्र से इतना नाराज है कृष्णन ? मगर दूसरी तरफ से देखा जाये तो यह चित्र ही उनके मिलन का सेतु है। आँधी-तूफान के बीच से उसी ने उन्हें यह खुशियों भरा जीवन बख्शा है। लक्ष्मी के लिये वह कल्याण का दूत है। अगर पति को खुश करने में वह समर्थ हो सकी है तो उन्हें भी इसका सादर स्वागत करना चाहिये।

और फिर इस चित्र के साथ कृष्णन के कितने सपने, कितनी साधना, कितनी उद्दीपना जुड़ी हुई है। उसने शिल्प की महान प्रतिश्रुति उस चित्र की हर रेखा में छिपी हुई है। इसे कहीं वर्जन किया जा सकता है।

कृष्णन की इस विरूपता का कारण लक्ष्मी की समझ में नहीं आया। उसने एक बार सोचा कि शायद कृष्णन का ऐसा ख्याल हो कि वह उसे पहले के समान सक्रिय सहायता न दे सकेगी। इस विषय में उसे चितामुक्त करने के लिये उसने एक दिन कहा, 'तुम मेरी गृहस्थी में व्यस्त रहने की बात सोच कर हिचक रहे

हो ? ऐसी कोई बात नही । जब कहोगे आकर खडी हो जाऊँगी ।'

'नही । तुम्हें अब यहाँ खड़ा नही किया जा सकता ।'

लक्ष्मी ने सोचा कृष्णन मजाक कर रहा है, मगर उसकी मुख-मुद्रा मजाक-वाली नही थी ।

फिर भी उसने हल्के स्वर में कहा, 'क्यों ? मैं इन्ही थोड़े दिनों में बदसूरत हो गई हूँ क्या ?'

कहते-कहते हँस पडी लक्ष्मी । बदसूरत तो क्या, इन दिनों उसकी सुन्दरता में ज्वार आया हुआ था । केवल अपनी निगाहों में ही नही, पति की मुग्ध-दृष्टि मे भी यही भावना स्पष्ट थी ।

उसकी विद्युत्-रेखा जैसी मुस्कान को कृष्णन ने देख कर भी अनदेखा कर दिया । गम्भीर रह कर ही उसने कहा, 'बात शायद तुमको समझा नही पाऊँगा लक्ष्मी । जानना चाहती हो, क्या हो गया है मुझे ? उस चौकी पर बैठ कर मैं तुम्हे जिस दृष्टि से देखता था, आई हैव लास्ट दैट आर्टिस्ट्स आई । कलाकार की उस दृष्टि को मैंने खो दिया है ।'

लक्ष्मी विमूढ हो उसे देखती रह गई । उसकी बातों का अर्थ क्या है यह वह समझ न सकी ।

कृष्णन ने कहना जारी रखा, 'तुम्हे सामने रख जब मैं चित्र बनाता था तब तुम थी एक सुन्दर शरीर— ए ब्युटीफुल फिगर । उसके प्रति अंग की बनावट को मैंने बारीकी से देखा और अपनी तूलिका के सहारे उसे प्रस्फुटित करने की चेष्टा की । उस पर मेरी कोई आसक्ति न थी । मगर कलाकार के अलावा मुझमें एक व्यक्ति और भी है । इस व्यक्ति की प्रवृत्तियाँ हैं, वासनायें भी हैं । पर इस व्यक्ति से उस कलाकार की दृष्टि को तब स्पर्श नही किया था । जिसका चित्र मैं बना रहा था, उसके भी प्राण है, रक्त-मास है, उसके सीने मे भी ताजा खून बह रहा है, इन बातों के प्रति तब मैं एकदम निर्विकार था ।···

'आज मेरी निगाहों मे उसका सारा चेहरा ही बदल गया है । इस समय वह नारी, देह-मात्र नही, मेरी पत्नी है । उसे मैंने अपनी कामनाओं, वासनाओं के रंग मे रंग डाला है । उसे मैं प्यार करता हूँ, उस पर मेरा प्रचण्ड लोभ है । जी चाहता है उसे निकट पाऊँ, उससे लिपट जाऊँ । वह और जो चाहे हो, मगर मेरे चित्र का माडल नही हो सकती ।'

सुनती रही लक्ष्मी । अन्तिम वाक्यो ने उसके मन को मिठास से भर दिया । किस पत्नी को न भर देता ? मगर उसकी तन्मयता अधिक देर ठहर न सकी । पराजय की ग्लानि उसके मन की मिठास को कड़ुवाने लगी । पति के प्रेम का अखण्ड अधिकार उसे प्राप्त हो गया है । इससे अधिक गौरव की बात हो ही क्या सकती है ? मगर, उसका प्रेम उसकी प्रतिभा के पथ में रोडे डाले, तो कहाँ रहता है उसका गौरव ? क्या मूल्य है उस पत्नी का जो शय्या पर पति का

साथ तो दे, पर कर्मक्षेत्र में उसकी प्रेरणा न बन सके ? विवाह अगर कलाकार की साधना का गला घोंटता है, तो उसकी सार्थकता कहाँ ?

वैसे तो कृष्णन की सारी बातों का तात्पर्य लक्ष्मी के पल्ले न पड़ा। उनकी तह तक पहुँचने योग्य शिक्षा तो उसने पाई न थी। लेकिन जो थोड़ा बहुत वह समझ पाई, उसी से वह अपनी दृष्टि में अपराधी हो गई। वह आई थी कृष्णन की सहायता करने—इसका उसे गर्व था। वह एक कलाकार की साधना-संगिनी है! उसका शरीर तुच्छ वस्तु नहीं, एक कलाकार उसमें से अपनी सृष्टि की सामग्री आहरण करता है। वह सृष्टि उन्हें तृप्ति देने के साथ ख्याति और गौरव का मुकुट भी पहनायेगी। पर्दे की आड़ में रह कर वह उसका हिस्सा बँटायेगी।

आज उसका सारा गर्व धूल में मिल गया। अपनी निगाहों में गिर गई लक्ष्मी। उसके कारण उसके पति की शिल्पी-सत्ता नष्ट हो चली है। छिः!

बिना कुछ बोले, धीरे-धीरे उठ कर चली गई वह। आँसू रोके नहीं रुक रहे थे। इस समय उसे एक ऐसे एकान्त की आवश्यकता है जहाँ जी भर कर वह रो सके।

कृष्णन की जमापूँजी ऐसी न थी कि घर बैठे अधिक दिनों चल सकता। शादी के मौके पर काफी खर्च भी हो गया था। उसके बाद भी खूब खुले हाथों खर्च करता रहा। जब कभी लक्ष्मी रोकती तो वह टाल जाता। जब तब उपहार लेने में लक्ष्मी को संकोच होता—मगर वह कह-कह कर हार गई, मगर कृष्णन सुने तब तो ? पत्नी को वह हर तरह से खुश और स्वच्छल रखना चाहता था।

उसे अपनी माँ की याद आती। प्रथम जीवन में तंगी बहुत थी, पर परवर्तीकाल में काफी सुधार हो गया था। मगर पिता ने, उपहार की तो क्या कहें, अत्यन्त आवश्यक वस्तुओं के अलावा, कभी कुछ ला कर माँ को नहीं दिया कभी। अपने मुँह से माँ ने कभी कुछ कहा तो नहीं, पर इस कारण उनके मन में क्षोभ तो था ही। कृष्णन का प्रण है कि वह लक्ष्मी के मन को यह क्लेश कभी न पहुँचायेगा। इस प्रकार, किसी हद तक, पिता की कमी को पूरा करेगा।

कुछ महीनों बाद, किराये के रुपये, जो कि घरेलू खर्च का छोटा सा हिस्सा ही पूरा करता था, पत्नी को देकर कृष्णन ने कहा, 'अभी इतना ही रखो, बाकी फिर जल्दी ही दूँगा।'

लक्ष्मी जानती थी कि यह 'बाकी' जो अब तक बैंक से आ रहा था, अब किसी दूसरी जगह से आयेगा। इसी कोशिश में कई दिनों से चक्कर लगा रहा है कृष्णन। एक लैण्डस्केप शुरू किया था, मगर उसकी गति की मन्थरता को देख कर लक्ष्मी ने अन्दाजा लगा लिया था कि या तो इसमें चित्रकार का मन

नही लग रहा है, या आदत छूट जाने से हाथ नही चल रहे हैं।

जो भी हो, चित्र एक दिन पूरा भी हुआ और एक नुमायश में बिक भी गया। प्राप्ति मगर आशानुरूप न थी। गृहस्थी की मलिनता छिपाये न छिपी। फिर भी जैसे-तैसे खींच-तान कर चला रही थी लक्ष्मी। गरीबी से तो उसका बहुत पुराना परिचय है—और, यह गृहस्थी भी क्या विकट वस्तु है, यह भी वह खूब जानती है।

सद्यस्नाता राधारानी का असमाप्त चित्र स्टूडियो के एक कोने में पड़ा था। उसे देखते ही लक्ष्मी का दिल टूटने लगता। मगर गृहस्थी की फटेहाली को देख एक दिन उसे फिर उस प्रसंग को छोड़ना पड़ा। इस बार उसका प्रस्ताव भिन्न था। उसने कहा, 'एक काम करो तो कैसा हो? जो लोग मॉडल का काम करती हैं, उन्ही में से किसी को अगर बुला लिया जाय—'

वाक्य वह पूरा न कर पाई। रुलाई से गला रुँधा जा रहा था।

कृष्णन ने चित्र को देखा। फिर कहा, 'यह कैसे हो सकता है? हर ऐरे-गैरे से यह काम तो हो नही सकता।'

आजकल कृष्णन उदास रहता है। जब-तब बाहर जाता है। उसे देखने से पता चलता कि उसे बहुत दौड़-धूप करनी पड़ रही है।

कई दिन बाद, एक दिन बड़ा खुश-खुश घर लौटा। किवाड़ हँसमुख ने खोला। मालिक और मालकिन की देखा-देखी इधर कुछ दिनों से उसने भी हँसना बन्द कर दिया था। आज सारे बन्धन टूट गये। कृष्णन ने आते ही पुकारा, 'लक्ष्मी!' तहे दिल से आई ऐसी पुकार लक्ष्मी ने बहुत दिनों पर सुनी। मगर वह फौरन निकल कर सामने न आ पाई—वह बाथरूम मे थी। केवल पानी डालना शुरू ही किया था उसने। हँसमुख ने बाथरूम के सामने आकर कहा, 'भाभी जल्दी, साहब बुला रहे हैं।'

'अभी आई।'

हँसमुख ने, विवाह के बाद, लक्ष्मी को 'मेम साहब' कहना शुरू किया था। उसे किसी ने सिखाया नही था। उसने अपनी बुद्धि से इतना जाना था कि 'साहब' की पत्नी 'मेमसाहब' ही होती है। मगर लक्ष्मी की डाँट-फटकार के कारण उसे थमना पड़ा था। 'माँ' कहना ही उचित होता। परन्तु शादी हाल ही में हुई थी, इसलिये 'माँ' कहलाना जरा प्रौढ़ लगा लक्ष्मी को। इस कारण 'भाभी' ही कहा जाना तय पाया। उसने कोशिश की थी कि इसी मौके से कृष्णन को 'भैया जी' कहलवाये। मगर हँसमुख ने हँस कर मना कर दिया था। यह उससे नही होगा। 'साहब' से 'भैया जी!' भाभी कहती क्या हैं?

नहा कर धानी रंग की साड़ी और लाल स्लीवलेस ब्लाउज पहन, गीले केश फैला जब वह शयनकक्ष मे पहुँची तब उसके माथे पर, गले में, आंखो के नीचे जल-कण चमक रहे थे। उधर कृष्णन काफी की प्याली खतम कर ही रहा

था। पत्नी को जैसे आज उसने पहली वार देखा। कुछ देर देखने में ही निकल गया। फिर झपट कर उसे बाँहों में भर लिया। बड़े दिनों पर लक्ष्मी के भाग्य जागे।

'आज बड़ी अच्छी खबर लाया हूँ।' बगल में लक्ष्मी को बैठाता कृष्णन बोला, 'खबर अच्छी इसलिये है क्योंकि पैसे काफी मिलेंगे। मगर मन नहीं मान रहा है।'

'कोई नया आर्डर है?'

'हाँ! यहाँ नहीं। बाहर जाना पड़ेगा।'

'कहाँ?'

'बनारस। वहाँ जाकर काफी दिन रहना होगा। फ्रेस्को का काम है।'

'वह क्या होता है?'

'बंगला में जिसे 'प्राचीर-चित्र' कहते हैं। कुछ सेठों ने मिल कर वहाँ एक मन्दिर बनवाया है। उसी की दीवालों को चित्रित करना है।'

लक्ष्मी के मन में आशा का अंकुर जागा। क्या वह नहीं जा सकती? बनारस का नाम ही सुना है, कभी गई नहीं। कलकत्ते के सिवा कहीं भी नहीं गई है। घूमने का मन तो उसका भी होता है।

मगर उस अंकुर का विनाश हो गया। कृष्णन ने कहा कि वहाँ उसे उन्हीं सेठों में से किसी के घर पर रहना पड़ेगा। इन्तजाम उसके अकेले के लिये है। यह तो जाहिर ही है कि कुछ पैसे हाथ लगते ही घर-बर लेकर वह इसे बुला लेगा। इस सुदूर आशा से लक्ष्मी आश्वस्त न हो सकी, फिर भी उत्साह से बोली, 'इसमें चिन्ता की क्या बात है? हँसमुख को तुम्हारे साथ कर दूँगी। उससे जो भी बन पड़ेगा करेगा।'

'वाह! बड़ा अच्छा सोचा! इस घर में तुम अकेली कैसे रहोगी?'

'अकेली कहाँ? किरायेदार लोग भी तो हैं। उनकी गृहिणी बड़ी भली हैं। मुझे बेटी जैसी मानती हैं।'

'फिर भी, बिल्कुल अकेली कैसे रहोगी? हँसमुख तुम्हारे पास ही रहेगा। मैं दूसरा आदमी देख लूंगा। यह कोई मुश्किल नहीं। चिन्ता तो केवल इस बात की है कि तुम्हें छोड़ कर जाना पड़ेगा।'

पति के अति निकट जा वह बोली, 'अच्छा क्या मुझे ही लग रहा है? मगर हो भी क्या सकता है? काम का कितना अच्छा मौका है यह।'

शादी के बाद से जया के यहाँ जाना लक्ष्मी ने बहुत कम कर दिया था जया ही आती रहती थी। पिछले दिनों कृष्णन जो डूबा-डूबा रहता, पत्नी से भी खिचा-खिचा सा, यह सब जया ने ख्याल तो किया था, पर बोली कुछ नहीं थी। इस विषय पर लक्ष्मी ने भी कभी कुछ नहीं कहा था। अब एक दिन जाकर वह जया से कृष्णन के बनारस जाने की बात बता आई।

जया बहुत खुश हुई। बोली, 'ऐसी बढ़िया खबर तूने मुझे पहले क्यों न

बनाई ? मैं भी उसे सी-आफ करने हावड़ा जाती ।'

'बताने का समय कहाँ मिला ? दो दिन में सारी तैयारी कर चल दिये ।'

'तू पाँव पटक कर रोने तो नहीं लगी ?'

'धत् !'

'सुन', जया ने गंभीर होकर कहा, 'यह बहुत ही अच्छा हुआ । यह लोग आँचल तले रहने वाले लोग नहीं हैं, जब तक कुछ ढील नहीं दिया जाता, तब तक धरती पर पटका नहीं जाता ।'

'अजीब-अजीब बातें आती रहती हैं तुम्हारे दिमाग में भी ।'

'अजीब होती हुई भी सच है । खैर । तेरा हँसमुख तो है न ?'

'है ।'

'बस फिर क्या ? जब कभी जरूरत हो, एक बार आकर खीसें निपोर जावे । तू भी आना । मैं तो खैर आती ही रहूँगी ।'

शाम होते ही लक्ष्मी चलने को तैयार हुई । जया ने टोका, 'ऐसी भी क्या जल्दी है ? बैठ । वे यहाँ नहीं हैं ।'

'नहीं हैं ? कहाँ गये ?'

'क्या पता ! जबलपुर या उटकमण्ड ठीक याद नहीं । शूटिंग में गये हैं ।'

'शूटिंग ?'

'हाँ । सिनेमा की दुनिया में जा पहुँचे हैं ।'

ठगी-सी रह गई लक्ष्मी । एकटक जया को देखती रही । जया ने उसकी दशा देख कर कहा, 'वे जरा हिचकिचा रहे थे । मैं तो जानती हूँ कि यह हिचकिचाहट उसके मन की नहीं, मुँह की है । इसी कारण मैंने ही जिद करके भेजा ।'

'तुमसे ऐसा करते बना ?'

'क्यों नहीं ? एक तो, उनके प्राण इसी में समाये हैं, दूसरे, उनमें पार्टस भी हैं, और इस बात को वे भी खूब जानते हैं । ऐसी हालत में रोकती कैसे ?'

'मगर''''

'तू भी 'मगर' कहती है !' कह कर वह हँस दी । फिर संजीदा होकर बोली, 'बहुत कुछ देख कर और बड़े धक्के खाकर मैंने एक बात सीखी है । वह यह कि इस दुनिया में बलपूर्वक कुछ मिल नहीं सकता । जितना बदा है, वह अपने आप मिल जाता है, और जो नहीं मिलना है उसके लिये लाख सिर पटका जाये, छीना-झपटी की जाये तो भी कुछ हाथ नहीं आता । इतना ही नहीं, लज्जा और ढेर सारा दुःख उसके बदले में मिल जरूर जाता है । इस बात को तू भी याद रखना ।'

॥ तेरह ॥

बनारस पहुँचने पर, प्राथमिक आलोचनाओं, सामान इकट्ठा करने और बाकी इन्तजाम में ही पहला महीना बीत गया। इतने बड़े काम में हाथ लगाने के पहले इन बातों को पक्का करना बहुत आवश्यक है। इन्हें पूरा कर कृष्णन एक बार कलकत्ते आया। आगे समय मिलना मुश्किल है। काम शुरू होने के बाद रंग-कूंची की जाल से निकल पाना कठिन है। इससे चिन्ता के सूत्र छिन्न हो जाते हैं, जो कार्य के लिये हानिकारक है।

पति के सीने पर हाथ फेरती हुई लक्ष्मी बोली, 'इतने ही दिनों में कितने दुबले हो गये हो। खाने-पीने का कष्ट है क्या ?'

'कहीं भी नहीं ! खूब डट कर खाता हूँ। सेठ लोग भी काफी ख्याल रखते हैं। उन्हें मालूम है कि कलाकार केवल 'पुष्प-सौरभ' और 'मलयानिल' पर जीवित नहीं रह सकते। दुबलाने का रास्ता उन्होंने बन्द कर दिया है। तुम्हारी आँखें गलत बता रही हैं।'

मकान के बारे में वह कोई उम्मीद बँधा न सका। कार्य-स्थल शहर से दूर है। आसपास बस्ती नहीं है जो है, उसमें कमरा मिलना मुशकिल है। अगर मिल भी जाये, तो बँगला भाषी परिवार उस जगह एक भी नहीं। लक्ष्मी वहाँ तड़प कर रह जायेगी। बँगाली टोला बहुत दूर है, वहाँ घर मिल सकता है, मगर वहाँ से आने-जाने में ही दिन बीत जायेगा, काम करेगा कब ? इस बात को मालिक भी शायद पसन्द न करें। इससे तो यही बेहतर है कि लगातार मेहनत कर जितनी जल्दी हो सके, काम पूरा कर लौटे।

'कितने दिन लगेंगे ?'

'पाँच-छह महीने तो अवश्य लगेंगे।'

देखते-देखते आठ महीने हो चले। इस बीच वह एक बार भी न आ सका। कभी-कभी पत्र आते। बहुत नन्हें-नन्हें पत्र, और महीना शुरू होते ही एक मनी-आर्डर। उसके कूपन पर लिखा रहता, बहुत व्यस्त हूँ। सेहत का ख्याल रखना।

एक दिन एक मोटा लिफाफा जब आया तब लक्ष्मी को बड़ा विचित्र सा लगा। खुशी भी बहुत हुई। साथ ही थोड़ी घबराहट भी। इतना बड़ा पत्र तो कभी आता नहीं। जाने क्या होगा इसमें ! पत्र खोल, एक साँस में सारा पढ़ गई। खैर, चिन्ता की कोई बात नहीं।

इधर-उधर की बातों के बाद कृष्णन ने लिखा है, 'जानती हो लक्ष्मी, यहाँ

आकर, चित्र बनाते-बनाते मैं अपनी लाइन-यानी देहशिल्प के विषय में बहुत कुछ जान गया हूँ। यहाँ मुझे अजन्ता तथा एलोरा के कुछ डिजाइन, तथा कोणाक तथा दक्षिण के कुछेक मन्दिरों मे जो मूर्तियाँ हैं उनका अनुसरण करके दीवालों के दो तरफ की सजावट करनी पड़ रही है। ये मन्दिर और गुफायें मेरी देखी हुई हैं। मगर इतनी बारीकी से मैंने उन्हें देखा नही था। इस समय, जितना देख रहा हूँ, उतना ही चकित हो रहा हूँ। नर-नारी के शरीर में कितना विस्मय है, कितनी सम्पदा, है कितनी लीला, कितनी भंगिमायें, हजारों वर्ष पुराने इन नामहीन कलाकारों ने उसका आविष्कार ही नहीं किया था, विशाल मन्दिर के गात्र पर, तोरणों, स्तमों तथा पर्वत-गुफाओं में उसे किस खूबी से निखारा था।

'नारी मूर्तियों को देखते और चित्रित करते समय मुझे बार-बार तुम्हारी याद आई। 'याद आई' कहना शायद ठीक नही हुआ, कहना था मैं तुम्हें इन सबो में देख रहा हूँ। तुम्हारी वह अनुपम देहलता, उसका सुषम विन्यास, उसका ऐश्वर्य—राधारानी के उस चित्र को पूरा न कर मैंने बहुत बड़ी भूल की है। तुम्हारे बार-बार कहने पर भी मैं नहीं माना। जाने कौन सा भूत चढ़ गया था मुझ पर।

'यह तो कहना ही पडेगा कि उस समय मेरे मनमे जो शंका समाई थी उसे झुठलाया नही जा सकता। तुम्हें मैंने बताया था। याद है? मुझे लग रहा है, कि शायद मेरा वह नशा अब उतर गया है। उन दिनों शादी हुई ही थी। शरीर और मन पर आकांक्षा का ज्वार था। वह पागलपन आज उतार पर है। अब मैं तुम्हे फिर उस पहले वाली दृष्टि से देख सकूंगा। कलाकार की निरपेक्ष दृष्टि —जिसमें न है लोभ और न ही है कामना की उन्मादता।'

इन पंक्तियों को पढ़ कर लक्ष्मी का दिल बैठने लगा। क्या वह खत्म हो गई है? यह शरीर, जिसकी प्रशंसा करते उसका पति कभी न अघाता, वह अब उनमे मोह न जगायेगा? कामना की शिखा अब प्रज्ज्वलित न होगी उनके मन में?

वह चिन्तित जरूर हुई, मगर उसने इस चिन्ता को विस्तार-लाभ करने न दिया। वह पत्र के बाकी पृष्ठों में लौट गई।

कुछ दिनों से एक नया चित्र दिमाग में चक्कर काट रहा है। एक बार तुम्हें बताया भी था, शायद तुम्हें याद भी हो। उन दिनो मेरी 'राधारानी' की केवल केश-राशि ही बनी थी, बात-बात मे मैंने आभास भर दिया था तुम्हें, और जिस कविता पर मेरा चित्र आधारित होगा उसे तुम्हें पढने को दिया था। पिछली रात उन पंक्तियों को देर तक पढता रहा। याद आई? रवीन्द्र नाथ की 'विजयिनी'-'अच्छोद सरसी नीरे रमणी ये दिन नामिल स्नानेर तरे।' कोई विशेष रमणी नहीं, किसी विशेष देश या काल की भी नहीं। रमणी

शब्द का उच्चारण होते ही मन के सफे पर चित्र उभरता है, उसी की प्रतिकृति।
Universal Woman, विश्व-रमणी ! नारी का विश्वजनीन चिरंतन रूप।
छोड़ो इस बात को। आओ, हम उस चित्र को देखें।

'सरोवर जल में प्रवेश करने से पहले उस रमणी ने एक-एक कर अपने वस्त्र उतारे। 'सुनील वसन' पड़ा रह गया शिला के नीचे, पड़ी रही मेखला, पड़े रहे नूपुर, कनक, दर्पण, स्वर्ण-पात्र में चन्दन-कुंकुम भी पड़े ही रह गये। वक्षस्थल के वसन 'युगल-स्वर्ग' को छोड़ कठिन भूमिपर लोटने लगे।

'उसके पश्चात् स्नान-पर्व। कितना सुन्दर वर्णन है। अभी मगर उसका आनन्द लेने का लालच हमें छोड़ना पड़ेगा। स्नान के पश्चात्'सोपान-सोपान पर सजल चरण चिन्ह बनाती रूपवती जब किनारे पर आकर खड़ी हुई, तब वह विवसना थी। उसके चारों ओर से घेर रखा है 'निखिल वायु और अनन्त आकाश' ने।

'यहीं से हमें उसकी जरूरत है। कवि हमारे लिये उसका अनिद्य एवं परिपूर्ण चित्र छोड़ गये हैं। यों तो ये कलम की रेखायें मात्र हैं, मगर उनके आगे सर्वश्रेष्ठ चित्रकार की तूलिका भी मात खा जायेगी।

'तीरे उठिला रूपसी
स्त्रस्त केशभार पृष्ठे गेल खसि।'

'उसके 'अंग-अंग में' यौवन की जो उच्छ्वल तरंग 'लावण्य की मायामंत्र" द्वारा वन्दी वनाई गई है (वर्णन सारे कवि के हैं)—

'तारि शिखरे शिखरे
पड़िल मध्याह्न रौद्र-ललाटे, अधरे
उरु परे, कटि तटे, स्तनाग्रचूड़ाये
बाहुयुगे, सिक्तदेहे, रेखाये रेखाये
झलके झलके।'

'कवि की इस विजयिनी को रूपायित करूँगा मैं तुम्हारे हर अंग से उद्भावित होंगे उसके अंग। तुम बनोगी मेरी नई विजयिनी। जानती हो लक्ष्मी, मुझे क्या आशा हो रही है ? आओ तुम्हें कान में बताऊ, यह चित्र जिस दिन पूरा होगा, लोग देखेंगे, कलाकारों की दुनिया में उस दिन मैं भी 'विजयी' कहलाने का हकदार वनूँगा।

'बस, अब जल्दी ही पहुँच रहा हूँ।'

पत्र समाप्त होते ही लक्ष्मी का शरीर-मन सिहर गया। ड्रेसिंग टेवुल के बड़े शीशे के सामने आकर खड़ी हुई। अपनी परछांई को पैनी निगाह से देखती रही, बड़ी देर तक देखती रही। फिर सामने रखी चौकी पर वैठ गई। भय और हताशा का अन्धकार उस पर छाने लगा।

दस-बारह दिन के अन्दर कृष्णन वापस आया। पहले से कुछ बताया नहीं

था। एकाएक आकर चौंका देने का ख्याल था। उसके दिमाग पर उस समय 'विजयिनी' छाई थी। गाड़ी में बैठा, सारे रास्ते, मन में चित्र की रेखायें खींचता आया। कल्पना की कूँची के सहारे लक्ष्मी का पूर्णांग चित्र अंकित कर चुका था। राधारानी का चित्र बनाते समय वह पूरी तरह से अपनी न हुई थी। इस बार वह चिन्ता नहीं। उसका पूरा अवयव रंग और रेखा के बन्धनों में बाँधेगा। वैष्णव कवि ने उसे जो मौका नहीं दिया था, वही मौका उसे रवीन्द्रनाथ ने दिया है।

सात-आठ महीने पहले पत्नी को जैसी देख गया था, खास कर उस दिन, जिस दिन उसको पुकार सुन झटपट नहा, कर जैसे-तैसे साड़ी लपेट कर बेडरूम की खाट के पास जिस रूप मे लक्ष्मी उसके करीब आ खड़ी हुई थी, उसका वही रूप पूरे वक्त सोचता आया था। विवाह के पश्चात् और कितनी सुन्दर हो गई लक्ष्मी। जहाँ जिस परिणति या पूर्णता की कमी थी, वह सब पूरा हो गया है। अति सुषम हो गई है उसकी देहलता।

दरवाजे पर उसका स्वर सुन चौंक पडी लक्ष्मी। वही जलद-गंभीर स्वर। जिसमें आज आवेग उफन रहा है। कितने दिन हो गये सुने हुये। लेटी थी। हड़बड़ाकर उठ बैठी। साड़ी सँभालती, शयन कक्ष के भिड़काये द्वार को खोल बाहर आई।

हँसमुख पहले ही मुख्य द्वार खोल चुका था। वह गाडी से समान उतारने में लग गया। कृष्णन 'लक्ष्मी' पुकार कर शयनकक्ष के सामने पहुँच कर थम गया यह कौन है?

पहले तो पहचान न पाया। सोचा, होगी कोई मुहल्ले वाली, लक्ष्मी से मिलने आई है। वह यहीं कहीं होगी। अभी आ जायेगी। दुबारा देख कर पह- अरे? यही तो लक्ष्मी है? भारी शरीर को घसीटती उसके सामने खड़ी हुई है। उसके समस्त शरीर पर गर्भिणी नारी की विकृतियाँ। आसन्न-प्रसवा। रक्तशून्य पीला मुख गड्ढे में धँसी आँखें। हाय रे विजयिनी।

एक निगाह देखते ही कृष्णन का हृदय आशा-भंग की पीड़ा और व्यर्थता के क्षोभ से भर गया। एक शब्द भी न कहा। उसने एक बार यह भी न पूछा, कैसी रही 'पास भी न आया। वहीं से घूमकर धीरे-धीरे ऊपर चला गया।

लक्ष्मी ने पीछे से पुकारा, 'सुनो।'

अपना स्वर उसे बड़ा क्षीण लगा। कृष्णन लौटा नहीं। शायद सुना ही न हो। तीव्र क्षोभ से तड़प उठी लक्ष्मी। कमरे में जा कर खाट पर लोट गई।

अब उसकी सुन्दरता में वह लुनाई न रही—वह बद सूरत हो गई है—इसी कारण मुंह फेर कर पति चले गये? यह बात उनके मन मे एक बार भी न आई कि वह माँ जानने वाली है—उन्हीं के बच्चे की माँ! क्या वह केवल शरीर मात्र है? इससे अधिक क्या वह कुछ भी नहीं? और कोई कीमत नहीं

है उसकी ? और कोई जगह नहीं लक्ष्मी के लिये ? उसके गर्भ में जो है उसकी भी कोई इज्जत नहीं ?

लक्ष्मी को लगा कि इस जीवन में उसने वहुतेरे अपमान सहे हैं। मगर इतना भयंकर अपमान उसका कभी किसी ने नहीं किया था। अपमान केवल उसका नहीं, उसके आसन्न मातृत्व का भी।

उसके आँसू सूख चुके थे। अग्निशिखा सी कमरे से वाहर आई। जोर से पुकारा—'पल्टू ?'

यही है हँसमुख का नाम। वात-वात में एक दिन जान लिया था लक्ष्मी ने। मगर इस नाम से कभी पुकारती न थी। पति का दिया 'हँसमुख' नाम उसने भी अपना लिया था। आज जान-बूझ कर ही उस नाम से नहीं पुकारा।

उस समय हँसमुख ऊपर से रुपये ले टैक्सी वाले का किराया चुकाने चला था। मालकिन की पुकार सुन चौंका। यहाँ आने के वाद से इस नाम का इस्तेमाल कभी हुआ न था। यह भी वह भूल चला था कि यही उसका नाम है—उसके माँ—वाप का दिया नाम। दुवारा पुकारते ही भागता आया, 'भाभी ?'

'एक टैक्सी वुला लो ?'

'टैक्सी ! किसके लिये ?'

'मैं जाऊँगी !'

'आप जायेंगी ? कहाँ जायेंगी आप इस भरी दोपहरिया में ?'

'यह कैफियत क्या मुझको तुम्हें देना है ?'

'नहीं, मेरा यह मतलव नहीं, मगर साहव अभी आये, और आपकी तवीयत भी—

'तुमसे जो कहती हूँ, करो।'

'भाभी' का यह रूप उसने कभी देखा न था। कितनी ममताभरी आँखें हैं उनकी। कितने स्नेह से वात करती हैं। कठोर व्यवहार तो दूर रहा, कभी एक छोटी-सी झिड़की भी नहीं दी उन्होंने। सहमा-सहमा-सा वोला, 'जी, जाता हूँ। टैक्सी तो एक यहीं है।'

'रोको।'

कोने वाली कोठरी से टीन का एक विवर्ण सूटकेस उठा लाई। उसके कुमारी जीवन की एकमात्र सम्पत्ति। खोल कर देखा कुछ कपड़े पड़े हैं—और एक लिफाफे में थोड़े से रुपये। उन दिनों का रोजगार। निकालने की याद ही न रही। निकाल कर ब्लाउज में खोंस लिया। हँसमुख से वोली, 'इस वक्से को टैक्सी में रख दो।'

जैसी वैठी थी, वैसी ही चल पड़ी। यहाँ का सारा ऐश्वर्य यहीं पड़ा रह गया।

लक्ष्मी के टैक्सी में बैठने के बाद हँसमुख ने बक्स उसके पाँव के पास रख कर कहा, 'मैं सामने बैठता हूँ।'

'नही।'

फिर भी खड़ा रहा हँसमुख। टैक्सी के जाते ही उसके आँसू छलक आये। जल्दी से पोंछ कर भागता हुआ ऊपर पहुँचा। कृष्णन नहा रहा था। जरा सोच कर उसने बाथरूम के दरवाजे पर दस्तक दी।

'कौन ?' कृष्णन ने अन्दर से पूछा।

'मैं हूँ साहब।'

'क्या बात है ?'

'जल्दी बाहर आइये।'

'क्यों ? क्या हो गया ?' कहता हुआ गीले बदन पर तौलिया लपेट कृष्णन ने किवाड़ खोला। हँसमुख का मुख उतरा हुआ था। उसने कहा, 'मामी टैक्सी से चली गईं।'

'टैक्सी से चली गईं ? कहाँ ?'

'यह तो बताया नहीं।'

'कब ?'

'अभी टैक्सी के जाते ही मैं दौड़ा आपके पास आया।'

कृष्णन का स्नान अधूरा ही रह गया। किसी तरह बदन पोंछ-पाँछ कर अलगनी से पायजामा खींच पहनता हुआ भागा।

कहाँ गई होगी लक्ष्मी ? उसके ध्यान में एक ही जगह का नाम आया—जया के घर। घर उसका दूर नहीं, पैदल ही जाया जा सकता है। फिर भी उसने सवारी ले ली। पता उसे मालूम था, पर वह वहाँ कभी गया न था। इस कारण थोड़ा चक्कर काटना पड़ा। फाटक के सामने टैक्सी से उतरा और उसे रोके रखा। एक बार ध्यान आया कहीं मोहित घर पर हो तो ! मगर उसकी संभावना नहीं के समान है। यह तो दफ्तर का समय है। फिर भी, अगर हो तो जया को परेशान होने न देगा। बस पूछ कर ही चला आयेगा।

कई बार घन्टी बजाने पर निंदासी-सी एक आया ने आकर किवाड़ खोला। दरवाजा खोल, नाराजगी से बोली, 'बाबू घर पर नहीं हैं। माँ सो रही हैं।'

कृष्णन ने जानना चाहा कि कुछ देर पहले एक महिला टैक्सी से यहाँ आई हैं या नहीं। आया ने कहा, 'नहीं, कोई नहीं आया है।' कृष्णन जब सोच रहा था कि फिर जया को परेशान करने से क्या फायदा होगा, और आया भी सोच रही थी कि बला टले तो फिर जाकर सोऊँ, तब तक जया का स्वर सुनाई दिया, 'कौन है रे बिन्दी ?

'एक वावू हैं।'

'किसे चाहते हैं ? नाम पूछा ?'

आया के कुछ पूछ पाने के पहले ही कृष्णन ने कहा, 'जी, मैं हूँ, कृष्णन।'

'ओह। आप, लक्ष्मी वीवी के—'कहती आया ने घूँघट लम्बा कर किया।

'लक्ष्मी यहाँ नहीं आयी ?'

'पांच छह: दिन पहले आई थी, तब से तो नहीं आई।'

जया तव तक उठ चुकी थी। वाहर आकर कृष्णन को देख उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। पूछा 'यह क्या ? तुम कव आये ? वाहर खड़े क्यों हो ? लक्ष्मी कैसी है ? अन्दर आओ।'

हाल सुन जया को काठ मार गया। पैनी निगाह से कृष्णन को देख कर वोली, 'सच-सच वताओ, मामला क्या है ? ऐसी क्या वात हो गई जिसके कारण—?'

कृष्णन ने कहा, 'मैं अभी थोड़ी देर पहले ही वापस पहुँचा हूँ। उससे एक भी वात नहीं हुई। मगर खैर, वह वात आपको फिर कभी वताऊँगा।'

'ठीक है। ऐसी जल्दी क्या है ? फिलहाल, सवसे जरूरी काम तो है उसे ढूंढ़ निकालना।'

क्षण भर में कुछ तय कर के जया उठी। अन्दर जाती हुई वह वोली, 'तुम वैठो, मैं अभी आई।'

वाहर जा कृष्णन ने टैक्सी को छोड़ दिया। अन्दर जाकर जया ने सुव्रत के कालेज का फोन लिलाया। उस पार से किसी सज्जन ने फर्माया कि वह क्लास में है। यह भी पूछा कि वुलाना पड़ेगा या नहीं। जया ने कहा, 'वुलाने की आवश्यकता नहीं है। क्लास से निकलने पर कृपया कहें कि इस नम्बर पर फोन करे।' इतना कह कर उसने अपना नम्बर दे दिया।

वैठक में जाकर वोली, 'सुव्रतो मिला नहीं। जल्दी ही फोन आयेगा उसका। उसका इन्तजार करने के अलावा अभी हमारे करने को कुछ नहीं है।'

सिर झुकाये वैठा था कृष्णन। उससे वोली, 'तुम इतना घवरा क्यों रहे हो ? लक्ष्मी को मैं जानती हूँ। ड्रास्टिक कुछ करने वाली जीव वह नहीं है। तुम्हें देख कर लग रहा हैं कि तुमने कुछ खाया नहीं है। नहाया है ?'

'हाँ।'

'तो फिर पूरी निकाल देती हूँ। चावल वनाने में तो वहुत समय लगेगा।'

'नहीं दीदी, आप परेशान मत होइये। मुझे जरा भी भूख नहीं।'

'भूखे रहने से क्या फायद ? थोड़ा कुछ खा लो।'

वहीं वैठी जया ने पुकारा, 'विन्दी।'

वह शायद अपनी नींद पूरी करने के चक्कर में थी। जवाव नहीं दिया। जया को आवाज ऊँची करनी पड़ी। अव वह दौड़ी आई। उसे पूरी और सादी

सब्जी बनाने का निर्देश दे कृष्णन से बोली, 'लक्ष्मी ने मुझे बताया था कि तुम जल्दी ही आ रहे हो। इसी कारण इधर का हाल मैंने तुम्हें लिखा नहीं था। शुरू-शुरू में तुम्हें लिखने का मन था, कोशिश भी की थी। मगर लक्ष्मी ने मुझे तुम्हारा पता दिया ही नहीं। बस वही एक बात, 'अरे नहीं-छिः!' यह तो स्वाभाविक ही है, क्योंकि पहली बार लड़कियाँ झेंपती ही हैं। शायद उसका यह भी ख्याल था कि वह तुम्हें प्रेजेन्ट सरप्राईज देगी। इसी कारण पहले से कुछ बताना नहीं चाहती थी।'

'नहीं दीदी।' अब मैं समझ रहा हूँ। उसके मना करने की वजह केवल लज्जा नहीं थी। कम-से-कम पिछले दिनों। खैर, इसके विषय में भी मैं आपको फिर कभी बताऊँगा। पहले—'

टेलीफोन झनझना उठा। जया ने कहा, 'सुव्रत का फोन है।' कह कर फोन उठाने चली गई।

सुव्रत ही था। जया ने पूछा, 'और क्लासेस हैं तुम्हारे?'

'हैं—एक।'

'छोड़ो उसे। फौरन यहाँ चले आओ।'

'क्या बात है मामी?' सुव्रत के स्वर में घबराहट थी।

'नहीं, ऐसी घबराने की कोई बात नहीं। फिर भी तुम जल्दी ही चले आओ। और वह जो तुम्हारे यूनियन का नेता है—क्या नाम है उसका?'

'सुदीप।'

'हाँ, उस सुदीप के भाई, अपने छात्र को भी साथ लेते आना। समझे?'

॥ चौदह ॥

प्रिय की सब दिन की नौकरानी नन्ही टूली अब उतनी नन्ही नहीं रह गई है। बड़ी होने के साथ-साथ जरा जिद्दी भी हो गई है। अक्सर काम पर आना नहीं चाहती। सुबह नींद खुलने के बाद भी बहुत देर तक बिस्तर पर पड़ी रहती है। उसकी माँ चीखती रहती है, 'अरे, अभी तक क्यों पड़ी है? काम पर कब जायेगी?'

'मेरी तबीयत ठीक नहीं।'

उसकी माँ को मालूम है कि उसकी बात में सचाई नहीं। डाँट कर या कभी पुचकार कर भेज देती है। किसी-किसी दिन मगर टूली एकदम बिदक जाती है। कहती है, 'मामाजी बहुत खिच-खिच करते हैं।'

उसका कहना ठीक है। लक्ष्मी के जाने के बाद से प्रियनाथ बड़ा ही चिड़चिड़ा हो गया है। टूली की माँ मगर उसी का पक्ष लेकर बेटी को समझाती

'क्या करे वेचारा ! अपनी सगी वहन ! और वह भी पाँच नहीं, सात नहीं, केवल एक। प्यार भी कितना करता था उसे ! लक्ष्मी में तो उसके प्राण वसते थे। वही जब ऐसी निर्मोही सी चली गई, तब कैसे ठीक रह सकता है उसका दिमाग ? खुद भी वेचारा वीमार है कितने दिनों से।'

'लक्ष्मी मौसी अब नहीं आयेगी माँ ?'

'क्या जानूँ वेटी, आयेगी या नहीं आयेगी। शादी-व्याह हो गया है, अब घर संभाल रही होगी। आकर करेगी भी क्या ?'

पता है दूली को। यह तो उसे पहले ही पता लग चुका है कि लक्ष्मी मौसी की शादी हो गई। उसे तो इत्तफाक से पता लगा है। एक वावू आये थे एक दिन। सड़क पर चलते लोगों से 'प्रियनाथ वावू' के घर का पता पूछ रहे थे। वहीं उन्हें ऊपर ले आई थी। मामाजी के साथ उन वावूजी की क्या-क्या वात-चीत हुई, यह तो उसने सब सुना नहीं, जो सुना उसे पूरी तरह समझी भी नहीं। किवाड़ के वाहर से इतना जरूर सुन सकी थी कि लक्ष्मी मौसी की शादी हो गई है, खूब अच्छी शादी हुई है। उसे याद है कि जवाव में मामाजी ने कहा था, 'ठीक है, उसने जो उचित समझा, किया। मुझसे अब उसका कोई वास्ता नहीं। मैं जानूंगा, मेरी एक वहन थी, मर गई।'

इस वात के कुछ दिन पहले, लक्ष्मी मौसी जिस दिन चली गईं, उस दिन भी दूली सामने ही थी। कितना विगड़ रहे थे मामाजी। विस्तर पर वैठे चिल्लाते रहे, 'खबरदार, मेरे घर में कदम न रखना! तेरी शक्ल देखना नहीं चाहता मैं।' और भी न जाने क्या-क्या कहा था, सारी वातें दूली को याद नहीं। गहराती साँझ के वक्त मामाजी ने उन्हें घर से निकाल दिया था। दूली का अपना ख्याल है कि अगर मामाजी चल फिर सकते तो उस दिन वे मौसी को मार वैठते।

लक्ष्मी मौसी दरवाजे के पार ही खड़ी थीं। आँसू पोंछती वहीं से चली गईं। लौट कर फिर नहीं आईं। क्यों ऐसा हुआ, क्या दोष था उनका, यह दूली को आज तक मालूम न हो सका। एक वार उसने अपनी माँ से पूछा था। उसकी माँ ने डपट कर कहा था, 'इन वातों से तुझे क्या करना ? छोटे मुँह वड़ी वात !'

अपनी वुद्धि से दूली इतना समझ गई थी कि जरूर कोई गलत काम, कोई बुरी वात, जो लड़कियों को नहीं करनी है—कर डाला है मौसी ने।

जिस दिन दूली नहीं आ सकती—या नहीं आती, उस दिन उसकी माँ आती। न आये तो काम कैसे चले ? वेचारा लंगड़ा आदमी, अपने से तो कुछ कर ही नहीं पाता। पहले तो उठ ही नहीं पाता था, मुहल्ले के वावूओं ने लाठियों जैसी दो लकड़ियाँ लाकर दी हैं, 'केरेस' कि क्या अजीव सा नाम है उनका, वगल में लगा कर अब तो थोड़ा वहुत चल फिर लेते हैं।

उस दिन भी दूली की माँ आई थी। वाजार से सामान भी वही लाई थी।

फिर कमरों की सफाई कर, खाना बनाने में जुट गई थी। प्रियनाथ के छात्र दस तक रहते हैं। फिर वह धीरे आहिस्ते नहाने जाता है। खाते-पीते बारह बज जाते हैं। उस दिन भी खा पीकर लेटा था।

टूली की माँ चौका उठा कर नहाने की तैयारी कर रही थी। ऐसे मौके पर घर के सामने एक टैक्सी रुकी। इस सडक पर टैक्सियाँ शायद ही कभी आती हों। आती भी हैं तो बढ़ जाती हैं, रुकती नहीं। टैक्सी से यहाँ कौन आयेगा भला ? टूली की माँ को थोडा आश्चर्य हुआ। पिछले दरवाजे से निकल कर झाँका, देखा अन्दर एक महिला हैं। टैक्सीवाले ने उनकी तरफ का दरवाजा जब खोल दिया तो वे धीरे-धीरे उतरी। एक नजर देख कर ही टूली की माँ दौड़ पड़ी, 'बहनजी !'

लक्ष्मी तब टैक्सी वाले का किराया चुका रही थी। बोली, 'अच्छी तो रही टूली की माँ ?'

'किरपा है आप लोगों की', कह कर उसने झट से लक्ष्मी का हाथ थाम लिया।

लक्ष्मी के कदम बढ़ नहीं रहे थे। जिस आकस्मिक उत्तेजना के वशीभूत होकर वह टैक्सी में बैठ गई थी, इतनी दूर आते-आते वह काफी ठन्डा हो चुका था। अब द्विविधा ने आकर उसके पाँव पकड लिये। यहाँ यों उसका स्वागत नहीं है. इस घर के दरवाजे भी एक दिन उसके लिये बन्द हो गये थे। उस दिन का वह भयंकर दृश्य उसकी आँखों के सामने घूम गया। थकी-थकी सी बोली, 'भैया तो ठीक हैं न ?'

'हाँ।'

'क्या कर रहे हैं ?'

'सो रहे हैं। जरा जल्दी चलो। इस भरी दोपहरिया में खुले केश, पेड के नीचे खड़ा नहीं हुआ जाता।' कह, उसने लक्ष्मी के सिर पर आँचल डाल दिया।

लक्ष्मी ने कदम बढाये। धीरे-धीरे पिछवाड़े के किवाड़ की ओर चली। टूली की माँ उसका हाथ पकड़े साथ चलती हुई बोली, 'इस हालत में अकेले-अकेले कभी घर से निकला जाता है ? पता नहीं कौन सा बखेड़ा खड़ा हो जाय ? जमाई राजा क्यों नहीं आये ?'

ठिठक गई लक्ष्मी। फिर बोली, 'उन्हें जरूरी काम से बाहर जाना पड गया। आज ही सुबह गये हैं। उस समय मेरी तबीयत ठीक थी। उसके बाद से ही पता नहीं कैसा-कैसा सा लगने लगा। झट टैक्सी पकड यहाँ चली आई।'

'बहुत ठीक किया तुमने। इस समय सभी लड़कियाँ पीहर आती हैं। माँ नहीं हैं तो क्या ? भाई तो हैं। और मैं तो हूँ ही। मेरे भी तो, नजर न लगे, पाँच-छह हुये हैं। किस समय क्या करना होता है, वह मैं सब जानती हूँ। तुम बिल्कुल मत घबराओ।'

तब तक वे घर में प्रवेश कर चुकी थीं। धीरे बोलने की आदत टूली की माँ की कमी न थी। प्रियनाथ की नींद उचट गई। पार्टीशन के उस पार से पूछा, 'कौन है टूली की माँ? किससे बतिया रही हो?'

लक्ष्मी का हृदय काँप गया। इतना सा चलने पर ही वह हाँफ गई थी। चटाई बिछा कर उसके लेटने का इन्तजाम कर रही थी टूली की माँ। वहीं से बोली, 'बहनजी आई हैं।'

'कौन?' प्रश्न ही नहीं, उसके साथ अपार विस्मय।

टूली की माँ फिर बोली, 'हमारी बहनजी।'

'उसे अन्दर आने किसने दिया?' गरज कर प्रियनाथ उठ बैठा, 'क्या तुम जानती नहीं हो कि इस घर में उसका—'

'बस करो, भैयाजी बस करो! इस हालत में कुत्ते-बिल्ली को भी लोग आश्रय देते हैं, और यह तो तुम्हारी सगी बहन है। जो भी किया है, क्या उसे याद करने का यही समय है?'

प्रियनाथ हठात् चुप हो गया। 'ऐसी हालत में' का अर्थ पूरी तरह तो उसके पल्ले न पड़ा, पर शक हो गया।

टूली की माँ चहकी, 'हमारी बहनजी के बच्चा होने वाला है भैया!'

'आँ! क्या, क्या? कहाँ है वह? आई किसके साथ?'

इस बार उसका स्वर पलट गया था।

लक्ष्मी से रहा न गया। आँचल समेटती, दौड़ती सी बगल वाले कमरे में जा पहुँची। जमीन पर बैठ भाई की गोद में मुँह छिपा कर रो पड़ी।

प्रियनाथ ने फिर कुछ न कहा। बस धीरे-धीरे उसके केश सहलाता रहा।

भौंरे जैसे काले—घुँघराले केश। ठीक से कंघी न करने के लिये, तेल न डालने के लिये कितना बिगड़ता था उस पर। अब तो, उसे लगा, काफी झड़ गये हैं। उतनी चमक भी नहीं रही उनमें।

शाम को जब लक्ष्मी कुयें पर नहाने गई थी, उसी के विषय में टूली की माँ से बात कर रहा था प्रियनाथ, 'तुम्हारा ख्याल है पूरा महीना भी बाकी नहीं है, उसके पहले ही हो जायेगा?'

'हाँ भैया, हमारा तो ऐसा ही ख्याल है। उधर जो दाई रहती है, कल ही उससे बात पक्की कर रखूंगी।'

'अब तो दाई-वाई का जमाना लद गया टूली की माँ। और फिर सोहर के लाखों झंझट हैं, करे कौन? ऐसे तो तुम हो ही, जो बन पड़ेगा करोगी। मगर दौड़-धूप के लिये एक मर्द की जरूरत है। मैं तो रह कर भी नहीं हूँ।'

सोच-विचार कर टूली की माँ बोली, 'बात तो भैया तुम बहुत ठीक कहते हो। इसी वजह से तुम लोगों में आजकल अस्पताल का रिवाज चल निकला है।

कुछ सामने न रखूंगी तो भैयाजी मुझे घर में घुसने ही न देंगे ।'

टूली की माँ के चौके में जाने पर जया ने कहा, 'मालूम होता है घर में घुसने न देना तेरे भाई का साधारण नियम है ।'

लक्ष्मी की सजल आँखों में मुस्कराहट झिलमिलाई । हल्के स्वर में जया फिर वोली, 'कहते हैं कि क्रोध के आवेश में कुछ भी करना उचित नहीं । मगर कभी-कभार उसका फल भी वहुत अच्छा होता है । क्यों क्या राय है तेरी ?'

इशारा लक्ष्मी समझी । धीरे से वोली, 'मैं किस पर क्रोध करूँगी ?'

'इसका फैसला तो वाद में होगा । इधर और कोई गड़वड़ तो नहीं ?'

लक्ष्मी ने 'नहीं' में सिर हिलाया । जया ने कहा, 'इसका श्रेय तो खैर तुझे नहीं मिलना है । जो नन्हा-सा जीव तुम्हारे पेट में मचल रहा है, सारी क्रेडिट उसी की है ।'

लक्ष्मी झेंप गई । प्यारी सी लालिमा उसके मुख पर छा गई ।

जया ने इस प्रसंग को यहीं रुकने न दिया । वोली, 'वहादुर है मेरा लाल ! इसने तो अभिमन्यु को भी मात कर दिया । उसने तो माँ के पेट में वैठ कर युद्ध-विद्या सीखी भर थी । और इसे देखो कि माँ के पेट में वैठा ऐसी जंग छेड़ दिया कि इस चिड़चिड़े, वदमिजाज मामा के भी छक्के छूट गये ।'

इस किस्म की उद्‌भट उपमायें खोज निकालने में जया का सानी नहीं । मौका मिलता तो वह और न जाने क्या-क्या कह डालती ।

कपट क्रोध से लक्ष्मी वोली, 'यही सव कहने आई हो तुम ? तुम्हारे पास कहने को और कुछ नहीं है ?'

'है कैसे नहीं ? असल वात तो अभी शुरू ही नहीं की ; वता तो सही मामला क्या है ?'

'कैसा मामला ?'

'नहीं सच ! जव से सुना, मैं वहुत वेचैन हूँ । तू समझती क्यों नहीं ?'

लक्ष्मी के मुख पर दुःख की छाया गहराई । वोली वह कुछ भी नहीं । केवल सूटकेस खोल उसमें से एक मोटा सा लिफाफा निकल लाई ।

जया ने पूछा, 'क्या है यह ?'

'पढ़ कर देखो ।'

'हे राम ! यह तो महाभारत है । पढ़ते-पढ़ते रात ही वीत जायेगी । इससे अच्छा तू वता दे ।'

'पढ़ो, सारी वात समझ जाओगी ।'

इतना कह लक्ष्मी ने लालटेन उठा उसके करीव रख दिया और उसकी वत्ती उसका दी ।

जया ने सोचा कि लक्ष्मी का मन रखने के लिये यहाँ-वहाँ से पढ़ कर वापस कर देगी—मगर जव पढ़ना शुरू किया तो एक साँस में सारा पढ़ गई । पत्र

समाप्त कर जब वह बुन बनी बैठी रही तब लक्ष्मी ने कहा, 'अब आई बात समझ में ?'

इस प्रश्न का सीधा-सपाट उत्तर जया ने नहीं दिया। बोली, 'पागल! समझी न, निरा पागल है। यही नहीं, यह जात ही। जो चित्र बनाते हैं, कविता लिखते हैं, रात जाग-जाग कहानियाँ गढते हैं, घर-गृहस्थी छोड सिनेमा या नाटक में अभिनय करने को दौडे जाते हैं, यानी वे सब, जिन्हे हम एक शब्द में कहते हैं 'आर्टिस्ट'। इतना कुछ होते हुये भी हमें इन्ही के साथ जीवन बिताना पडता है। इनके खब्तों से अपने को मिलाना पड़ता है। नहीं तो ये बेचारे जायें कहाँ ?'

बात पूरी करते-करते उसका स्वर करुण हो गया। वह कह चली, 'कभी-कभी ये लोग ऐसे नीच, इतने निर्दय हो जाते हैं कि लगता है कि ये मानव नहीं दानव हैं। मगर बात ऐसी नहीं। हृदय इनके पास भी है, और वही इनका असल परिचय है। मौके-बे-मौके क्या कह देते है, इससे इनकी पहचान नही हो सकती।'

'चल उठ, भाई साहब से बात की ही नही। न जाने क्या सोच रहे होंगे।'

प्रियनाथ के साथ कुछ देर बात-चीत होती रही। साधारण बाते। बातों-बातों में ऐसा कोई प्रसंग नहीं आया जिसमें कृष्णन का उल्लेख हो। वैसे प्रियनाथ को यह मालूम था कि ये लोग उसके निकट परिचितों में हैं। यह सुव्रत ही है जो एक मद्रासी लडके से लक्ष्मी की शादी की बातचीत करने आया था। उसमें आपत्तिजनक कुछ नहीं है, यह समझाने के लिये इन्हीं 'भाभी' का उल्लेख किया था। एक भले घर की बहू ने आगे बढ कर इस विवाह का प्रस्ताव रखा है। अतएव प्रियनाथ बेहिचक राजी हो सकता है। मगर इसके पहले मोहित आकर सारे मामले पर इतना कीचड घोल गया था कि प्रियनाथ ने बडी कठिनाई से अपने को काबू मे रख कर केवल इतना ही कहा था, 'मैं समझूँगा मेरी बहन मर गई है।'

आज की परिस्थिति मगर कुछ और ही है। फिर भी वही सुव्रत और वही उसकी 'भाभी'। जो बात प्रियनाथ को मालूम न थी, जिसकी वह कल्पना भी नहीं कर सकता था, वह यह कि यह 'भाभी' मोहित की ही पत्नी हैं। इन लोगों के यहाँ आने के पीछे क्या उद्देश्य हैं इसे जाने बगैर उसने बहन का प्रसंग न छेड़ा। उन्होंने भी इस कठोर मनुष्य को और थोड़ा समझ लेने के बाद ही कृष्णन का प्रश्न छेड़ना उचित समझा।

बातचीत की दौरान में आन्तरिकता की कमी न हुई। जया बातचीत करने में माहिर है। सुव्रत भी वाकपटु अध्यापक है। प्रियनाथ के अन्दर एक बैठकबाज मानव, हालत के फेर से, बहुत दिनों से सोया पडा था। अर्से बाद आज

वह अंगड़ाई लेकर उठ वैठा। क्षण-क्षण में उसके ठहाके दीवालों से टकराते रहे।

इस आनन्दमय अवसर पर एक थी जो चुप थी। एक ओर उसका मन भी खुशी से छलक रहा था, मगर साथ ही एक कांटा सा चुभता रहा। कृष्णन की वह दृष्टि, उसकी ओर देखते ही सारी दीप्ति का बुझ जाना-यह स्मृति भुलाये न भूलती थी।

वापस जाने से पहले लक्ष्मी से एक वार फिर जया की एकान्त में वातचीत हुई। वोली, 'उसकी हालत का अन्दाज तो लगा ही सकती है। फिर भी हमें दो-चार दिन रुकना पड़ेगा।......आज़ चलूं।'

इस वात को लक्ष्मी ने सुनी-अनसुनी कर दिया। वोली, 'तुम्हे पता कैसे चला? अन्दाज से आई नहीं हो, यह तो मानी वात है।'

चलते-चलते जया वोली, 'ये तो 'सीक्रेट सर्विस' के मामले हैं, तुझे क्यों वताऊँ?'

'अरे मुझे पता है। मैं तो सुप्रिय को देखते ही समझ गई थी।'

'उसने कुछ कहा था क्या?'

'नहीं। वड़ा घन्ट है वह भी। तुम लोगों का नाम भी नहीं लिया। वस यों ही हाल-चाल पूछ कर चला गया।'

सुप्रिय, सुदीप का भाई, सुव्रत का छात्र है। जया का फोन पा जव वह उसे लेकर जया के घर पहुँचा, तव सवने यह मशविरा किया कि लक्ष्मी दो ही जगह जा सकती है, या तो अपने भाई के घर, या अपनी 'अचारयुग' की सहेली के घर। उसका पता किसी को मालूम न था। मिसेस दत्त का पता जया को मालूम था और उनके द्वारा इस सहेली का पता लगाना कठिन न होता। मगर पहले प्रियनाथ के घर पता लगाने की राय ही सव की हुई। इस काम में कृष्णन को घसीटना वेकार है। वहां जाकर वह कह भी क्या सकता है? और फिर कुछ कहने लायक दशा है भी नहीं उसकी। सोच में डूवा जैसे वैठा था, वैठा ही रह गया।

सुप्रिय को उसी समय नारकेलडांगा, प्रियनाथ के घर रवाना कर दिया गया। सुप्रिय का घर भी वहीं है। उसे खास हिदायत दी गई कि जहां तक वन पड़े चुपचाप पता लगाये, प्रियनाथ को इसकी भनक भी न लगे।

सुप्रिय को मगर किसी दिक्कत का सामना नहीं करना पड़ा। इत्तफाक से लक्ष्मी से ही मुलाकात हो गई। खिड़की के सामने खड़ी वह वगल वाले मकान की लड़की से वातें कर रही थी। सुप्रिय को देख कर उसी ने पुकारा; 'अरे सुप्रिय! कितने वड़े हो गये तुम! अच्छे तो रहे?'

'जी हां! आप कव आईं?'

'आज ही तो आई हूँ।'

'रहेंगी न ?'

'मन तो है।'

और भी कुछ कहना चाहती थी लक्ष्मी। वह जानती थी कि यह सुव्रत के कालेज में पढ़ता है। इसके द्वारा सम्पर्क स्थापित करने का मन हुआ उसका।

सुप्रिय जा रहा था। मुड़ कर बोला, 'कुछ कहेंगी मुझसे ?'

लक्ष्मी पिछड़ गई। केवल बोली, 'मौसी जी को एक दिन आने को कहना।'

'कहूँगा।'

सुप्रिय के आकर बताते ही जया और सुव्रत चलने को तैयार हो गये। सुव्रत ने कहा, 'कृष्णन को भी ले चलिये न। बेचारा बहुत दुखी है।'

जया सोचने लगी। सुप्रिय ने आकर जो कुछ कहा था उससे इतना तो पक्का है कि लक्ष्मी सकुशल है, चिन्ता की कोई बात नहीं। फिर भी वहाँ का हाल पूरी तरह मालूम होने के पहले उसने कृष्णन को वहाँ ले जाना उचित नहीं समझा। बोली, 'चलो, हम ही दोनों चलें।'

लक्ष्मी से विदा लेते समय भी जया ने ऐसी ही बात कही। कुछ दिन इन्तजार करना पड़ेगा। मन में बोली, आज का दिन तो नक्शा बनाते ही बीत गया। इसके बाद नींव खोदना है। उस दिन भी सुव्रत और मैं ही रहूँगी। हवा का रुख देख कर कृष्णन को लाकर महल खड़ा करूँगी। जल्दबाजी का काम नहीं यह सब।

महल खड़ा करने के पहले ही जल्दबाजी का धक्का आया, एक दूसरी ओर से। जैसा हमेशा होता रहता है। विधि का विधान मनुष्य के विधान को निमिष भर में तहस-नहस कर देता है। बहुत सोच-समझ कर लगाया गया हिसाब, बेहिसाबी के एक थपेड़े से क्षण भर में धूल में मिल जाता है।

बड़ी दोनों बहिनों से कृष्णन का सम्पर्क था ही नहीं। जो कुछ था वह छोटी बहन से। पत्रादि आते-जाते, मगर नियमित नहीं। पिछले कुछ वर्षों से बहनोई सरकारी नौकरी में काफी उन्नति कर चुके थे, और इस समय काफी ऊँचे पद पर थे। फिर तो जैसा सबका होता है वैसा इनका भी हुआ। माता-पिता पहले ही जा चुके थे। बहन-भाई सब अपने-अपने ठिकाने लग गये थे। सारे रिश्ते क्रमशः ढीले पड़ गये थे। पति-पत्नी और तीन बच्चों की अपनी गृहस्थी थी। दिन बड़े आराम से बीत रहे थे। एकाएक एक दिन आफिस में पीड़ा से व्याकुल हो गये। पेट में भयानक दर्द। डाक्टर ने कहा—एपेंडिसाइटिस। फौरन आपरेशन करना जरूरी है। साथियों ने मिल-जुल कर अस्पताल पहुँचाया।

जया के घर से लौट कर कृष्णन जब सोने की तैयारी कर रहा था, उस समय रात के करीब दस बजे थे। ऐसे वक्त तार आया। अपनी तरफ के हाल-चाल दे बहन ने फौरन आने को लिखा था। नहीं तो यानी कृष्णन न आया तो, जो अस्पताल में हैं वह तो जायेगा ही, जो घर पर, यानी सरकारी क्वार्टर में

हैं उनका क्या होगा, कहा नहीं जा सकता। बहन, अकेली औरत क्या-क्या सँभालेगी।

करवटें बदलता रात काट सुबह होते ही कृष्णन फिर जया के घर पहुँचा। सारी बात सुन जया बोली, 'तुम चले जाओ। यहाँ की चिन्ता न करो। हम तो हैं ही।'

लक्ष्मी के नाम एक पत्र लिख उसे जया को दे, वह उसी दिन मद्रास मेल से रवाना हो गया।

वहाँ जाकर देखा तार में जो कुछ लिखा था, हालत उससे भी खराब है। बहन खुद भी बीमार है। इस बात की सूचना उसने नहीं दी थी। बच्चों में दो तो एकदम नासमझ हैं, जो बड़ा है वह भी जिम्मेदारी सँभालने लायक नहीं है।

अपनी समस्याओं को आले पर रख इस परिवार की समस्याओं को सुलझाने में लग पड़ा कृष्णन। रोज अस्पताल जाना, वहाँ की परेशानियों को झेलना। दवा-इन्जेक्शन आदि नियम से पहुँचाना, स्पेशल नर्स का इन्तजाम करना, डाक्टरों के आगे-पीछे चक्कर काटना, और घर पर बहन और बच्चों की देख-भाल करना। इनमें कोई भी काम छोड़ देने लायक नहीं।

इसी बीच जया का तार आया, "प्यारा सा बेटा हुआ है। माँ-बेटा दोनों सकुशल हैं।' तार की पीठ पर जो पत्र आया उसमें भी जया ने लिखा था, 'यहाँ की चिन्ता न करना। बहन बहनोई आदि कैसे हैं? तुम कब तक लौट रहे हो?'

लौटने लायक सुधार हालत में तब तक न आया था। बीमार बहनोई अस्पताल से घर तो आ गये थे, मगर अभी चलने-फिरने लायक न थे। उन्हें ठीक होने में अभी देर है। डाक्टर ने लम्बी छुट्टी लेने की सलाह दी। छुट्टी लेना बेहद जरूरी था, मगर लेने पर बड़ी विचित्र समस्यायें खड़ी हो जातीं। अगर मिल गई तो क्वार्टर खाली कर देना पड़ेगा। सरकारी क्वार्टर जो है। जब तक कार्यरत हो उसमें आश्रय और आराम दोनों मिलेंगे। उस समय उस-पर तुम्हारा पूरा अधिकार होगा। मगर जहाँ हटे कि सारे अधिकार समाप्त। तब वह किसी दूसरे को अपनायेगा, उसी की सेवा में रत होगा। तुम्हें उस समय हट जाना होगा। कहाँ? यह तो तुम जानो, और तुम्हारी तकदीर जाने। सरकार का क्या!

नये बसेरे की खोज में कृष्णन को ही जाना पड़ा। फिलहाल किसी स्वास्थ्य-दायक स्थान में। यह एक और आफत। उसे ढूँढ़ निकालने और एक पूरी गृहस्थी वहाँ उठा ले जा कर बसाने में काफी समय लग गया कृष्णन को।

अन्त में छुट्टी जिस दिन मिली कृष्णन ने हिसाब लगा कर देखा कि पूरे दो महीने बीत गये हैं।

वहां से चलने से पहले उसने सोचा था कि पहुँचने की तारीख जया को सूचित करेगा, मगर वह ऐसा कर न पाया।

इतने दिन कृष्णन तूफान की तेजी से चल रहा था। रुकने का अवकाश ही न था। अपने घर के परिचित वातावरण में जब वह पहुँचा तब उसे इस बात का बोध हुआ कि कितना भारी बोझ वह पिछले दिनों उठाये फिर रहा था। थकान से उसके अंग-अंग टूट रहे थे। पूरे दो दिन वह बिस्तर पर पड़ा रहा। हँसमुख को एक बार जया के पास भेजना जरूरी है। उसमें इतनी भी ताकत न बची थी कि दो लाइन का पत्र लिखता या हँसमुख को बुला कर जुबानी ही कहलवा देता।

सिगरेट खत्म हो चुके थे। हंसमुख एक पैकेट लेने चौराहे तक गया था। उठ कर मुख्यद्वार बन्द करने की इच्छा भी न हुई—खुला ही रह गया। चादर ताने पड़ा रहा कृष्णन। एकाएक एक छोटा सा शब्द सुन कर कहा, 'इतनी देर कहाँ लगाई ?'

जवाब न पाकर उसने आँखें खोलीं—और खोलते ही उठ बैठा। अन्तहीन विस्मय से उसकी आँखें फटी की फटी रह गईं।

केवल विस्मय ही नहीं, साथ ही आनन्द का वह सोता फूट निकला और भय छा गया उसके मन में। यह कौन सा महान आविष्कार, कौन सी अपार्थिव उपलब्धि उसकी आँखों के सामने है!

कृष्णन की इस दृष्टि के आगे लक्ष्मी भी विह्वल हो गई। काफी देर चुप रहने के बाद बोली, 'क्या देख रहे हो ? क्या पहचान नहीं पा रहे ?'

करीब जाकर फिर बोली, 'यह क्या हालत बना रखी है अपनी ? इतने बीमार हो गये, पर खबर तक न दी। वापस आकर भी खबर नहीं भिजवाई। यह तो हँसमुख ने अभी जाकर कहा कि साहब जब से आये हैं, लेटे हैं, सुन कर भागी आई।'

एक भी बात कृष्णन तक न पहुँची। वह तो तब तक किसी और लोक मे पहुँचा हुआ था। उसने कहा, 'जरा ऊपर चलोगी लक्ष्मी ?'

'ऊपर ?'

'ज्यादा देर नहीं रोकूंगा तुम्हें। बस चन्द मिनट। जरा चल कर इसी तरह मेरी स्टूडियो में खड़ी हो जाओ। कितना सुन्दर चित्र है, मैं इसे उतार लूं।'

उसने धीमे से कहा, 'इन आँखों पर कोई भरोसा नहीं। देर होने से शायद यह दुर्लभ क्षण खो जायें।' कह कर वह उठ खड़ा हुआ। लक्ष्मी बच्चे को लिये दरवाजे के पास खड़ी थी। पहले से कहीं दुबली-कमजोर। बाल झड़े हुये, आँखें धँसी, माथे पर पसीना। साधारण सी साड़ी, जैसे-तैसे लपेटी हुई। पल्ला कंधे से खिसक गया था। जल्दी में केश संवारे भी नहीं गये थे, जैसे-तैसे लपेटा

हुआ जूड़ा।

कृष्णन देखता रहा—देखता रहा। इतने दिनों से लक्ष्मी को देख रहा है वह—कितना उसका रूप—कितने उसके भाव—कितनी भंगिमायें। कैसी-कैसी लीला, कितनी विचित्र व्यंजनायें। आज उनमें से कोई भी नहीं। आज वह सबसे साधारण—फिर भी कितनी अपरूप। इस रूप की कोई उपमा नहीं।

इसके आगे धुँधली पड़ गयी चण्डीदास की 'राधा'। मुँह छिपा लिया रवीन्द्रनाथ की 'विजयिनी' ने।

बेचारी लक्ष्मी की हालत चलने लायक न थी। कहीं बैठ पाती तो चैन मिलता। परन्तु उन आँखों की आकुलता को देख कर बहुत-सी ताकत आई उसमें। उसी आकर्षण से वह खिंची चली गई।

'सीढ़ी चढ़ने में तुम्हें तकलीफ हो रही है। लाओ, नन्हें को मुझे दे दो।' चलते-चलते रुक गया कृष्णन।

हाथ बढ़ा कर लक्ष्मी ने बेटे को पति को थमा दिया और धीरे-धीरे उसके पीछे सीढ़ी चढ़ने लगी।

भूल

॥ एक ॥

'यह महिला कौन हैं ?'

'कौन सी महिला ?'

'आपही के घर से तो निकली। हाथों में एक बड़ी-सी कापी लिये थी।'

'ओह वे ! अरे वे तो यहाँ की गर्ल्स-स्कूल की प्रधानाध्यापिका हैं।'

'क्वाँरी ?'

'क्यों ? बताओ न ? वह जो 'फर्स्ट साइट' में क्या तो हो जाता है, वैसा कुछ हो गया क्या ?'

'अब ? इस उम्र में ?'

'कौन बहुत उम्र है ? और फिर मैंने तो सुना है कि लेखक कभी बुढ़ाते नहीं।'

'बात आप बहुत ठीक कह रहे हैं। बहुत सारे लेखक उम्र-भर नाबालिग ही रह जाते हैं।'

'नाबालिग नहीं, युवक ! अनन्त यौवन वाले। उन्हें उर्वशी का पुरुष संस्करण भी कहा जा सकता है। अगर ऐसा न होता तो, तुम्हारे फलां लेखक, नाम नहीं बताऊँगा, बुढ़ापे की दहलीज पर आकर प्रेम से लकदक ऐसे उपन्यास लिखने लगे हैं कि दो-चार सफे पढ़ते न पढ़ते हमारे कान लाल होने लगते हैं। बेचारे नयी उम्र के लोगों का क्या हाल होता होगा, यह तो वे ही जानें। खैर, जाने दो। अच्छा यह बताओ कि यह महिला तुम्हें क्वाँरी क्यों लगी ? क्या इस लिये कि वे अध्यापिका हैं, और मैंने तुम्हें उनका परिचय यह कह कर नहीं दिया कि वे फलाने परिवार की बेटी हैं ? क्या यही कारण है?'

'हाँ, वह भी है। और, फिर मैंने देखा की उनकी माँग की रेखा सादी है।'

'यह भी ख्याल किया तुमने ? इसी को कहते हैं 'लिटरेरी आबजरवेशन' ! बंगला में इसे क्या कहते हो तुमलोग ?'

'सोचना पड़ेगा।'

'अच्छा उसे फिर बाद में ही सुनूंगा। फिलहाल तुम्हारे सवाल का जवाब देता हूँ, नहीं वे क्वारी नहीं हैं।'

'विधवा हैं ?'

'नहीं, विधवा भी नहीं।'

'इसाई हैं ?'

'नहीं ! सनातनी हिन्दू ।'

मृगांक की समझ में न आया कि वह अब क्या कहे।

उसकी दशा देख स्मरजीत बाबू बोले, 'मामला जरा विचित्र मालूम हो रहा है न?'

'केवल विचित्र ही नहीं—'

'रहस्यमय !' वाक्य पूरा किया स्मरजीत बाबू ने।

मृगांक ने कहा, 'डि. एल. राय का वह गीत याद आ रहा है। शायद उनके 'मेवाड़ पतन' में हैं—'सधवा अधवा, विधवा आमरा रहिव उच्च शिर।' स्त्रियों की तो यही तीन श्रेणियाँ हैं। हमारी जान में तो ऐसा ही है। इन्हें किस श्रेणी में रखा जायेगा ?'

'कठिन है सवाल। तुम साहित्यकार हो, सोच समझ कर एक बढ़िया-सा नाम निकाल सको तो अच्छा है। जिसे अभिधा कहा जाता है— ।'

'मगर जब तक पूरी बात मालूम न हो —'

'समझा। कहानी का सुराग लगते ही मन ललक गया। पर, उनके जीवन में जो घटना घटी थी, जिसके कारण आज उन्हें इन तीन श्रेणियों में से किसी में भी रखा नहीं जा सकता, वह और जो भी हो, कहानी नहीं है। वह तुम्हारे काम न आयेगी। पत्रिकाओं की पूजा संख्या की भीड़ में कटौती तो शायद हो जाये, मगर आज का पाठक वर्ग उसे स्वीकार न करेगा। 'दकियानूसी', 'अवास्तव', 'अविश्वसनीय' आदि पैने-पैने विशेषण जोड़ उसे कोने में डाल देंगे।'

'वह तो बाद की बात है। पहले सुनूँ तो सही।' कह कर मृगांक जम कर बैठ गया।

'अभी सुनोगे ?'

'बुरा क्या है ? आपको कालेज जाना नहीं। मेरा काम-धाम भी बन्द है। जम कर गपशप करने का इरादा लेकर ही तो चला था।'

'इस बार तुम कुछ दिन रहोगे न ?'

'हद-से-हद पांच-सात दिन।'

'कुछ आर्डर आदि मिले ?'

'जितने की उम्मीद लेकर चला था उतना मिला कहाँ ? और दो-चार दिन घूम-फिर कर देख लूँ।'

'क्या जमाना लगा है ! इज्जत बचा कर पेट भर खा-पी कर जिन्दा रहना भी दुश्वार हो गया है। खास कर उनके लिये जिनका नाम 'मिडिल-क्लास' है। किताबें खरीदने के लिए पैसे कहाँ ?'

'फिर भी वे ही अभी तक किताब पढ़ते हैं और खरीद कर पढ़ते हैं। जो बिल्कुल मजदूर हैं वे किसी लाइब्रेरी से मँगा कर पढ़ते हैं। उन्हीं की कृपा से छोटी लाइब्रेरियाँ अब तक चल रही हैं।'

'पक्की बात ! जिनके पास जितना अधिक धन है किताब खरीदने का बजट उनका उतना ही छोटा है । इस देश का यह एक विचित्र पैराडाक्स है ।'

'बजट छोटा है क्यों कह रहे हैं ? बजट है ही नहीं । मुझे तो छोटे-बड़े हर किस्म के शहरों में जाना पड़ता है, हर किस्म के लोगों से मिलना पड़ता है । अमीरों की बैठकों में, या जिन्हें वे 'स्टडी' कहते हैं, उसमें एक लाइब्रेरी जरूर होती है । उसे लाइब्रेरी न कह कर किताबों का शो-केस कहना ज्यादा उचित होगा । चमकदार जिल्दवाली अंग्रेजी किताबें । न जानें कब की खरीदी हुई । पढ़ने के लिये नहीं, लोगों को दिखाने के लिये सजा कर रखी गई है । रवीन्द्रनाथ की वह कविता याद है न ?

सोना-जले दाग पड़ेना
खोलेना केऊ पाता
अस्वादित मधु-येमन
जूथी अनाघ्राता ।।'

(पुस्तकों पर की सोने के पानी की लिखावट पर कोई दाग नहीं । [illegible] कभी खोले नहीं जाते । बिल्कुल वैसे, जैसे शहद हो, मगर किसीने उसे [illegible] न हो । जूही हो, मगर उसे किसी ने सूंधा न हो ।)

'भृत्य नित्य धूलो झाड़े' की पंक्ति तक आकर [illegible] तरकीब को भी करके दिखा दिया ।

रमरजीत हँस पड़े । फिर बोले, 'इसी में तो [illegible] प्रासाद पर आछिल माग्यमत्त' (पत्थरों से बने महल में [illegible] हैं) । आगे की लाइन तो वही हैं न 'मेहगिनिर मंच [illegible] (मेहगिनी के बने मंच पर पाँच हजार पुस्तकें शोभित हैं । [illegible] करो । किताबों की कैनवसिंग का काम छोड़ कर [illegible] महल में धूल झाड़ने का काम कर लो । जैसे [illegible] अभी तुमने, यह काम तुम खूब बढ़िया कर लोगे ।'

वह तो जरूर कर लूंगा, और पैसे भी [illegible] यह काम मुझे कोई देगा नहीं । जो साहब लोगों [illegible] क्लास' । दुर्भाग्य से हम उसी श्रेणी के हैं । [illegible] अनफिट फार धूल झाड़ना ।' छोड़िये भी । [illegible] रहने दीजिये और जहाँ से शुरू किया था [illegible] पीछे छूट गईं ।'

'नहीं । छूटने नहीं पायेंगी । उन्हें एकदम [illegible] जरा कोयला-पानी का इन्तजाम किया जाय । [illegible]'

नौकर को बुला कर बोले, 'जरा [illegible] दो कप चाय भी बना । और, बाद में इन साहब के लिये—[illegible]

वंशीलाल ने हामी भरी। मृगांक ने पूछा, 'केवल इन साहब के लिये क्यों?'

'इस समय मैं और कुछ तो खा न सकूँगा भाई। अमीर हो न सका तो क्या, अमीरी के दो लक्षण खूब अच्छी तरह से अपनाये हैं मैंने—ब्लडप्रेशर और डायबेटीस। और अब हार्ट महोदय भी गड़बड़ मचाने की फेर में हैं। डाक्टर ने सिगरेटों की संख्या आधी कर दी है। मगर मैं वह न मानूँगा। अगर तुम्हारी भाभी होतीं, तब तो खैर—'

'भाभी यहाँ नहीं है? तभी इतनी देर में भी दिखाई-सुनाई नहीं पड़ीं। गईं कहाँ?'

'कलकत्ते। भतीजी की शादी है।'

'तो फिलहाल आप वंशीलाल के भरोसे हैं? भाभी लौटेंगी कब तक?'

'पाँच-छह: दिन तो अवश्य लग जायेंगे। तब तक जरा आराम से रहूँगा। आठों पहर घरवाली की खबरदारी क्या चीज है, यह तो तुमने कभी जाना नहीं मेरे भाई! उससे तो मेरा यह पुरातन भृत्य--'

बात पूरी होने के पहले ही वंशीलाल का पुनरागमन होता है। चाय और नाश्ता जगह पर लगा कर वह चला गया। समरजीत ने कहा, 'शुरू करो।' खुद भी चाय की प्याली उठा ली। छोटे-छोटे घूँटों में उसे खत्मकर सिगरेट सुलगाई। डिब्बी मृगांक की तरफ खिसका दिया। सोफे से पीठ टिका कर धुँए के छल्लों को देखते रहे कुछ देर, फिर बोले, 'मैं स्कूल कमेटी का सेक्रेटरी, वे हेडमिस्ट्रेस। अक्सर ही कुछ न कुछ काम रहता है। फलतः नन्दा बनर्जी को फाइल या रजिस्टर लेकर मेरे पास अक्सर आना पड़ता है। शुरू-शुरू में उनकी सीमा-रेखा इस बैठकखाने तक ही सीमित थी, और कभी-कमार बगल वाले पढ़ने के कमरे तक। फिर वे अन्दर भी जाने लगीं। बाद में देखा गया, वही मुख्य है और यह गौण। आते ही सीधे जनाने में पहुँचती हैं। वापसी में मेरे पास आती हैं, वह भी जिस दिन कुछ काम-वाम रहता है, नहीं तो वे कब आती हैं और कब चली जाती हैं, मुझे पता भी नहीं लगता।

'थोड़े ही दिनों में मैं 'सर' से 'दादा' में प्रोमोशन पा गया। (या डिमोशन कहूँ इसे?)। मगर वह केवल इस घर की सीमा में। कहीं और या किसी और के सामने जब मुलाकात होती है तब वे कभी यह प्रकट नहीं होने देतीं कि हम सेक्रेटरी-हेडमिस्ट्रेस के अलावा और कुछ भी हैं। नया सम्पर्क आया भी उसी तरफ से। तुम लोग तो जानते हो कि भाई पहले और भाभी बाद में आती है, इस बार मगर सब उलट-पुलट गया। भाभी के पति होने के नाते मैं 'भैया' पद को प्राप्त हुआ।

'नन्दा आती रहती है। मिलना-जुलना, हँसी-मजाक, खाना-पीना, घूमना-फिरना, सारा ही बिल्कुल अपनों जैसा। लेकिन एक जगह उसने दीवार खड़ी कर रखी है। अपने विषय में, यानी इस स्कूल में नौकरी करने जब आई, उसके

पहले के जीवन के विषय में उसने चुप्पी साथ रखी है। मुझे न बताये, मगर असीमा, जिसे वह अपनी सगी माता से भी अधिक मानती है, उसके पास भी मुँह नहीं खोलती। बस, इतना बताया था कि माता-पिता दोनों चल बसे हैं। भाई-बहन यहाँ-वहाँ हैं, पार्टीशन के बाद कौन किधर छिटक गया है, कुछ पता नहीं, किसी का पता-ठिकाना भी ठीक से मालूम नहीं। बस इतना ही। आगे कुछ पूछने पर कौशल से टाल जाती।

'असीमा ने कोशिश किया न हो, ऐसा नहीं। तुम्हें मालूम है ऐसी बातों की जानकारी हासिल करने की स्त्रियों में विशेष पटुता होती है। उनकी आँखों में और जबान पर ईश्वर ने ऐसे यंत्र लगाये हैं कि वे सारी बात पकड़ ही तो लेती हैं। छिपाने की सारी कोशिशें बेकार हो जाती हैं। मगर तुम्हारी मामी उन यंत्रों की सहायता से नन्दा बनर्जी के जीवन की बहुत कम तथ्य ही निकाल पाई थीं।

'नन्दा के विषय में हम अक्सर ही आपस में बातें करते। मैंने एकाध बार मजाक में कहा भी था कि देखो जाकर कहीं कुछ गड़बड़ कर आई है। कहीं बात-चीत की दौरान में पोल खुल न जाय, इसी कारण मुँह खोलना नहीं चाहती।

'शुरू-शुरू में असीमा मान लेती कि शायद कहीं कुछ गड़बड़ हो, मगर जैसे-जैसे उनका मेल-जोल बढ़ता गया, दोनों की मित्रता गाढ़ी होती गई, तब से वह मेरी बात इतनी आसानी से मानने को तैयार नहीं होती। कहती, 'नहीं जी, बड़ी अच्छी लड़की है। इतने दिनों से देख रही हूँ। मैं नहीं सोचती कि वह किसी किस्म का गड़बड़ काम कर सकती है। मेरा विश्वास है कि किसी जगह बहुत करारी चोट उसने खाई है, नहीं तो, उसके जीवन मे ऐसी कोई घटना घटी है जो किसी को बतायी नहीं जा सकती। अब मैंने इस मामले में पूछताछ करना ही छोड़ दिया है। जरूरत भी क्या है? नहीं बताना चाहती तो रहने दो।'

'पूछताछ करने की जरूरत भी न हुई। नन्दा ने एक दिन अपने से ही सारी बातें बता दीं। बताया भी यकायक। वैसे उपलक्ष तो एक था ही, मगर वह बहुत साधारण।'

'स्मरजीत बाबू घर पर हैं?' कहते हुये एक सज्जन अन्दर आये। 'अरे! आइये-आइये।' कहते हुए स्मरजीत बाबू उनकी अभ्यर्थना करने को उठे। मगर उस समय मृणाक की आँखों में ऐसी दृष्टि उभरी कि अगर यह सतयुग होता तो वे सज्जन उसी दम उसी जगह पर राख की ढेर हो जाते। यह तो पता ही चला कि आगन्तुक गृहस्वामी के विशिष्ट मित्रों में से हैं। मगर क्या इसी कारण उन्हें यह अधिकार था कि वे आज इसी समय आते?

वंशीलाल ने हामी भरी। मृगांक ने पूछा, 'केवल इन साहब के लिये क्यों ?'

'इस समय मैं और कुछ तो खा न सकूँगा भाई। अमीर हो न सका तो क्या, अमीरी के दो लक्षण खूब अच्छी तरह से अपनाये हैं मैंने—ब्लडप्रेशर और डायबेटीस। और अब हार्ट महोदय भी गड़बड़ मचाने की फेर में हैं। डाक्टर ने सिगरेटों की संख्या आधी कर दी है। मगर मैं वह न मानूँगा। अगर तुम्हारी भाभी होतीं, तब तो खैर—'

'भाभी यहाँ नहीं है? तभी इतनी देर में भी दिखाई-सुनाई नहीं पड़ीं। गईं कहाँ?'

'कलकत्ते। भतीजी की शादी है।'

'तो फिलहाल आप वंशीलाल के भरोसे हैं? भाभी लौटेंगी कब तक?'

'पाँच-छह: दिन तो अवश्य लग जायेंगे। तब तक जरा आराम से रहूँगा। आठों पहर घरवाली की खबरदारी क्या चीज है, यह तो तुमने कभी जाना नहीं मेरे भाई! उससे तो मेरा यह पुरातन भृत्य—'

बात पूरी होने के पहले ही वंशीलाल का पुनरागमन होता है। चाय और नाश्ता जगह पर लगा कर वह चला गया। समरजीत ने कहा, 'शुरू करो।' खुद भी चाय की प्याली उठा ली। छोटे-छोटे घूँटों में उसे खत्म कर सिगरेट सुलगाई। डिब्बी मृगांक की तरफ खिसका दिया। सोफे से पीठ टिका कर धुँए के छल्लों को देखते रहे कुछ देर, फिर बोले, 'मैं स्कूल कमेटी का सेक्रेटरी, वे हेडमिस्ट्रेस। अक्सर ही कुछ न कुछ काम रहता है। फलतः नन्दा बनर्जी को फाइल या रजिस्टर लेकर मेरे पास अक्सर आना पड़ता है। शुरू-शुरू में उनकी सीमा-रेखा इस बैठकखाने तक ही सीमित थी, और कभी-कमार बगल वाले पढ़ने के कमरे तक। फिर वे अन्दर भी जाने लगीं। बाद में देखा गया, वही मुख्य है और यह गौण। आते ही सीधे जनाने में पहुँचती हैं। वापसी में मेरे पास आती हैं, वह भी जिस दिन कुछ काम-वाम रहता है, नहीं तो वे कब आती हैं और कब चली जाती हैं, मुझे पता भी नहीं लगता।

'थोड़े ही दिनों में मैं 'सर' से 'दादा' में प्रोमोशन पा गया। (या डिमोशन कहूँ इसे?)। मगर वह केवल इस घर की सीमा में। कहीं और या किसी और के सामने जब मुलाकात होती है तब वे कभी यह प्रकट नहीं होने देतीं कि हम सेक्रेटरी-हेडमिस्ट्रेस के अलावा और कुछ भी हैं। नया सम्पर्क आया भी उसी तरफ से। तुम लोग तो जानते हो कि भाई पहले और भाभी बाद में आती है, इस बार मगर सब उलट-पुलट गया। भाभी के पति होने के नाते मैं 'भैया' पद को प्राप्त हुआ।

'नन्दा आती रहती है। मिलना-जुलना, हँसी-मजाक, खाना-पीना, घूमना-फिरना, सारा ही बिल्कुल अपनों जैसा। लेकिन एक जगह उसने दीवार खड़ी कर रखी है। अपने विषय में, यानी इस स्कूल में नौकरी करने जब आई, उसके

पहले के जीवन के विषय में उसने चुप्पी साध रखी है। मुझे न बताये, मगर असोमा, जिसे वह अपनी सगी भाभी से भी अधिक मानती है, उसके पास भी मुँह नही खोलती। बस, इतना बताया था कि माता-पिता दोनों चल बसे हैं। भाई-बहन यहाँ-वहाँ हैं, पार्टीशन के बाद कौन किधर छिटक गया है, कुछ पता नहीं, किसी का पता-ठिकाना भी ठीक से मालूम नहीं। बस इतना ही। आगे कुछ पूछने पर कौशल से टाल जाती।

'असीमा ने कोशिश किया न हो, ऐसा नही। तुम्हें मालूम है ऐसी बातों की जानकारी हासिल करने की स्त्रियों में विशेष पटुता होती है। उनकी आँखों में और जबान पर ईश्वर ने ऐसे यंत्र लगाये हैं कि वे सारी बात पकड़ ही तो लेती हैं। छिपाने की सारी कोशिशे बेकार हो जाती हैं। मगर तुम्हारी भाभी उन यंत्रो की सहायता से नन्दा बनर्जी के जीवन को बहुत कम तथ्य ही निकाल पाई थीं।

'नन्दा के विषय में हम अक्सर ही आपस में बातें करते। मैंने एकाध बार मजाक में कहा भी था कि देखो जाकर कही कुछ गडबड कर आई है। कहीं बात-चीत को दौरान में पोल खुल न जाये, इसी कारण मुँह खोलना नही चाहती।

'शुरू-शुरू में असीमा मान लेती कि शायद कही कुछ गड़बड़ हो, मगर जैसे-जैसे उनका मेल-जोल बढता गया, दोनों की मित्रता गाढ़ी होती गई, तब से वह मेरी बात इतनी आसानी से मानने को तैयार नही होती। कहती, 'नहीं जी, बड़ी अच्छी लडकी है। इतने दिनों से देख रही हूँ। मैं नहीं सोचती कि वह किसी किस्म का गड़बड़ काम कर सकती है। मेरा विश्वास है कि किसी जगह बहुत करारी चोट उसने खाई है, नही तो, उसके जीवन में ऐसी कोई घटना घटी है जो किसी को बतायी नही जा सकती। अब मैंने इस मामले में पूछताछ करना ही छोड़ दिया है। जरूरत भी क्या है? नही बताना चाहती तो रहने दो।'

'पूछताछ करने की जरूरत भी न हुई। नन्दा ने एक दिन अपने से ही सारी बातें बता दी। बताया भी यकायक। वैसे उपलक्ष तो एक था ही, मगर वह बहुत साधारण।'

'समरजीत बाबू घर पर हैं?' कहते हुये एक सज्जन अन्दर आये। 'अरे! आइये-आइये।' कहते हुए समरजीत बाबू उनकी अभ्यर्थना करने को उठे। मगर उस समय मृगाक की आँखों मे ऐसी दृष्टि उभरी कि अगर यह सतयुग होता तो वे सज्जन उसी दम उसी जगह पर राख की ढेर हो जाते। यह तो पता ही चला कि आगन्तुक गृहस्वामी के विशिष्ट मित्रों में से हैं। मगर क्या इसी कारण उन्हे यह अधिकार था कि वे आज इसी समय आते?

स्मरजीत ने परिचय कराया, 'डाक्टर महापात्र, यहाँ के मेडिकल कालेज के अध्यक्ष हैं। और ये मेरे अति घनिष्ट मित्र, यद्यपि उम्र में मुझसे बहुत छोटे हैं, मृगांक मौलिक, कलकत्ते के एक विशिष्ट प्रकाशन संस्था के प्रतिनिधि।'

'जानता हूँ।' कोच पर बैठते हुए डाक्टर महापात्र ने कहा, 'मेरे यहाँ परिचय हुआ था। कल अगर मेरे दफ्तर में आने का कष्ट करें तो लिस्ट आपको मिल जायेगी। तैयार है।'

अति संक्षेप में और बड़ी गम्भीरता से मृगांक ने उत्तर दिया, 'आऊँगा।' वह उस समय मारे क्रोध के वह बेहाल हो रहा था।

महापात्र साहब ने स्मरजीत बाबू से कहा, 'कालेज के लिए कुछ मेडिकल पुस्तकें लेनी हैं। वैसे तो हमारा आदमी जाकर कलकत्ते से ले आता है। इस बार जब ये मिल गये तो मैंने सोचा कि आर्डर इन्हीं के फर्म को दे दिया जाय तो बुरा क्या है? एक शिक्षित व्यक्ति ईमानदारी से मेहनत कर रहा है। अगर दो-चार पैसों का इन्तजाम कर दिया जाय तो हर्ज क्या है? आपके कालेज में भी तो किताबें खरीदी जाती हैं?'

'बहुत कम।'

'कुछ भी हो। कुछ तो लेते ही होंगे। मैंने सुना कि ये बंगला किताबें भी दे सकते हैं। तमाम बंगाली तो हैं यहाँ। करा दीजिये न दो-चार से परिचय।'

'कोशिश तो कर रहा हूँ। मृगांक खुद भी लेखक है।'

'अरे सच? यह तो इन्होंने बताया ही नहीं।'

'कहने लायक बात होती तो जरूर कहता।' इस बार मृगांक ने प्रसन्न होकर कहा। कहानी तो बेशक बेमौत मारी गई, मगर आदमी बुरा नहीं।

प्रतिवाद कर महापात्र ने कहा, 'यह आप क्यों कहते हैं कि बात बताने लायक नहीं। लेखक का समाज में विशिष्ट स्थान है, मर्यादा है।'

'हो सकता है। बुरा मत मानियेगा, यह केवल कहने के लिए बातें हैं। असलियत तो यह है कि वे कृपा के पात्र हैं। खासकर समाज के ऊँचे स्तरों में।'

'नहीं, नहीं। आपका यह कहना ठीक नहीं। हमारी समझ में वे श्रद्धा के पात्र हैं, उन्हें हम उनका प्राप्य सम्मान मौका पाते ही देते भी हैं। हमारे कालेज में जब-जब जलसे होते हैं, नव वर्ष पर, नये छात्रों के स्वागत के अवसर पर, और भी होते ही रहते हैं, मैंने अपने छात्र-छात्राओं से कह रखा है कि हर अवसर पर किसी न किसी लेखक को प्रधान अतिथि बनाना ही पड़ेगा। यही नियम यहाँ चला आ रहा है।' मृगांक ने देखा कि ये सज्जन बड़े ही सीधे हैं। इतने बड़े पद पर होते हुये भी अत्यन्त सहज और सरल हैं। ऐसा न होता तो भला वे इस बात को कैसे मान बैठे कि किसी जलसे में प्रधान अतिथि होना बहुत बड़ा सम्मान है? उन्हें मालूम नहीं कि यह कितनी बड़ी विडम्बना है। बताना भी

बेकार होगा। जो समाज, जो युग, मनुष्य का मूल्य रूपयों के अंक से आँकता है, धन ही जहाँ मान का मापदण्ड है, वहाँ इन्होंने लेखक को ऊँचे आसन पर बैठाया है।

वैसे मृगांक बहुत नामी लेखक नहीं है। सभा-समिति, संगीत-सम्मेलनों या नाटकों में उद्घाटन करने या प्रधान अतिथि होने के निमन्त्रण उसे नहीं मिलते। एक प्राचीन तथा प्रख्यात लेखक ने, जिन्हें उससे स्नेह है, और जो ऐसे आसनों की शोभा बढ़ाते हैं, यानी जनप्रियता के कारण करना पड़ता है, एक बार उसे अपने अनुभव सुनाये थे। कहा था उन्होंने, 'एक बार ऐसे ही एक फंक्शन मे प्रधान अतिथि होकर गया। कुश्ती का अखाड़ा था, बारबेल पैरललबार आदि का भी इन्तजाम था। मतलब यह कि वे लोग वर्जिश आदि करते रहे होंगे। यकायक चारो तरफ बड़ी दौड़-धूप शुरू हुई। हुआ क्या? सभापति की सवारी आई है। तीन-चार राशन दुकानों के मालिक हैं। वह तो हुई बाहर के दिखावे की बात। अन्दरूनी बात कुछ और है। इन लड़कों को सब कुछ पता है और वे हमेशा उनके नाम के आगे 'स' मे 'आ' की मात्रा जोड़ा करते हैं। लेकिन यहाँ उन्होने ढेर सारा चन्दा दिया है। क्या इज्जत है उनकी! सबने उन्हे घेर-घार कर स्टेज पर पहुँचाया। क्षण-क्षण में कैमरे का फ्लैश झलकने लगा। मैं बेचारा डायस के नीचे एक कोने मे बैठा था। शायद यकायक किसी को मेरी याद आई।

'आइये सर।

'बड़ी तकलीफ से उठ खड़ा हुआ। फूलो का एक हार भी मिला मुझे। मगर अन्तर यह था कि सभापति जी की माला उन्ही की तरह भारी भरकम और मेरी वाली दुबली-पतली। उसके बाद व्याख्यान। मैंने दो चार वाक्यों में समाप्त किया। सभापतिजी के लिखित व्याख्यान को किसी और ने पढ़ कर सुनाया। कारण तो समझ ही रहे होंगे। क्यो?'

मृगांक ने पूछा 'फिर?'

'उसके बाद बिदाई। वे तो अपनी भड़कीली गाड़ी में सवार हो कर चले गये। इधर मेरी टैक्सी का कही पता नही। लेने जाये भी कौन? तब तक संगीतकारो का गाना आरम्भ हो चुका था। कार्यकर्तागण उन्ही की आवभगत में लगे थे। मैं श्रोताओं के आसन पर आ बैठा था। एक के बाद एक संगीत सुनता रहा, कह भी क्या सकता था? वे मगर अपना-अपना प्रोग्राम खतम करते और चल देते। तब मुझे क्या लग रहा था बताऊँ? काले-बाजारी को जो सम्मान मिला वह मुझे न मिला, नही सही। इतनी तकदीर वाले तो विरले ही होते है। लेकिन अगर कोशिश करता तो क्या मैं उस किस्म के दो चार 'आ तथाकथित 'रवीन्द्र संगीत' नहीं सीख सकता था? इज्जत मिलती औ मुहरबन्द मोटा-सा लिफाफा भी मिलता। एक क्षीणकाय रजन

गले में लटकाये सारी शाम टैक्सी के इन्तजार में जाया करना न पड़ता।'

डाक्टर महापात्र जब चलने को तैयार हुये तब मृगांक की घड़ी की सुइयाँ ग्यारह के करीब पहुँच रही थीं। फिर भी वह आस लगाये था कि समरजीत शायद फिर अपनी कहानी में लौट जायें। वे उसे अवश्य ही इस तरह बीच में छोड़ नहीं देंगे। वे शायद फिर सुनाना शुरू करते। लेकिन उनके उस 'पुरातन-भृत्य' ने सारा मामला गड़बड़ा दिया। दाँत निकाले वह आकर मालिक के बगल में खड़ा हो गया। समरजीत ने उससे पूछा 'क्या है रे?' मगर इसकी कोई जरूरत न थी। हमेशा की परह वंशीलाल चुप रहा। मृगांक तो समझ ही गया था, फिर भी उसने पूछा, 'क्या यह एविक्शन नोटिस है?'

'केवल नोटिस ही नहीं, अलटिमेटम। अगर हुक्म माना न गया तो बड़े अदालत में शिकायत पहुँचायेगा। तुम एक काम करो। झट से नहा लो। मैं तो सुबह ही नहा चुका हूँ। फिर, जो कुछ भी बना है, उसी को साथ बैठ कर खा लें।'

'आज रहने दें।'

'क्यों? रहने क्यों दें? अरे, हमारा वंशीलाल कितना एक्सपर्ट कुक है जरा परख कर तो देखो। मेरी समझ में, वह जो तुम्हारा होटल का महराज है, उससे बुरा न होगा।'

'बात यह नहीं। मैं कह कर नहीं आया हूँ। महराज मेरा इन्तजार करेगा। अगर वक्त से न गया तो नाराज होगा। अभी तो कई दिन उसकी मेहरबानी के भरोसे रहना है।'

'तो फिर शाम को जरा जल्दी-जल्दी आना। और महराज से कह कर आना कि इन्तजार न करे।'

शाम को करीब साढ़े चार बजे, चाय के ठीक पहले मृगांक आ पहुँचा। कहानी सुनाने और सुनने वालों का साथ देने के लिये यह वस्तु बेजोड़ है। वंशी-लाल तैयार था। कहानी की मजलिस शुरू होते देर न लगी।

'कहाँ पहुँचा था?' पूछा समरजीत ने। मृगांक ने उन्हीं की भाषा को दोहरा दिया, 'नन्दा बनर्जी ने एक दिन अपने आप ही अपनी सारी बातें बता दी।'

'ओ हाँ। मगर बताऊँ दिक्कत क्या है? यह जो उसकी सारी बातें या जो कुछ भी कहो, इसे नन्दा ने मुझे नहीं, असीमा को बताई थी। मैंने उसी से सुनी है। एक तो सेकेण्ड हैण्ड, और फिर जिसे 'रसबोध' कहा जाता है वह मुझमें नहीं है। रहने की आशा भी नहीं। बीस बरसों से कस्बई कालेज में सवाल सिखा रहा हूँ। अतएव—'

'कोई बात नहीं। आप शुरू तो कीजिये।'

'ठीक है। सुनो। नन्दा की गृहस्थी में पहले थी वह और एक देहाती नौक-रानी। इधर उन्हें दाई कहा जाता है। खाना बनाने से झाड़-पोंछ तक सारा काम

वही करती। उसकी उम्र भी काफी है। किसी हद तक गार्जियन भी है। नन्दा की आयु चालीस के आसपास होते हुये भी उतना लगता नही। गठा हुआ शरीर है। देखने में सुन्दर भी है। तुमने तो देखा ही है।'

छद्म खेद से मृगांक ने कहा, 'कहाँ देख पाया मैं ? एक नजर देखते तो दन-दनाती हुई चली गई। चालीस क्या कह रहे हैं आप ? मैं तो उन्हें तीस के आसपास समझ रहा था।'

'ऐसा ही औरों को भी लगा था। इस कारण मुझे शुरू से ही सावधान होना पड़ा। उसके आऊट-हाऊस में बूढे दरवान के रहने का इन्तजाम किया। लडकियो के स्कूल का सेक्रेटरी होने का झमेला क्या कम है ?'

'सुविधायें भी क्या कम हैं ?' नहले पर दहला मारा मृगांक ने।

'सुविधा वाली उम्र अब रह कहाँ गई मेरे भाई ? और फिर तुम्हारे जैसा मस्तमौला होता तो कोई बात भी थी। मैं तो सात भाँवरों के बन्धन के जकडा हुआ हूँ। खैर, जो कह रहा था। नन्दा की गृहस्थी में एक सदस्या बढी। आठवें या नवें क्लास की एक लडकी। उस बालिका को लाकर अपने घर पर रखा। उसकी कोई रिश्तेदार नही। यह लडको उसके घर कैसे रहने आई यह भी एक ऐतिहासिक काण्ड है। वह तो बाद में बताऊँगा।'

'असीमा तो उसके घर पर अक्सर जाती। एक दिन शाम के झुटपुटे में वह जब पहुँची तब देखती क्या है कि नन्दा विषाद की प्रतिमा बनी बैठक मे बैठी है। बत्ती भी नही जलाई है। स्विच दबाते ही चौंक कर बोली, 'आओ भाभी।' निस्तेज, मुरझाया स्वर। और समय तो भाभी को देखते ही चहकने लगती।

'क्या हो गया है ? इस तरह क्यो बैठी हो ?' पूछा असीमा ने।

फीकी-सी मुस्कराहट बिखेर कर बोली, 'मुमी चली गई।'

'कहाँ ?'

'घर। उसके पिता आकर ले गये।'

वह लडकी काफी दिन उसके पास रही थी। एकदम उसकी अपनी बेटी सी। दुःखी होना बहुत स्वाभाविक था। असीमा बोली, 'तुम कर भी क्या सकती थी ? दूसरे की लडकी है। हमेशा तो तुम उसे अपने साथ रख नही सकती थी। देखो न मेरी राखी को दो हफ्ते भी न हो पाये थे—।' मगर सान्त्वना के यह शब्द नन्दा के कानों तक शायद ही पहुँचे थे। वह किस सोच में डूबी थी यह तो वही जाने। लम्बी सी साँस छोड कर बोली, 'चलो अच्छा ही हुआ। इतने दिनों से मैं एक भूल का बोझ लादे फिर रही थी। उतर गया। मेरी भी जान छूटी।'

'भूल का बोझ कैसा ?' असीमा की उत्सुकता जागी।

अपनी बातों की लय का विस्तार करती हुई नन्दा कहती गई, 'क्या बताऊं भाभी, किस तडपन में जी रही थी मैं। यही ख्याल मुझे हर पल सालता—यह क्या हो गया मुझे ? इतने सालों के बाद यह क्या पागलपन मेरा ?

गले में लटकाये सारी शाम टैक्सी के इन्तजार में जाया करना न पड़ता।'

डाक्टर महापात्र जब चलने को तैयार हुये तब मृगांक की घड़ी की सुइयाँ ग्यारह के करीब पहुँच रही थीं। फिर भी वह आस लगाये था कि समरजीत शायद फिर अपनी कहानी में लौट जायें। वे उसे अवश्य ही इस तरह बीच में छोड़ नहीं देंगे। वे शायद फिर सुनाना शुरू करते। लेकिन उनके उस 'पुरातन-भृत्य' ने सारा मामला गड़बड़ा दिया। दांत निकाले वह आकर मालिक के बगल में खड़ा हो गया। समरजीत ने उससे पूछा 'क्या है रे?' मगर इसकी कोई जरूरत न थी। हमेशा की परह वंशीलाल चुप रहा। मृगांक तो समझ ही गया था, फिर भी उसने पूछा, 'क्या यह एविक्शन नोटिस है?'

'केवल नोटिस ही नहीं, अलटिमेटम। अगर हुक्म माना न गया तो बड़े अदालत में शिकायत पहुँचायेगा। तुम एक काम करो। झट से नहा लो। मैं तो सुबह ही नहा चुका हूँ। फिर, जो कुछ भी बना है, उसी को साथ बैठ कर खा लें।'

'आज रहने दें।'

'क्यों? रहने क्यों दें? अरे, हमारा वंशीलाल कितना एक्सपर्ट कुक है जरा परख कर तो देखो। मेरी समझ में, वह जो तुम्हारा होटल का महराज है, उससे बुरा न होगा।'

'बात यह नहीं। मैं कह कर नहीं आया हूँ। महराज मेरा इन्तजार करेगा। अगर वक्त से न गया तो नाराज होगा। अभी तो कई दिन उसकी मेहरबानी के भरोसे रहना है।'

'तो फिर शाम को जरा जल्दी-जल्दी आना। और महराज से कह कर आना कि इन्तजार न करे।'

शाम को करीब साढ़े चार बजे, चाय के ठीक पहले मृगांक आ पहुँचा। कहानी सुनाने और सुनने वालों का साथ देने के लिये यह वस्तु बेजोड़ है। वंशी-लाल तैयार था। कहानी की मजलिस शुरू होते देर न लगी।

'कहाँ पहुँचा था?' पूछा समरजीत ने। मृगांक ने उन्हीं की भाषा को दोहरा दिया, 'नन्दा बनर्जी ने एक दिन अपने आप ही अपनी सारी बातें बता दी।'

'ओ हाँ। मगर बताऊँ दिक्कत क्या है? यह जो उसकी सारी बातें या जो कुछ भी कहो, इसे नन्दा ने मुझे नहीं, असीमा को बताई थी। मैंने उसी से सुनी है। एक तो सेकेण्ड हैण्ड, और फिर जिसे 'रसबोध' कहा जाता है वह मुझमें नहीं है। रहने की आशा भी नहीं। बीस बरसों से कस्बई कालेज में सवाल सिखा रहा हूँ। अतएव—'

'कोई बात नहीं। आप शुरू तो कीजिये।'

'ठीक है। सुनो। नन्दा की गृहस्थी में पहले थी वह और एक देहाती नौक-रानी। इधर उन्हें दाई कहा जाता है। खाना बनाने से झाड़-पोंछ तक सारा काम

वही करती। उसकी उम्र भी काफी है। किसी हद तक गार्जियन भी है। नन्दा की आयु चालीस के आसपास होते हुये भी उतना लगता नहीं। गठा हुआ शरीर है। देखने में सुन्दर भी है। तुमने तो देखा ही है।'

छद्म खेद से मृगांक ने कहा, 'कहाँ देख पाया मैं ? एक नजर देखते तो दनदनाती हुई चली गईं। चालीस क्या कह रहे हैं आप ? मैं तो उन्हें तीस के आसपास समझ रहा था।'

'ऐसा ही औरों को भी लगा था। इस कारण मुझे शुरू से ही सावधान होना पड़ा। उसके आऊट-हाउस में बूढ़े दरवान के रहने का इन्तजाम किया। लड़कियों के स्कूल का सेक्रेटरी होने का झमेला क्या कम है ?'

'सुविधायें भी क्या कम हैं ?' नहले पर दहला मारा मृगांक ने।

'सुविधा वाली उम्र अब रह कहाँ गई मेरे भाई ? और फिर तुम्हारे जैसा मस्तमौला होता तो कोई बात भी थी। मैं तो सात भाँवरों के बन्धन से जकड़ा हुआ हूँ। खैर, जो कह रहा था। नन्दा की गृहस्थी में एक सदस्या बढ़ी। आठवें या नवें क्लास की एक लड़की। उस बालिका को लाकर अपने घर पर रखा। उसकी कोई रिश्तेदार नहीं। यह लड़की उसके घर कैसे रहने आई यह भी एक ऐतिहासिक काण्ड है। वह तो बाद में बताऊँगा।'

'असीमा तो उसके घर पर अक्सर जाती। एक दिन शाम के झुटपुटे में वह जब पहुँची तब देखती क्या है कि नन्दा विषाद की प्रतिमा बनी बैठक में बैठी है। बत्ती भी नहीं जलाई है। स्विच दबाते ही चौंक कर बोली, 'आओ भाभी।' निस्तेज, मुरझाया स्वर। और समय तो भाभी को देखते ही चहकने लगती।

'क्या हो गया है ? इस तरह क्यों बैठी हो ?' पूछा असीमा ने।

फीकी-सी मुस्कराहट बिखेर कर बोली, 'मुन्नी चली गई।'

'कहाँ ?'

'घर। उसके पिता आकर ले गये।'

वह लड़की काफी दिन उसके पास रही थी। एकदम उसकी अपनी बेटी सी। दुःखी होना बहुत स्वाभाविक था। असीमा बोली, 'तुम कर भी क्या सकती थी ? दूसरे की लड़की है। हमेशा तो तुम उसे अपने साथ रख नहीं सकती थी। देखो न मेरी राखी को दो हफ्ते भी न हो पाये थे—।' मगर सान्तवना के यह शब्द नन्दा के कानों तक शायद ही पहुँचे थे। वह किस सोच में डूबी थी यह तो वही जाने। लम्बी सी साँस छोड़ कर बोली, 'चलो अच्छा ही हुआ। इतने दिनों से मैं एक भूल का बोझ लादे फिर रही थी। उतर गया। मेरी भी जान छूटी।'

'भूल का बोझ कैसा ?' असीमा की उत्सुकता जागी।

अपनी बातों की लय का विस्तार करती हुई नन्दा कहती गई, 'क्या बताऊँ भाभी, किस तड़पन में जी रही थी मैं। यही ख्याल मुझे हर पल सालता—यह क्या हो गया मुझे ? इतने सालों के बाद यह क्या पागलपन मेरा ? कैसा मोह है

यह ? सारा मामला तो मैं खुद ही कब चुकता कर आई हूँ। अब बुढ़ापे में उसकी लाश क्या ढोना ? कैसा पागलपन है यह ?'

क्षण भर चुप रह कर वह फिर बोली, 'तुमसे कुछ भी न छिपाऊँगी भाभी। इसमें एक न जाने क्या, न जाने कैसा सुख का स्वाद था, तृप्ति थी। अपने से मैं कहती, इस जीवन में तो मैंने कुछ भी न पाया, जो मिला था उसे भी न लिया। अगर कुछ थोड़ा-सा अपने-आप-ही मेरे राह आ गया हो तो उसे भाग्य का दान समझना है। भगवान है। भगवान की दी हुई चीज है। खैर, अब आज तो वे बातें आती ही नहीं। जो कुछ मैंने सोचा था, देखा गया वह सारा ही झूठ हैं, गलत हैं। उठते-बैठते जो अस्थिरता मुझे साल रही थी आज मुझे उससे मुक्ति मिली। बेफिक्र हो गई मैं। तुम्हारे लिये चाय मँगवाऊँ भाभी ?'

उठने लगी थी। असीमा ने कहा, 'चाय तो मैं अभी-अभी पीकर आ रही हूँ। बैठो तुम !' इतना कह कर वह खुद ही उठ कर नन्दा के पास जा बैठी। उसकी पीठ पर हाथ फेरती हुई बोली, 'क्या हो गया है तुम्हें ? बताओगी मुझे ?'

सोच में डूबी थी नन्दा। बोली नहीं। उसके और पास खिसक कर बोली, 'नन्दा तुम्हें मैं आज से नहीं जानती। मुझे मालूम है तुम अपने में एक बहुत बड़ी चोट छिपाये हो। तुम्हें देख कर ही मैं समझती हूँ, वैसे तुम बेशक छिपाने की बड़ी कोशिश करती हो। उसे जानने का बहुत मन होता है मेरा। फिर मैं सोचती हूँ मैं तो उसकी बड़ी बहन के समान हूँ, और वह अगर बताना नहीं चाहती तो ठीक ही है —'

वाक्य पूरा भी न हो पाया था कि नन्दा ने तुम्हारी भाभी का एक हाथ अपने दोनों हाथों में थाम कर कहा, 'बड़ी बहन के समान नहीं, भाभी, तुम्हें मैं अपनी बड़ी बहन ही मानती हूँ। आज मैं तुमसे कुछ भी न छिपाऊँगी। यह बोझ अब मुझसे ढोया नहीं जाता। मुझे लग रहा है कि अब मेरा दम टूट जायेगा। बताऊँगी, सारी बात मैं तुम्हें आज ही बताऊँगी। सा— री।'

यहाँ स्मरजीत बाबू रुक गये। आँखें बन्द किये कुछ देर चुपचाप पड़े रहे। इस दरमियान में शायद वे नन्दा की कहानी का, जिसे उन्होंने अपने पत्नी से सुनी थी, सिंहावलोकन करते रहे। फिर वे बोले, 'अगर आज, यहाँ, इस समय तुम्हारी भाभी होतीं तो बहुत अच्छा होता। उनसे जैसी सुन पाते क्या मैं वैसा सुना पाऊँगा ? यह तो मात्र कहानी नहीं, घटनाओं को क्रमबद्ध करने की चेष्टा नहीं, उसके साथ एक वस्तु और है—अनुभव, टु-फील। वही तो असल चीज है। मैं सोच रहा था—'

टोक कर मृगांक ने कहा, 'भाई साहब, अब चिन्ता न करें। अब तक जो सुना और जो समझा मैंने, उससे मैं इतना तो समझ ही गया हूँ कि भाभी के न होने पर भी यहाँ उस असल वस्तु की कोई कमी नहीं है।'

हँस पड़े स्मरजीत बाबू। फिर जहाँ रुक गये थे वहीं लौट चले। नन्दा के जीवन का प्रथम अध्याय, जहाँ से कहानी की शुरुआत है वहीं लौट गये वे। पहले उन्होंने सोचा था कि घटनाओं को एक दूसरे के साथ क्रम से जोड़ते जायेंगे, जिस क्रम से असीमा ने उन्हें बताया था। पर कार्यतः देखा गया तो कुछ और ही हो गया। नन्दा ने जो कुछ बताया था, कहानी उसी सीमा तक सीमित न रही। जो उसने नहीं कहा, कह न सकी, लेकिन जो कुछ उसके सामने या आस-पास हुई होगी जिसका हम अनुमान ही लगा सकते हैं, वैसे कुछ तथ्य भी स्मरजीत ने जोड़ दिया। उनकी अपनी टीका भी साथ ही रही।

॥ दो ॥

नन्दा के पिता रायसाहब रघुनाथ बनर्जी ढाका अदालत के जाने माने वकील थे। उनके पिता का पेशा भी यही था। पिता के रहते ही पेशे में रघुनाथ के पाँव जम चुके थे। बाद में धीरे-धीरे उनके मुवक्किल बढ़ते गये। दो पीढ़ी वकालत करने से प्राय ऐसा होते देखा जाता है। पिता की प्रतिष्ठा तो रहती ही है उस पर आ जमती है पुत्र की प्रतिपत्ति।

इस्लामपुर में उनकी बहुत बड़ी कोठी थी। पुराने ढंग की। रायसाहब ने उसे अपनी आवश्यकताओं के अनुसार यहाँ वहाँ तुड़वा कर फिर से बनवा लिया था। पूजागृह और उससे लगा हुआ हाल अभी भी है। बारहों महीनों की तेरहों पूजायें नियमित रूप से चल रही हैं। ये बन्दोपाध्याय लोग अपने आचार और आचरण में बड़े पुरातन पन्थी हैं। कट्टर हिन्दू होने की ख्याति-अख्याति, दोनों ही उन्हें मिली थी, उसका रेश अभी भी बाकी है।

रघुनाथ के पिता अत्यन्त नम्र स्वभाव के सीधे सादे जीव थे। प्रतिष्ठा की ऊपरी मंजिल तक बड़ी कड़ी मेहनत से ही पहुँच सके थे। रघुनाथ मगर प्राचुर्य के बीच पले। इसी कारण उनके स्वभाव का गठन पिता से भिन्न था। उनके पीठ पीछे लोग उन्हें दम्भी कहते जरूर थे, मगर यह बात सच न थी। हाँ, यह कहना उचित होगा कि वे बड़े कड़े स्वभाव के थे, और जिस बात को उचित समझते उसे पूरा करके ही रहते। उनके हाव भाव, बात-चीत से यह स्पष्ट पता लगता कि उनकी नीति यही है कि—करना वही होगा जो मेरी राय मे उचित है। उसके अलावा, उससे अन्यथा कुछ हो नहीं सकता। उनकी पत्नी और बच्चे इसे स्वीकार करने को अभ्यस्त हो चुके थे। अच्छा लगे या न लगे, करना वही है जो वे कहते हैं। उनके परिवार का अलिखित कानून यही था कि उनकी विरोधिता मत करो।

मगर सब नियमों का व्यतिक्रम होता है। यहाँ भी था। एक जगह। माँ।

माँ का स्वभाव तो पिता के विपरीत था। वे थी वन्दोपाध्याय परिवार की भूत-पूर्व दबंग गृहिणी। रघुनाथ जब छोटे थे, छोटे क्यों, जब काफी बड़े हो गये थे तब भी माँ से काफी सहमे रहते थे। अभी भी उनकी बड़ी इज्जत करते हैं। माँ की बात, साधारणतया काटते नहीं। मगर वे आजकल शायद ही किसी मामले में दखल देती हों। उम्र अस्सी के करीब है। अक्सर बीमार रहती हैं। रघुनाथ मगर, इतनी व्यस्तता के बावजूद भी, दिन भर में किसी न किसी वक्त कम-से-कम एक बार माँ के पास आते हैं, बैठते हैं, बातचीत करते हैं, हाल-चाल पूछते हैं।

दो भाई और तीन बहनों में नन्दा सबसे छोटी है। जन्म के थोड़े दिनों बाद ही बहुत बीमार हो गई थी। उसका असर उस पर हमेशा बना रहा। उसकी काठी ही दुबली थी। उम्र के अनुसार बढ़ती न थी। वह अपनी उम्र से कुछ कम की ही दिखाई पड़ती। कमजोर तो नहीं, पर नाजुक थी। दादी कहा करतीं, 'मेरे पोते-पोतियाँ सभी अच्छे खासे इन्सान जैसे हैं। यही न जाने कहाँ से सींकिया पहलवान आ गई।'

नन्दा हँसती। कहती, 'दादी आज तुम बेशक मुझे सींकिया पहलवान कह रही हो, मगर देखना एक दिन वह भी आयेगा जिस दिन मैं सचमुच पहलवान कहीं जाऊँगी, जंग जीतूँगी।'

दादी को शायद अपने दिन याद आते। कहती, 'तू ठीक ही कह रही है, और फिर जिन्दगी तो शुरू से आखिर तक जंग ही जंग है।'

कद-काठी की नन्दा चाहे जैसी भी हो, मगर देखने में वह सुन्दर थी। जैसा रंग, वैसा ही नाक-नक्शा और जिस पर तीक्ष्ण मेधा। हर क्लास की हर परीक्षा में सदा प्रथम आती। पढ़ने-लिखने का शौक भी खूब था। उसके और भाई-बहनों में कोई भी ऐसा नहीं। शायद पिता-माता के प्रौढ़ वय की सन्तान होने के कारण ही वह इतनी कुशाग्र बुद्धिशालिनी है। रघुनाथ की इच्छा थी कि नन्दा को बहुत आगे तक पढ़ायें। इधर घर की परम्परा यह है कि कन्या तेरह वर्ष की होने से पहले ही उसे पराये देहरी के पार करें मगर रघुनाथ ने ठान लिया था कि इस बार वे ऐसा न करेंगे। उनके बेटे बुद्धि-विद्या की दृष्टि से साधारण से कुछ अधिक नहीं। किसी तरह पास-वास कर निकल गये थे। छोटा नौकरी करता था, साधारण सरकारी नौकरी। बड़े को अपना जूनियर रखा था। वह भी खास ब्राइट नहीं। ऐसी उम्मीद न थी कि आगे चल कर वह चमकेगा। उनके जीवन का सबसे बड़ा खेद यही था कि नन्दा लड़की है। पत्नी से एक बार कहा भी था कि अगर वह बेटा होती तो मैं उसे बैरिस्टरी पढ़ने विलायत भेजता।

इस विचित्र बात को सुन नन्दा की माँ ने सामने तो कुछ नहीं कहा। कारण, उन्हें मालूम था कि रघुनाथ ने यह बात हँसी-मजाक में नहीं कही है। उन्होंने, अपने मन की गहराइयों में छिपी एक आकांक्षा को प्रकट किया है पत्नी के आगे। मगर रघुनाथ की अनुपस्थिति में इस बात पर बहुत-बहुत नुकता-

की जो हालत है उसमें वे उस धक्के को सम्भाल न सकेंगी। कहीं ऐसा हुआ तो परोक्ष रूप से वे माता की मृत्यु का कारण हो जायेंगे। यह ख्याल उन्हें कचोटता रहा। माँ उनके जीवन में बहुत महत्व रखती हैं।

नन्दा के लिये उन्होंने जिस भविष्य की कल्पना की थी, वह ठहर न सका। वही पुरानी लकीर पर फिर चलना पड़ा। बन्दोपाध्याय परिवार में घटक का आना-जाना एक बार फिर से शुरू हो गया।

समस्या एक और सामने खड़ी थी। इस परिवार की लड़कियाँ जब से गुड्डा-गुड़िया खेलने लायक हो जाती हैं तभी से शादी के सपने देखती हैं। उनके खेलों में 'दूल्हा-दुल्हिन' ही प्रधान पात्र हुआ करते हैं। दस साल की होते-होते वे शादी का इन्तजार करने लगती हैं। उस विशेष शाम के लिये अपने को तैयार करती हैं। बहुत सी रोशनी होगी, बाजे बजेंगे। कई-कई दिन पहले से रिश्तेदार दूर-दूर से आना शुरू करेंगे। घर पर पाँव रखने की जगह न होगी। हो-हल्ला, हँसी-मजाक दिन भर चलता रहेगा। नौटंकी वाले आयेंगे, हलवाई पकवान बनायेंगे। इन सबों के बीच एक शर्मीले शर्माये हुये नये साथी के साथ गठबन्धन कर, मुख पर हँसी और आँखों में आँसू लिये चली जायेंगी पराये घर, जो असल में उसका अपना घर है। अनादि काल से यही उन्होंने देखा है, जाना है, माना है।

इस परिवेश में पल-बढ़ कर भी इस परिवार की छोटी बेटी बोली, 'मैं शादी में नहीं बैठूंगी।'(उन लोगों के इलाके की भाषा में लड़के शादी करते हैं, लड़कियाँ शादी में बैठती हैं।)

पहले उसने माँ से कहा। बात धीरे-धीरे फैली। सबने सुना। बड़े भाई की भौंहें तनीं। 'यह लड़की बहुत बोलने लगी है।' भाभियाँ हँस-हँस कर दुहरी हो गईं। बहनें करीब में ब्याही थीं। सुन कर दौड़ी आईं। उन्होंने डांटा, 'शर्म-हया सब बेच खाई है क्या ?'

माँ लेकिन घबराईं। वे अपनी इस बेटी को खूब पहचानती थीं। बाप पर गई है लड़की। जो बात निकालेगी मुँह से पत्थर की लकीर होकर रह जायेगी वह। दादी बोलीं, 'अच्छा ? ऐसा कहा है उसने ? ऐसा तो सभी कहती हैं। इसका अर्थ तो है मन-मन भावे, मूड़ हिलावे।' और उनके पोपले मुँह पर हँसी छा गई। पिता सुन कर गम्भीर हो गये, बोले कुछ नहीं।

एक जगह कुछ दिनों से बातचीत चल रही थी। वे लड़की देखने आने वाले थे। दिन भी बन गया था। शाम को चार बजे का समय दिया जा चुका है उन्हें, ये लोग मान भी गये हैं। सुबह नन्दा कमरा बन्द किये पढ़ रही थी। किसी ने दरवाजा खटखटाया। बोली, 'कौन ?'

'खोलो, मैं।'

बड़ी भाभी बोल रही थीं। किवाड़ खुलते ही वे अन्दर आकर बोलीं, 'आज स्कूल मत जाना।'

'क्यों ?'

'वे लोग चार बजे से पहले ही आने वाले हैं।'

'कौन लोग ?'

'अरे, वही जो आज तुम्हें देखने आने वाले हैं। असल आदमी नहीं आ रहा है। बड़ों के सामने वह आ भी तो नही सकता। वह बाद मे चोरी से कर दिया जायेगा। चिन्ता न करो। रिश्ते में मंझली बीबी का देवर लगता है। इसका इन्तजाम वही करेंगी।' कह कर भाभी मुस्करा दी।

जरा कठोर स्वर में नन्दा बोली, 'मैंने तो तुम लोगों से पहले ही कह दिया था भाभी, तो यह सब शादी-वादी के बखेड़े में मुझे मत घसीटो।'

'मगर छोटी बीबी, इस बार शादी मेरी नहीं, तुम्हारी होने वाली है, तो फिर इसमें तुम्हें न घसीटूं तो घसीटूं किसे ?'

'जो लोग आ रहे हैं उन्हें मना करवा दो। मैं नौटंकी की 'सखी' जैसी बन-ठन कर उनके सामने जाने से रही।'

'ऐसा पागलपन नही करते बीबी। पिताजी ने खुद उन्हें बुलावा दिया है। और फिर ये लोग बिलकुल बाहरी लोग हैं भी नही। मंझली बीबी के ससुराल वालों के रिश्तेदार हैं। उसका भी ख्याल करो। आज अब मत पढ़ो। उठ कर नहा धो लो। इतने घने बाल हैं तुम्हारे। सूखते-सूखते तो दिल ढल जायेगा। जूड़ा तो उसके बाद ही बनेगा। देखो न आज कैसा बढ़िया सजावट करती हूँ तुम्हारा।'

सिर पर, पीठ पर हाथ फेर कर बड़ी बहू ने छोटी ननद को प्यार किया। जब वह ब्याह के आई थी, नन्दा बहुत छोटी थी। सास अक्सर बीमार रहती। उस कारण नन्दा के पालन-पोषण का भार उस पर ही पड़ा था। नन्दा भी माँ से अधिक भाभी को ही जानती थी, मानती भी थी। वही भाभी आज उसके सामने यह सब कह रही हैं, मिन्नत कर रही हैं। मगर वह न हिली, न डुली, न उसने सिर ही उठाया। बुत बनी बैठी रही।

भाभी फिर कहने लगीं, 'तुम सबसे छोटी हो। तुम्हारी शादी ! हमारे परिवार का अन्तिम उत्सव। दादी अभी जिन्दा हैं। मगर वे अब और कितने दिन रहेंगी ? वे देखेंगी। सोचो तो कितने भाग्य की बात है ? और फिर पिता जी, माँ, तुम्हारे भाइयों बहनों हम सबकी इच्छा—हमारे कितने अरमान-कितनी आशायें—'

'और मेरी इच्छा ? मेरे सपने ? मेरी आशायें ?'

'क्या है तुम्हारी इच्छा ? बोलो ?'

'कितने बार कहूँ भाभी ? मैं शादी मे नही बैठूंगी। बस।'

'क्वारी रह जाओगी जीवन भर ?'

'हाँ, रहूँगी।'

बड़ी बहू चली गई। जाकर सास से बोली, 'मुझसे नहीं हो सकेगा अम्मा।'

'मुँहजली कहती क्या है ?'

'वही पुरानी बात। जनक की प्रतिज्ञा किये बैठी है वह तो। आप एक बार कह कर देखिये।'

'मैं ? मुझे तो फूंक मार कर उड़ा देगी। तुमने उसे मेरी एक भी मानते देखा है कभी ?'

इशारे से बहू को पास बुलाया। इधर उधर देख कर धीरे से बोली, 'वह मरा स्कूल ही सारे झमेले का जड़ है। लिख-पढ़ कर मेरी बेटी पंडित बनने चली है। किताबों का गट्ठर और दो-दो तीन-तीन मेडल लेकर देवी हर साल घर आती हैं। सुनती हूँ बड़े-बड़े साहब लोग अपने हाथों उसे यह सब देते हैं। कुनबे का मुँह रोशन कर रही हैं। अब देखो कैसा रोशन होता है कुनबे का मुँह ! मरे ! जाये भाड़ में ! मेरा क्या ? मेरी सुनता भी कौन है ? दासियों जैसे कोने में पड़ी रहती हूँ, सो रहूँगी।'

बहूरानी को समझते देर न लगी कि सासजी के सारे क्षोभ के लक्ष्य हैं एक विशेष व्यक्ति। ऐसी बातें दबी ही रहतीं हैं। इस समय मौका पाकर भभक उठी हैं। मगर उसका उत्ताप अधिक नहीं। आगे के वाक्यों से वह भी स्पष्ट हो गया। 'आयें वे। बेटी को समझा-बुझा कर राजी कर सकें, ठीक है। नहीं तो जो उचित समझेंगे करेंगे।'

बड़ा बेटा अदालत से जल्दी लौटा। रघुनाथ ने यह हिदायत पहले ही दे रखी थी। आज डिस्ट्रिक्ट जज के इजिलास में उनके एक मुकदमें की पेशी है। हो सकता है उन्हें आने में देर हो जाये। बेटा झटपट लौट कर इधर का सारा इन्तजाम कर रखेगा। माँ और पत्नी को चुपचाप खड़ी देख कर वह भाँप गया कि मामला गड़बड़ है। उसने कहा, 'क्या बात है ? तुम दोनों यहाँ क्यों खड़ी हो ? उधर बाकी सब इन्तजाम तो पक्का है न ?' फिर कलाई पर बँधी घड़ी देख बोला, 'दो तो बज गये। नन्दा को तैयार कितने बजे करोगी ?'

पत्नी ने उत्तर न दिया। माँ बोली, 'जो तैयार होना न चाहे, उसे कोई तैयार कैसे कर सकता है ?'

'मतलब ?'

'तुम्हारी बहन ने जिद पकड़ रखी है कि जो लोग उसे देखने आ रहे हैं वह उनके सामने नहीं जायेगी।'

'हाँ ?' चौंक उठा उमानाथ। फिर पत्नी को बोला, 'कुछ करोगी भी या यों कठपुतली सी खड़ी रहोगी ?'

'क्या करूँ मैं ?'

'वाह ! उससे कहोगी नहीं कि नासमझी करने का अवसर यह नहीं है। लोगों को लड़की देखने के लिये बुला लिया गया है और अब वह कहती है कि

सामने नहीं आयेगी। ऐसा भी हुआ है कभी? कहाँ है वह? चलो मैं ही चलता हूँ।'

बड़ी बहू असमंजस में पड़ी। माँ ने साफ़ कहा, 'कुछ होनेहवाने का नहीं। बड़ी बहू ने बहुत-बहुत कहा, बड़ी मिन्नत की। मगर वह मानने वाली नहीं। मेरे ख्याल में जिनकी लड़की है उन्हें आने दो, फिर जो होना होगा, होगा।'

'ठीक है। मुझे तो मालूम था कि ऐसा अनर्थ अवश्य होगा। मारे दुलार के उन्होंने इसे बिल्कुल सर पर चढ़ा लिया है।' बहू ने आँखें तरेर कर पति को मना किया। ऐसी बातें कहना इस घर का रिवाज नहीं। ऐसा कहना किसी के लिये भी मुसीबत का कारण बन सकता है। उमानाथ भी इस बात को जानता है। इसी कारण आगे कुछ न कह वह भुनभुनाता हुआ अपने कमरे में चला गया।

गृहस्वामी जब लौटे, मेहमान आ चुके थे। उमानाथ उनकी सेवा टहल में लगा था। फिर भी अदालत की पोशाक में ही बैठक में आये। वक्त से न पहुँच पाने के कारण माफ़ी माँग जल्दी से अन्दर चले गये। सारे घर पर मनहूसियत छाई है। लड़की देखने का सारा इन्तजाम पूरा है। बस, लड़की नहीं है। अपने पढ़ने का कमरा बन्द किये राम जाने क्या कर रही है।

'पत्नी के मुख से इतना सुनते ही रघुनाथ ने पूछा, 'माँ को पता है?'

'नहीं। आज उनकी तबीयत जरा ढीली है। एक बार पूछा था 'इन्तजाम सब ठीक तो है?' मैंने हाँ कह दिया।'

आश्वस्त हुये रघुनाथ। माँ के कमरे के चौखट पर खड़े होकर देखा आँखें बन्द किये पड़ी हैं। उन्होंने न पुकारा, न अन्दर गये। बेटी के कमरे के सामने पहुँच कर धीरे से धक्का दिया। कोई जवाब नहीं। दोनों किवाड़ों के बीच मुँह रख कर बोले, 'खोल बेटी, मैं हूँ।'

पिता की आवाज सुन कर बेटी धड़धड़ा कर उठी। क्षण भर कुछ सोचा। फिर धीरे से आगे बढ़ कर कुण्डी खोल दी। अन्दर जा रघुनाथ ने फिर कुण्डी चढ़ा दी। अपराधी सा सिर झुकाये नन्दा उनके सामने खड़ी हुई। जैसे ही पिता ने उसके कन्धे पर हाथ रखा वह पिता से लिपट कर रो पड़ी।

उसके खुले हुये केश सारी पीठ पर फैले थे। रघुनाथ सहलाते रहे उन्हें। कुछ देर रो लेने के बाद जब जरा शान्त हुई तब रघुनाथ हँस कर बोले, 'बुद्धू कहीं की। यह तुमसे किसने कहा कि उनके सामने जा बैठते ही ब्याह हो जायेगा?'

'तो फिर वे लोग आये क्यों हैं?'

'मालूम नहीं तुझे? तो फिर सुन।'

पिता के सीने से मुँह उठाया नन्दा ने। पल्ले से आँसू पोंछ सावह नन्दा ने मुँह उठा कर देखा उन्हें। रघुनाथ बोले, 'तेरी मझली दीदी के दूर के रिश्ते के

ससुर लगते हैं। वैसे हमारे भी रिश्तेदार हैं। सबसे बड़ी बात है कि वे मेरे बहुत पुराने मुवक्किल हैं, बहुत पुरानी है उनकी मेरी जान-पहचान। एक-दिन कहने लगे। 'आपकी छोटी बेटी को देखना चाहता हूँ।' मैं तो जान गया कि अपने लड़के के लिये ही देखना चाह रहे हैं, मगर मैं उनके मुँह पर नहीं कह सकता था क्या ? एक तो रिश्तेदार, और फिर बूढ़े आदमी। देखना चाहते हैं, देखें। अगर शादी की बात उठायेंगे, तो जो मुझे कहना होगा, उस समय कहूँगा। वे आये हैं। साथ तमाम नाते-रिश्तेदार भी हैं। ऐसे मौके पर अगर तू नहीं जाती वहाँ—'

नन्दा ने बात खत्म भी न होने दी। बोल पड़ी, 'मैं जाती हूँ पिताजी।'

'तो फिर बेटा, देर मत कर। बड़ी देर से राह देख रहे हैं वे।'

जूड़ा बनाने का समय नहीं था। जरूरत भी न थी। लड़के वालों ने कहलाया था कि कन्या को वे खुले-बाल ही देखना चाहते हैं। बड़ी बहू ने झटपट उसे एक बढ़िया साड़ी और दो चार जेवर पहनाये, मुख पर हलका-सा मेकअप कर उसे तैयार किया। नन्दा ने एक बार भी मना न किया। बाकी लोग जो भी सोचें, वह तो जानती है कि वह उनके सामने पसन्द की जाने के ख्याल से नहीं जा रही है, वह तो इसलिये जा रही है कि पिताजी ने उन्हें निमंत्रण दिया है, उनका दिया वचन खाली न जाये। पिताजी की इज्जत पर बट्टा लगने नहीं दे सकती वह।

शान्त होकर, शील और विनय से वह उनके सारे प्रश्नों के उत्तर देती रही। उस दल में एक नवयुवक थे, शायद वर के मित्र। उनके प्रतिनिधि बन कर आये थे शायद। वे सीधा-सपाट न देख कनखियों से देखते रहे। उन्होंने दो एक बड़े मूर्खतापूर्ण सवाल किये, और सवाल करते समय खुद ही पसीना-पसीना हो गये। उनकी हालत देख नन्दा को हँसी भी आ रही थी, गुस्सा भी। मगर उसने अपने को खूब रोका-कुछ भी प्रकट होने न दिया। सभी प्रश्नों के उत्तर जैसे हुआ, देती रही।

कन्या सुन्दर है, बुद्धिमती है। शान्त स्वभाव की भी है। पर, आयु के हिसाब से कद-काठी की छोटी है। उन लोगों के साथ एक डाक्टर साहब भी थे। उन्होंने तीर चलाया (तब नन्दा अन्दर वापस जा चुकी थी), 'जरा अण्डर डेवेलप्ड मालूम होती है, किसी किस्म की बीमारी तो नहीं है इसे ? 'रघुनाथ को उनका यह कहना अच्छा न लगा। फिर भी हँस कर बोले, 'कभी-कभार सर्दी-जुकाम, साथ में थोड़ा बुखार हो जाया करता है। कभी एक-आध बार पेट की गड़बड़ी भी हुई है। जैसे सबके होता है। इसके अलावा तो कभी बीमार नहीं हुई। डाक्टर गुनेन सेन हमारे परिवार के डाक्टर हैं। नाम उनका सुना होगा आपने। अक्सर आते हैं। इसका इलाज भी वे ही करते हैं। उन्होंने तो कभी कुछ नहीं कहा।'

पात्र के पिता ने कहा, 'जरूरी नही कि सभी मोटे-तगडे हों। जिसका जैसा कान्सटिट्यूशन। मेरा लड़का भी दुबला-पतला है। उसकी आयु बीस वर्ष तीन महीने है। दोनों की जोडी खूब फबेगी। यानी की यहीं बैठे-बिठाये उन्होंने सूचित कर दिया की लड़की उन्हे पसन्द है। उन्होंने रघुनाथ बाबू से अनुरोध किया कि वे जाकर लडका देख आये। रघुनाथ राजी हो गए। मगर तारीख पक्की न कर सके। उन्होंने कहा कि कामकाज की हालत ध्यान में रख कर वे पत्र द्वारा शीघ्र ही सूचित करेंगे कि वे कब जा सकेंगे।

घर पर छाई मनहूसियत के बादल फिलहाल छँट गये। लोगों ने फिर चैन की साँस ली। उस दिन नन्दा और उसके पिता मे क्या बातचीत हुई, इसका किसी को पता न लगा। मगर, सब इस विषय पर निस्सन्देह हो गये कि उसने 'शादी में नहीं बैठूँगी' वाली सिरफिरी जिद जो पकड़ रखी थी, वह जैसे भी हो, खत्म हो गयी है। बस, सब खुश हो गये। 'नन्द रानी' तो सबकी आँखों का तारा है। वह अपनी जगह पर लौट आई। अब तो लाड़-दुलार कुछ ज्यादा ही होने लगा।

ऐसा ही होता है। गरीब परिवारों में ही नही, खुशहाल परिवारों में भी बेटी का कोई खास ख्याल नहीं रखा जाता। सबकी दृष्टि की आड में, किसी हद तक अनादृत और अवहेलित, बढ़ती रहती है वह। फिर जब उसकी शादी की बातचीत चलने लगती है, और खास कर जब पक्की हो जाती है तब, माता-पिता, भाई-बहन, रिश्तेदार-बिरादर, सबकी प्रसन्न दृष्टि उस पर न्यस्त होती है। ऐसा लगता है कि वह रातों-रात और कोई हो गई है। जो सहेलियाँ शायद ही कभी आतीं, खास मेल-जोल भी न रखती वे भी उसे घेरे रहती। जिन के साथ मजाक का रिश्ता है, दादी, नानी, भाभी, नाना, बहनोई सब उसे धर-पकड छेड़खानी करने में मशगूल हो जाते।

नन्दा तो शुरू से ही बहुत प्यार, दुलार, स्नेह, ममता पाती आई है। अब तो वह इस विशाल बन्दोपाध्याय परिवार के आकर्षण का केन्द्र-बिन्दु हो गई।

छोटे भैया, छोटी भाभी बाहर रहते हैं। नन्दा की शादी है कब, कहाँ, क्या हालचाल है, इन सबो की पूरी जानकारी मिलने के पहले ही एक दिन यकायक आ धमके। उन्होंने भी इस बार नन्दा को नई दृष्टि से देखा। गाडी से उतरते ही छोटी बहू उसके पास भागती आई। उस समय नन्दा पड रही थी। हाथ पकड़ उसे घसीटा। ठुड्डी पर हाथ रखकर बोली 'तो बीबी, शादी होने वाली है? आखिर यह तो बताओ कि मुँह ऐसा कुप्पा सा काहे को बनाई हो? देर हो रही है, इसलिये तो नही? अब तो हुआ ही चाहता है। चन्द दिन जरा धीरज धरो, रानी।'

भाभी का यह चुहल नन्दा को अच्छा नहीं लग रहा था। नाराजगी से उसने

उनका हाथ झटक दिया। भाभी ने सोचा, 'नादान है, शर्मा गई होगी।' हँसती हुई चली गईं। सास के पैर छूकर पहले ही बोली, 'अम्मा, बड़ी बीबी, मँझली बीबी के ब्याह में उनका साज-सिंगार बड़ी दीदी ने किया था। मैं पहले से कहे देती हूँ, नन्दा को मगर मैं सजाऊँगी।'

बड़ी बहू अगल-बगल ही कहीं थी। बढ़ कर बोली, 'क्या कहने सजाने वाली के! अरे, पहले खुद जरा सजना-सँवरना तो सीखो। यह कैसा जूड़ा बना रखा है तुमने।'

जूड़े पर हाथ रखती छोटी बोली, 'क्यों क्या खराबी है मेरे जूड़े में ?'

उसने बात नरमाई से कही। वह खूब जानती है कि इन बातों में वह महा अनाड़ी है और जेठानी पक्की उस्तादनी। विक्रमपुर की लड़की है वह। दस बारह किस्म का तो वह जूड़ा ही बनाना जानती है। रिश्तेदारी और अड़ोस-पड़ोस में जहाँ जितनी शादियाँ होती हैं, उसमें शादी-सुहागरात में कन्या को सजाने का सारा उत्तरदायित्व करीब-करीब उसे ही सम्हालना पड़ता है। फिर भी छोटी अपना हक छोड़ने को तैयार न थी। पर वह तो बस हठ था उसका। उसने बहुत जोर भी न दिया। सास मगर उसके मन की बात समझ गईं। बड़े स्नेह से वे बोलीं, 'अच्छा तो है, तुम्हीं करना। बड़ी बहू बता देगी। उस दिन उसे इतना काम रहेगा कि इस काम के लिये तो वह बैठ भी न सकेगी। मेरे शरीर का हाल तो देख ही रही हो। इधर से उधर करवट लेने में ही दिन ढल जाता है। सारा काम-काज, बुलाना-बताना तो उसे ही करना है। बड़ी होने के बड़े झमेले हैं बेटी। खैर, अब तुम मुँह-हाथ धो, कुछ खाओ। रमा कहाँ गया ?' कहती हुई वे झटपट, यानी उनके मोटे शरीर में जितना झटपट संभव है उठ कर रमानाथ से मिलने चल पड़ीं।

'उम्र में नहीं मगर स्वभाव में छोटी बहू का अभी बहुत बचपना है। चंचल, हँसमुख, सदा चहकने वाली। सास के जाते ही जेठानी से लिपट कर बोली, 'हार गई न ? अब लाओ खिलाओ मुझे सेर भर मिठाई।'

'मर जाऊँ मैं! जीत तू गई और मैं मिठाई खिलाऊँ ?'

'मैं तो जरूर खिलाऊँगी। इतनी बड़ी जीत हुई मेरी। अभी तुम खिलाओ।'

'क्यों भला ?'

छोटी ने बड़े वजनदार ढंग से कहा, 'क्योंकि मैं तुम्हारी गेस्ट हूँ।'

लिखी-पढ़ी तो वह थी नहीं। मगर, बाहर रहते-रहते उसने अंग्रेजी के ऐसे दो-चार शब्द सीख रखे थे, जिन्हें मौसम-बे-मौसम वह यहाँ वहाँ चला देती।

बड़ी ने पूछा, 'वह कौन होता है ?'

'गेस्ट का मतलब नहीं जानतीं ? मेहमान, मेहमान।'

'अरी मेरी मेहमान री! जरा जल्दी से नहा कर चौके में चल। तेरा मेह-

मानपन वही निकलेगा। मुझे अभी मरने का भी फुर्सत नहीं।'

लडके के पिता स्वयं आकर लड़की पसन्द कर गये हैं। उधर लड़का भी, मँझली बेटी से जितना पता चला है, पसन्द के काबिल है। बस एक बार जाकर देखना भर है। और-और बातें भी पसन्द लायक ही हैं। जाना हुआ घर है। अच्छा कुल, अच्छी हालत। लोग भी बहुत अच्छे हैं। और फिर, जो बात सब से बड़ी है, बिना झमेले वाली गृहस्थी है। जैसे लड़की पढने मे तेज है, लडका भी बी० ए० (ऑनर्स) है। इस कारण, एकमात्र गृहस्वामी को छोड़ (उनकी मति-बुद्धि का पता तो ईश्वर को भी नहीं) और सबको यह रिश्ता बहुत पसन्द ही नहीं, पूरा विश्वास था कि यह शादी जरूर होगी।

नन्दा की बात का किसी को ख्याल न था। उसने जब आखिर तक कोई फसाद न किया, रानी-बेटी-सी जाकर लडके वालों के सामने बैठी उनके सारे प्रश्नो के उत्तर दिये, तब और चिन्ता की क्या बात है? शुरू में उसने जो कुछ कहा था, किया था, वह तो उसकी नादानी है। उस पर जो भवानी सवार हुई थी वह प्रस्थान कर गई हैं।

बाहर कुछ न दीखते हुये भी घर के अन्दर आसन्न विवाह की तैयारियाँ होने लगी थी। छोटी बहू के आने-जाने से उसमें ज्वार आया। घर के नौकर-चाकरो ने भी अपना सहयोग दिया।

मगर वे, वे जो सबसे असल व्यक्ति हैं, वे तो मौन साधे बैठे है। इतनी बडी बात होने चली है मगर वे किसी मे कुछ थोड़ा सा भाग भी नही ले रहे हैं। मानो उनके करने को कुछ है ही नही। एकदम दम साधे बैठे हैं। माना कि उनके पास बहुत काम है। मुवक्किलो की भीड तो सुबह से लग जाती है। दस बजे जैसे-तैसे नहा-खाकर अदालत चले जाते हैं। लौटते-लौटते दिन ढल जाता है। फिर वही मुवक्किलों का हुजूम। रात के दस बजे से पहले फुर्सत नहीं। बीच मे इजलास से लौटने पर नाश्ते के समय थोड़ी फुर्सत होती है। पत्नी के साथ बातचीत करने का यही समय है। गृहस्थी की वह बातें जिन पर उनकी सलाह लेना बहुत जरूरी है, इसी समय होती है। एक दिन, इसी मौके पर, इधर-उधर की बातों के बीच, इस बडी जरूरी बात को भी छेड़ दिया हेमांगिनी ने। ज्यादा कुछ नही, बस लडका देख आने को बात पति को याद दिलाई। उस समय रघुनाथ एक सन्देश मुँह में रख रहे थे। उसी को चबाते हुये बोले, 'याद है मुझे, जरा फुर्सत लगने ही जाऊँगा।'

इस बात के बाद कोई क्या कहता? बात किसी और की होती तो शायद इसके उपरान्त भी कुछ कहा जा सकता। दूसरे से यह कहा जा सकता था, 'वे लोग जो नन्दा को देख गये, उसे महीने भर से ज्यादा हो गया। समधी ने खुद बार-बार आने को कहा था। इतने दिनो से जो नहीं गये, वे लोग यह भी तो

सोच सकते हैं कि उनसे रिश्ता करने की हमारी इच्छा नहीं है। वे लड़के की शादी जल्दी करना चाहते हैं। लड़के को देख कर साफ-साफ 'हाँ' या 'ना' जो कहना है कह दो।' इसके बाद यह भी कहा जा सकता था, 'माँ की तबीयत आजकल बिल्कुल ठीक नहीं रहती। उन्होंने सुन लिया है कि लड़की वालों ने लड़की पसन्द कर ली है। उस दिन से रोज ही तकाजा कर रही हैं कि लड़का देखने का क्या हुआ।' उन्हें इधर-उधर के बहाने बना कर शान्त रखा है।'

-ये सारी बातें थीं कहने को। मगर कही न गयीं। सारी की सारी मन में ही रह गईं। हेमांगिनी को याद नहीं कि इतने लम्बे विवाहित जीवन में उन्होंने पति से इतनी सारी बातें एक साथ कभी कही हों। उन्हें आदत ही नहीं है। इस कारण उस दिन भी चुप ही रह गईं।

रघुनाथ पहले जैसे रोज माँ के पास जाया करते, वैसा अब भी करते हैं। दो-चार बातें भी होती हैं। 'कैसी तबीयत है आज ?' इसके जवाब में माँ कभी कहतीं 'ठीक हूँ' कभी कहतीं, 'अब तो मर जाऊँ तो जानूँ जी गई।'

किसी कारणवश, या अधिकतर बिना किसी कारण के, जब उनका किसी पर क्रोध या रोष होता तो वे उसे इस प्रकार प्रकट करतीं, 'मेरे जीते रहने का तो यही अंजाम है कि दूसरों को कष्ट होता रहे। इधर यमराज भी अन्धे हो गये हैं।' किसी-किसी दिन भाषा जरा परिवर्तित होती, 'देख तो रहे हो खूब बढ़िया हूँ। खाती-पीती आराम करती हूँ। मौत क्या इतनी आसानी से आती है ? ऐसी बड़भागी होती मैं तो फिर चिन्ता किस बात की थी ?' वगैरह वगैरह।

रघुनाथ इन आक्षेपों का कोई उत्तर नहीं देते। उनकी पत्नी या पुत्रवधू जो भी सामने होती, उन्हीं से पूछ ताछ करते, दवा वगैरह मंगाई गई है कि नहीं, दी गई है कि नहीं। माँ डाक्टरी इलाज करती नहीं। शहर के प्रसिद्ध कविराज गिरीश चन्द्र सेन रोज एक बार आकर उन्हें देख जाते हैं। दवा तो नाम मात्र। किसी वटिका का चूर्ण या रसायन। मगर अनुपान के बड़े-बड़े झमेले हैं। कूटना, पीसना, छानना नहीं तो खरल में रख शहद से घोंटना। खौलाने उबालने का काम भी कभी सिलसिलेवार चल निकलता है। सवा सेर पानी को सुखा कर आधा छटाक करना होगा। इन कामों के लिए एक दिन-रात की दाई है, बैसा की माँ। बहुत पुरानी है। अकेली, बेवा। बूढ़ी माँ की सारी सेवा करती है और जी जान लगा कर करती है।

पत्नी के संग बात होने के चार पाँच दिन बाद जब रघुनाथ माँ से मिलने गये तो देखते क्या हैं कि वे दीवाल की तरफ मुँह किये लेटी हैं। माँ सो रही होंगी, सोच वे वापस चले जा रहे थे। मगर वे झट से इधर घूम कर बिफर उठीं, 'तूने सोचा क्या है रे ?'

रघुनाथ ने कोई उत्तर न दिया। यह हो गई भूमिका। असल इल्जाम का

इन्तजार करते रहे वे। वह भी सामने आ गया। 'लड़की की शादी करेगा या नहीं करेगा ?'

'जरूर करूँगा माँ।'

'तो फिर लड़का देखने जाता क्यों नहीं ?'

खड़े थे रघुनाथ, बैठ गये। कुछ देर सर झुकाये सोचते रहे। फिर बोले, 'आज ही कचहरी से लौट कर बताने को सोचा था मैंने। खैर, तुमने बात जब शुरू की तब अभी बताता हूँ। यह शादी नहीं होगी।'

'नहीं होगी ? क्यों ?' उठ कर माँ बैठने लगी।

'तुम मत उठो माँ। शान्त होकर सुनो। शादी नहीं होगी इसका कारण यह है कि मैं जैसा चाह रहा हूँ यह रिश्ता वैसा नहीं।'

'क्यों ? क्या खराबी है उनमें ?'

'खराबी की बात मैं कब कह रहा हूँ ? रिश्ता वैसे अच्छा है, मगर, मैं जैसा चाह रहा हूँ, वैसा नहीं।'

'मतलब यह कि तुम्हारी छोटी बेटी का ब्याह देखना मेरी तकदीर में नहीं बदा !

बेटे की तरफ से घूम वे बहू की तरफ मुड़ीं। बहू बिस्तर की दूसरी छोर पर खड़ी थी। माथे तक घूँघट निकाले। 'शादी तो तुम लोग करोगे। बस मैं ही न देख पाऊँगी।' कहते-कहते भरभरा कर रो दी। बहू की आँखें भी गीली हो गईं। रघुनाथ की तरफ देख कुछ कहने को हुईं, पर बोली नहीं। सास के सामने पति से बात नहीं किया जाता। इस परिवार में ऐसा कभी नहीं हुआ है। इस अत्यन्त उत्तेजक क्षण में वे उस नियम को विस्मृत होने चली थी। याद आते ही रुक गईं। मगर दृष्टि पति पर ही निबद्ध रखी। रघुनाथ अगर एक बार पत्नी की तरफ देखते तो उन्हें उनकी दृष्टि में रोष ही नहीं, प्रबल तिरस्कार-भी दिखाई पड़ता। यह क्या कर रहे हो तुम ? माँ हैं तुम्हारी ! जीवन की अन्तिम सीढ़ी पर खड़ी हैं, प्राण गले में अटके हैं। किसी भी वक्त निकल जायेंगे। इतना कुछ देख कर भी तुम उनकी एकमात्र तथा अन्तिम इच्छा पूरी करने से हिचक रहे हो ? क्या तुम चाहो तो इसे पूरी कर नहीं सकते ?'

पत्नी की तरफ देखे बिना ही रघुनाथ ने सब कुछ देखा, सब कुछ समझ गये। बात यह है कि इस मामले में एक भी बात ऐसी नहीं जिसे वे जानते न हों, जिसे वे हर पल अनुभव न करते हों।

माँ की रोगशय्या के पास कुछ देर और गाल पर हाथ रखे बैठे रहे रघुनाथ। माँ तब रो नहीं रही थी। एक बार फिर दीवाल की ओर मुँह किये लेटी थीं। रघुनाथ ने एक बार उधर दृष्टि फिराई फिर तेज कदमों से कमरे के बाहर हो गये।

॥ तीन ॥

साधुचरण घोषाल रघुनाथ के मुहर्रिर हैं। आये थे उनके पिता के जमाने में। उन्हीं ने काम-काज सिखाया था। बड़े सीधे आदमी थे। बड़ी मेहनत करते थे। इस बात का हर समय ख्याल रखते की मुवक्किल का काम पूरा-पूरा बने। रुपये पैसों के मामलों में मगर ज्यादती न कर पाते। बड़ी लज्जा आती थी उन्हें, जिस बोध का, उनके समव्यवसायी—सब तो नहीं, मगर अधिकतर सब से पहले तिलांजली दे देते। इसलिये देखा जाता कि अधिकतर मुवक्किल वकील साहब के पाँव छूने में जितनी तत्परता दिखाते उतनी तत्परता उनको मेहनताना देने में न दिखाते।

साधुचरण कुछ दिन तो चुपचाप देखते रहे। फिर मालिक से कहने शुरू किया, 'इस आदमी ने दस रुपये कम दिये हैं, फलां हमें ठग रहा है, धमकाने के मामले में आपको थोड़ी कड़ाई करनी होगी।' ऐसा नहीं कि मालिक समझते न हों। वे भी कभी-कभी सजग होते,'हाँ साधु, तुम ठीक कह रहे हो। अब आगे से ये लोग जब तक पूरा पैसा न देंगे हम किसी को छोड़ेंगे नहीं।' दो-चार दिन जरा कड़ाई बरतते। पहले कह देते, इतना देना होगा, और लेकर ही मानते। फिर जैसा का वैसा हो जाता। कोई भी आकर पाँव पकड़ने लगता तो उसे छूट मिल जाती। कभी-कभी तो वे खुद ही किसी मुवक्किल की तरफदारी कर कहते, 'यह बेचारा शायद इससे ज्यादा न दे सकेगा साधु। उसके तो और भी बहुत सारे खर्च हैं।' घोषाल तर्क करते, 'अगर वह उधर इतना खर्च कर सकता है तो इधर क्यों नहीं करेगा? और लोग जब नहीं छोड़ते, हम ही क्यों छोड़ दें?' मालिक के मुँह पर तो खैर वे इतनी सारी बात न कहते, मगर हाव-भाव से प्रकट जरूर कर देते।

धीरे-धीरे तब तक घोषाल वकालत की मोटी-महीन बातें काफी समझ चुके थे, उसकी गलियाँ-सड़कें भी पहचान गये थे, रुपये-पैसों का सारा मामला उन्हीं के हाथों चला गया था। कब, किससे, कितना लेना है, किसने कितना दिया, और कितना देना बाकी है, इसका हिसाब भी वही रखते। पेमेन्ट यानी अदायेगी होती वकील साहब के सामने। क्रमशः उन्होंने यह भार भी साधुचरण पर न्यस्त कर दिया। देकर बेफिक्र हुये। बहुत दिनों से उसे देख परख, ठोंक बजा कर, और अनुभवी वकील की पारखी दृष्टि से देख वे इस मामले में निस्सन्देह

हो गये थे कि साधु मानिक के मामले मे तो नही ही, मुवक्किलों के मामलों में भी असाधु रास्ते अपनाने वाला नहीं। आदमी सच्चा है। जैसे एक ओर अपनी जायज कमाई का एक कौड़ी नही छोड़ने वाला वैसे ही दूसरी ओर नाजायज तरीके मे वह एक कौड़ी ज्यादा नही लेगा। यह बात जरूर है कि यह बात कही जाती थी कि रुपये वसूलने के मामलों पर साधुचरण मुवक्किलों को परेशान करता है। लेकिन, बात ऐसी नही, वह मुवक्किलों को ठीक परेशान नहीं करता मगर रुपये वसूलने के लिए वह जो रास्ते अपनाते वे हर समय सभ्य या शालीन नहीं होते।

एक दिन एक मुवक्किल आया। किसी दूर गाँव का रहने वाला था। गाँव का नाम साधुचरण का सुना हुआ था। उसके दफ्तर से उसी गाँव के कई और लोग मुकदमा करवा गये है। उसी बात को सुन कर इस आदमी का आग्रह बढ़ा था। जमीन गिरवी रख किसी को कर्ज दिया था उसने। ब्याज काफी ऊँचा था। लेने वाला बेचारा कई सालों से उस ब्याज को भरता आ रहा था। असल का एक पैसा अभी तक न दे पाया था। इधर उसके उधारनामे की तारीख पूरी हो गयी थी। वह इस उम्मीद से आया था कि अब मुकदमा दायर करने से वह उसकी जमीन को हथिया लेगा।

उस समय वकील साहब अदालत गये हुये थे। साधुचरण इन मामलो को सब समझता था। कागजात देख कर बात-चीत शुरू की। फीस का अंक सुन विचारे मुवक्किल को तो मूर्छा ही आ गई। हाथ जोड़ कर रोना-रोना हो कर बोला, 'गरीब मनई हई माई-बाप, तनी-तूनी कम कई द।'

शक्ल सूरत से वह बेशक गरीब लग रहा था। हर दिन शायद पेट भर खाता भी न हो। कमर पर मोटी, मैली, चरगजी धोती। कमीज गले के पास फटी, बटन तो खैर थे ही नही। हजामत कई दिनों से नही बनाई गई थी। नगे पाँव। मगर, साधुचरण इनकी नस पहचानता है। बाहर से इतने दरिद्र लगते हैं तो क्या, भीतर खूब मालदार होते हैं। इनके घरों के फर्श खोदने पर मुँह-बन्द हाँडियाँ निकलेंगी, जिन्हे खोलने पर नोटों की बण्डलें निकलेंगी। इन दिनों लोगों के घरों में पटसन है इसलिये ब्याज की अदायेगी भी खूब हो रही होगी।

साधुचरण अपने हठ से राई-रत्ती हटने वला नही। मुवक्किल इसका आधा देने पर अड़ा था, और उतना ही उसने अपने फटेहाल कमीज की जेब से निकाल मेज पर रख दिया। साधु ने उधर मुड कर देखा तक नहीं। कुछ समय तक मुवक्किल इन्तजार करता रहा। फिर मुँह फुला, अन्टी ढीली कर धोती का चुनट गोद पर रख बोला, 'ल, जौन रहा तौन भाड़-झूड के तोहरे समनवा धै दीहिन। इहई लै के कौनो सूरत से हमार कमवा कइ द मुन्शी बाबू।'

उसकी आँखो से अनुनय छलक रहा था। मगर घोषाल मे कोई भावान्तर नही। वह अपने कागजात उलटता-पुलटता रहा। उस आदमी ने यकायक झुक-

कर मेज के नीचे साधुचरण के पाँव पकड़ लिये और कहने लगा, 'तोहरे गोड़ गिरी मुन्शी बाबू, कसम धराये ल, हमरे लगे अब कुछो नहीं न। गंगा माई के कसम, बस डुड़ठे पइसा धरे हई, नदी पार जाये के।'

पाँव छुड़वाने की भी कोशिश न की साधुचरण ने। बैठे बैठे गरजा, 'निकल आओ।' डरते-डरते वह आदमी मेज के नीचे से निकल कर उसके सामने आ खड़ा हुआ। हल्की सी मुस्कराहट लिए साधुचरण उसे कुछ देर देखता रहा। फिर धीरे से बोला, 'धोती का कछौटा देखूं?'

इतने भयंकर अपमानसूचक प्रस्ताव पर भी उस मुवक्किल ने न गुस्सा दिखाया न प्रतिवाद किया। केवल जरा दुःखी होकर बोला, 'क मालिक, तू हमरे बतिया पर विसवास न कीहँओ? धोतिया में रुपिया चोराये के हम तोंहसे झूठ बोलत हई?'

इस बात की साधुचरण ने तनिक भी परवाह न की। उसी ढंग से बोला; 'खोलो न एक बार, देखूं। यहाँ तो तुम्हारे मेरे सिवा कोई भी नहीं।'

गुमसुम खड़ा रहा मुवक्किल। न हिला, न डुला। अब साधु उठा। उसके पीछे जाकर खड़ा हो गया। बोला, 'जब तुम खुद खोलना नहीं चाहते तो मैं ही क्यों न खोल कर देख लूं?'

हाथ आगे बढ़ाते ही वह आदमी उछल कर घूम गया और तैश में आकर कछौटे को खींच कर निकाला। बस उसी क्षण वकील साहब ने कमरे में प्रवेश किया। कमरे में होता नाटक देख कर ठिठक गये। ऐसे मौके पर मालिक को सामने देख घोपाल लज्जित हुये। जाकर अपनी कुर्सी पर बैठे। और मुवक्किल ने उसी तैश में कछौटे पर लगी गाँठ खोली। उसमें से, दो तीन तहों में तहाये गन्दे नोटों का तुड़ा-मुड़ा बण्डल खोल उसमें से कुछ नोटें गिन फीस के पूरे रुपये मेज पर रखे।

फिर उसने किसी की तरफ न देखा, न कुछ कहा। धीमे से कमरे से निकल गया। लज्जा का बोध तो आखिर उसमें भी है।

युवक रघुनाथ ने जब अदालत जाना शुरु किया तब साधुचरण उसके पिता के केवल मुहर्रिर अथवा खजांची ही नहीं, गृहस्थी के सारे मामलों में, सारे खर्च सारी खरीदारी में मालिक के बाद ही उनकी जगह थी। उनका, जनाने महल में भी आना जाना था। बूढ़ी माँ, जो उन दिनों घर चलाती थीं, उन्हें अक्सर बुला भेजतीं और रुपये पैसों के मामलों में जो भी कहना होता उन्हीं से कहतीं। उनकी इन जरूरतों को पूरा करना साधु का ही काम था। फिर, फुर्सत से मालिक की अनुमति की मुहर लगवा ली जाती। ऐसे मौके भी आते जब उनकी अनुमति के बिना, यानी कि उनके अज्ञातसार में ही उन्हें बहुत कुछ करना पड़ जाता।

-उम्र में साधु रघुनाथ से बड़े हैं। इस कारण रघुनाथ उन्हें 'घोपाल चाचा' पुकारते हैं और उनकी बड़ी इज्जत भी करते हैं। वकालत का प्रथम पाठ उन्होंने घोपाल चाचा से ही लिया था। जब पाँव कुछ जम गये, तब भी कानूनी तथा दूसरे मामलों में वे घोपाल चाचा से सलाह लेते, उनकी राय पूछते।

बड़े मालिक के चल बसने के बाद रघुनाथ जब पूरी तरह से मालिक बन बैठे और वकालत में, बाप से भी ज्यादा चमक उठे तब घोपाल ने अपने कार्य क्षेत्र की सीमा और धारा में थोड़ी बहुत अदल-बदल कर ली। अपनी वास्तव बुद्धि से वह समझ गये थे कि पिछले मालिक में और इनमें जमीन आसमान का फर्क है। इनका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व है, अपने मतामत हैं, और एक बार जिस सिद्धान्त को अपना लेते हैं उससे फिर डिगते नहीं। वे, अपने को ही नहीं, औरों को चलाने की भी शक्ति रखते हैं। वैसे, और जगह रघुनाथ जितने ही अडिग क्यों न हों, माँ के आगे सर्वदा झुके रहते थे। माँ की हर इच्छा की वे इज्जत करते, और उसे पूरी करने की पूरी कोशिश करते। यह तो खैर, हम अपनी कहानी की शुरुआत में ही बता चुके हैं।

साधुचरण अभी भी रघुनाथ के घोपाल चाचा हैं, मगर अदालत-इजलास के मामलों में उनकी सीमा निर्धारित हो गई है। व्यक्तिगत सम्पर्क में वे अभी तक बन्द्योपाध्याय परिवार के सदस्य हैं, उनके सुख-दुःख, आपद-विपद के साझीदार हैं, उनके कुशल-मंगल से गहरी तौर से जुड़े हुये हैं। इन मामलों में रघुनाथ उन्हें अति विश्वास योग्य सुहृद और शुभानुध्यायी मानते हैं। इस ससार मे हर-एक व्यक्ति किसी न किसी स्थान पर रिक्त है, वंचित है। राय साहब रघुनाथ बनर्जी को भगवान ने बहुत कुछ दिया है, पर एक चीज की उन्हें कमी है। घर और बाहर आनुगत्य तो मिला है, मगर मित्रता कहीं न मिली। देखा जाय तो यही पता चलेगा कि उनके इतने बड़े परिवार में जो उनके सब से निकट और एक-मात्र मित्र हैं वे हैं उनके मुहर्रिर साधुचरण घोपाल।

सबके प्रिय हैं साधुचरण। नाम से उन्हें केवल बूढ़ी माँ ही पुकारती हैं। बाकी लोगों के वे या तो घोपाल चाचा नहीं तो घोपाल बाबा हैं। जिन्हें जो कुछ देना है वे उसे खुले हाथों देते हैं। मालिक के मन की बात तो देवता भी नहीं जानते। इन घोपाल चाचा द्वारा ही उसके विषय में कुछ कुछ पता चलता है। पारिवारिक स्वार्थ, कल्याण और आवश्यकता की ओर दृष्टि रख वे भी उतना ही बताते हैं जितना बताने पर भी मालिक का विश्वास उन पर बना रहेगा।

ऐसी ही एक समाचार देने के लिये वे एक दिन एकान्त में मालिक की पत्नी से मिले। जिस दिन रघुनाथ माँ और पत्नी की तीव्र भर्त्सना ओढ़ कर चुपचाप चले आये (जिसमें एक सख्त था और एक निख) यह उसके कुछ ही दिन बाद की घटना है। घर पर उन दिनों एक भयंकर मनहूसियत फिर से छा गई थी।

किसी के मुख पर हँसी नहीं, वातचीत भी शायद ही कोई करता। काम-धाम की आवश्यकता में जितना बोलना जरूरी होता, इससे ज्यादा एक शब्द भी सुनाई नहीं पड़ता। साधुचरण इस परिवार के ही सदस्य हैं। नन्दा की शादी के मामले में उनका उत्साह, उनकी खुशी किसी से कम नहीं। शुरू में नन्दा ने जो गड़वड़ी मचाई थी, उसे निरा पागलपन या वचपना समझ कर वे चुप थे। कार्यतः देखा भी ऐसा ही गया। वाप के जाकर कहते ही वेटी रानी सजधज कर बैठक में जा पहुँचती। वह लड़की असल में विगड़ैल है। वहुत अधिक दुलार होने से ऐसा होना स्वाभाविक है।

सव कुछ तो ठीक ही ठाक चल रहा था, मगर रघुनाथ वीच में क्यों विगड़ खड़े हुये? ऐसा अच्छा रिश्ता वगैर किसी से कुछ कहे पूछे रघुनाथ ने वापस कर दिया। इस वात ने साधुचरण को चिन्तित ही नहीं किया, उन्हें अत्यन्त दुर्बोध्य भी लगा। पारिवारिक मामलों में रघुनाथ घोपाल काका की सलाह सर्वदा लेते रहते हैं। इतना वड़ा फैसला लेने के पहले उनसे एक वार कह तो सकते थे। एक वार वात तो करते। भले ही उनकी राय न मानते, मगर एक वार उन्हें सूचित तो कर ही सकते थे कि वे ऐसा करने चले हैं। पर उन्होंने कुछ भी कहना ज़रूरी न समझा। इस कारण साधुचरण के मन में क्षोभ का एक सूक्ष्म काँटा चुभता रहा। एक वार सोचा, 'मरे, जाये। जिसकी वेटी है वह जो उचित समझे करे। मैं कौन होता हूँ? इस मामले में मेरे सिर खपाने की ज़रूरत भी क्या है?'

मगर, वड़े लम्वे अर्से से वन्दोपाध्याय परिवार का नमक खा रहे हैं साधुचरण। वड़े मालिक के ज़माने में उन्हें केवल स्नेह और अपनापप ही नहीं मिला है। मिली है उससे भी क़ीमती चीज़—विश्वास। वैपयिक मामलों में भी वे इस परिवार का वहुत ऋणी हैं। एक वकील के मुहर्रिर का प्राप्य कितना होता है? महीने के अन्त में वे उसे खुद ही हिसाव से निकाल मनीआर्डर द्वारा घर भेज देते हैं। पर हिसाव के वाहर जो कुछ मिला है, उसका कोई नियम या हिसाव न उस ज़माने में था, न अव है। वीमारी वेहाली में, दुःख-मुसीवत में, शादी, जनेऊ, अन्नप्रासन में उन्हें जो कुछ मिला, हर वार वह उनकी आशा से अधिक ही रहा है। यह सव आये थे फर्क-फर्क हाथों से, फर्क-फर्क नामों से और फर्क-फर्क तरहों से। 'ये रुपये रख दो साधु।' 'यह साड़ी तुम्हारी वेटी के लिये, यह उसकी माँ के लिये।' 'आपकी वेटी की शादी में पहुँच न पाऊँगा घोपाल चाचा, यहीं से उसे आर्शीर्वाद के साथ ज़रा सा यह दे रहा हूँ।' 'यह आपके लड़के के जनेऊ में हमारी तरफ से नाम मात्र भिक्षा है।' हो सकता है कि इन लोगों के लिये वह सव 'नाम मात्र' या 'ज़रा सा' हो, पर साधुचरण के लिये तो वह वहुत है।

क्या सिर्फ इतना ही? इन सव दानों के पीछे उपलक्ष थे। दान ही थे वे, नाम कुछ और। जिसे स्पष्ट शब्दों में आर्थिक सहायता कहा जाता है, हथेली फैला कर उसे भी कितने ही वार लिया है साधुचरण ने। वहाँ दाता की ओर से

कर्ज शब्द का इस्तेमाल नहीं हुआ है इसलिये कि उनके मर्यादा बोध को चोट न लगे। पर दाता और ग्रहीता दोनों ही जानते हैं कि उस शब्द को केवल 'आड़' में छिपा कर रखा गया है, उन रुपयों का वापस करने का सवाल उठता ही नहीं। इन सब कारणों से क्षोभ का वह सूक्ष्म कांटा साधुचरण के मन में अधिक देर तक चुभ न सका। जिनके संग उनके सम्पर्क इतने गहरे, उनके सिर पर बादल मंडराते देख साधुचरण से चुप न रहा गया। उस दिन कोर्ट से मालिक के साथ एक ही गाड़ी में लौट रहे थे। घोडागाडी। मोटर की तुलना में इस गाड़ी का एक बहुत बड़ा फायदा यह है कि इसमें चालक इतनी दूर रहता है कि बातचीत करने की बड़ी सुविधा होती है। रघुनाथ को एकान्त में पाने की यही एक जगह भी है। अदालत मे और घर पर तो वे हरदम तमाम लोगों से घिरे रहते हैं।

मुकदमों के विषय में दो चार जरूरी बातें कर चुकने के बाद साधुचरण ने नन्दा की शादी का प्रसंग छेड़ दिया। बोले, 'यह रिश्ता नहीं हुआ, यह तो बहुत अच्छा हुआ। मैंने लड़के को देखा है। अपने पिता का पत्र लेकर एक बार हमारे पास आया था। नन्दरानी की जोडी में कुछ फबता नहीं।'

बात दरअसल कुछ और थी। परिवार के और सदस्यों की तरह साधुचरण को भी यह रिश्ता जँचा था, और लड़के को उन्होंने कभी देखा भी नहीं था। *मगर इस मिथ्या भाषण की आवश्यकता थी ताकि मालिक की हाँ में हाँ मिला-*कर उनके मन की थाह पायें। ऐसी ही भूमिका की आवश्यकता थी, और फल भी हाथों-हाथ मिला। विस्मित हो रघुनाथ ने पूछा, 'आपने देखा है उस लड़के को ?'

'बस एक नज़र। तब तो शादी की बातचीत चली भी न थी।'

'आपका विचार है कि वह नन्दा के जोडे का नहीं ?'

'मेरा तो ऐसा ही ख्याल है।'

आश्वस्त हुए रघुनाथ। वे तो इतने दिनों से किसी के समर्थन का सहारा ढूंढ रहे थे। बोले, 'मैं दो एक और बातें सोच कर उधर बढ़ा नहीं। और फिर अगर लड़का ही पसन्द लायक न हो, तो फिर तो कोई बात ही नहीं।'

साधुचरण का दिल धक्-धक् करता रहा। कहीं अगर मालिक उनकी कही हुई बातें जनाने मे कह दें तो वे कहीं के नहीं रह जायेंगे। भरोसा इतना ही है कि रघुनाथ इतने ढीले ज़बान के व्यक्ति नहीं। जो भी हो, अब तो तीर निकल ही गया है, सोचने से फायदा नहीं। देखा जायेगा। अब साधुचरण असल बात पर आये, 'अब तो दूसरा रिश्ता तलाशना होगा।'

'यह बात मैं खुद ही कहने वाला था आपसे। किसी दूसरे घटक को पकड़िये जो अब तक आता था वह किसी काम का नहीं।'

'कल ही देखता हूँ। कमी है क्या घटकों की ?'

उसी शाम, मौका निकाल साधुचरण नन्दा की माँ से मिलने गये । जा, उन्हें यह खुशखबरी सुना आये । बात दो तीन दिनों में कानो कान चारों तरफ फैली । सबने जाना और देखा कि बन्दोपाध्याय भवन में घटकों का आना जाना फिर से शुरू हो गया है । मगर उनके आने से काम क्या बना ? बातचीत, सलाह परामर्श सब एक ही जगह । मालिक का यह हुक्म है । घटकों से उन्होंने यह कह दिया है कि पात्र पक्ष के पूरे हालचाल मालूम कर वे उन्हीं से बात करें, परिवार के और दूसरे किसी से नहीं । उनके आने के लिये भी उन्होंने रात का एक विशेष समय बाँध दिया है । उस समय वहाँ कोई तीसरा नहीं रहता, बस वे और घटक । बातचीत के समय सारे खिड़की दरवाजे बन्द । यह सब रंग-ढंग देख घर के लोग दबी ज़बान से इस पर आलोचना करते और एक दूसरे की शकलें देखते । 'इस घर का सभी विचित्र है ! बेटी का ब्याह करेंगे, घटक रिश्ते लेकर आ रहे हैं, इसमें इतनी लुकाछिपी करने की क्या बात है ?' इस विषय में जानने की इच्छा सबकी होती है । इसी कारण घटक नामधारी व्यक्ति का सर्वत्र आना जाना रहता है । उनकी पहुँच बड़े-बड़े घरों के अन्तःपुर में भी अबाध होती है । रिश्तेदार, बिरादर, अड़ोसी, पड़ोसी सभी उसमें भाग लेते हैं, अपनी राय देते हैं । शादी तो पूरे परिवार का मामला है । घटकों का आना जाना उसी का सूचक है । वहीं से तो सबको अपनी राय देने का मौका मिलता है, हाथ बँटाने का वक्त आता है । हिन्दू परिवारों में इस रीति को सदा से मान्यता मिलती आई है । इस घर में भी अब तक ऐसा ही होता आया था । अबकी क्या हो गया ? घटक आ रहे हैं और गृहस्वामी से गुपचुप गुफ्तगू करके चले जा रहे हैं । वे खुद तो एक शब्द भी मुँह से नहीं निकाल रहे हैं । ऐसी विचित्र बात किसी ने कभी देखी है या सुनी ?

साधुचरण पर दबाव डाला जाने लगा । गृहस्वामिनी ने बुला कर पूछा, 'मामला क्या है घोषाल चाचा ?'

मुँह बिचका कर घोषाल ने कहा 'क्या जानूँ बहूरानी । जैसे ही कुछ जान सकूँगा, आपको अवश्य सूचित करूँगा ।'

उसी रात करीब दस बजे घटक जब वापसी में फाटक के बाहर निकले, तब उन्हें वहाँ साधुचरण मिल गये । घटक से उन्होंने पूछा, 'इतनी रात तक मालिक के साथ क्या मशविरा करते रहे ?'

घटक नाराज था । उसने कहा, 'अब मुझसे नहीं होता भाई साहब । इतने रिश्ते ला रहा हूँ, मगर इन्हें कोई भी पसन्द नहीं ।'

''क्यों ? क्या चाहते हैं साहब ?'

'फिर बताऊँगा', कह कर वह खिसक गया ।

किसी मुस्लिम पर्व के उपलक्ष में उस दिन अदालत की छुट्टी थी । सुबह

उठते ही रघुनाथ ने पत्नी से कहा, 'मुंशीगंज जा रहा हूँ। लौटते शाम हो जायेगी।'

'मुवक्किल का काम है ? तो फिर खा-पीकर जाओ। रसोइये से कहे देती हूँ, झटपट कुछ—'

'नही, मुवक्किल का नही है। घटक एक नया रिश्ता लाया है। उसी मामले मे जा रहा हूँ। खा लूगाँ।'

संग-संग बात घर भर में फैल गई, नन्दा ने भी सुना। उसे यह भी पता था कि इधर फिर से घटकों का आना शुरू हो गया है। उससे इस विषय पर बात करने की आवश्यकता किसी ने न देखी थी। मामला जब तक जड़ नही पकड़ता उससे बात की जरूरत ही क्या है ? उसके पसन्द नापसन्द की झंझट तो पहले ही मिट गई है।

रघुनाथ अपने पुराने सहपाठी के घर जा पहुँचे। ढाका के कालेज मे दोनों ने एक साथ आई. एस. सी. तक पढा है। दोनों ही मेधावी छात्र थे। खूब गहरी दोस्ती थी उनकी। फिर वीरेश्वर मुखर्जी गये डाक्टरी पढ़ने, और रघुनाथ ने अंग्रेजी मे आनर्स ले, बी. ए. मे दाखिला लिया। पिता कि एकान्त इच्छा थी कि वे वकालत पढ़ें ताकि अपनी जगह पर उन्हे प्रतिष्ठित कर सके। उसी समय इन दोनों का साथ छूट गया था। एम. बी. पास कर वीरेश्वर ने मुंशीगंज मे अपनी डिस्पेन्सरी खोल ली। उनका घर भी वही था। रघुनाथ ने पिता की प्रतिष्ठा और अपनी प्रतिभा के बल पर जितनी सफलता प्राप्त की थी वीरेश्वर मगर उतना न कर सके थे। वैसे तो उस छोटे शहर के सबसे अच्छे डाक्टर अवश्य माने जाते, पर रघुनाथ की सफलता और प्रसिद्धि उनसे कहीं अधिक थी। पेशे और आर्थिक स्थिति में इतना अन्तर होते हुए भी, इनकी मित्रता में मगर कमी न आई थी। इधर वैसे मुलाकात कम ही हो पाती। ढाका में वीरेश्वर बाबू का कभी काम पडता ही नही। रघुनाथ ही कभी-कभी किसी पैसे-वाले मुअक्किल के बुलाने पर मुशीगंज जाते हैं। हर बार तो नही, मगर जब भी मौका लगा है वे दोस्त से जरूर मलने आते हैं।

वीरेश्वर के बड़े बेटे ने उन दिनों कलकत्ते से एम. ए., ला. कर अपने ही शहर में वकालत शुरू की थी। किसी शहर मे वकालत करने के लिये जिन वस्तुओं को जुटाना आवश्यकत होता है अभी उनकी कमी थी। मतलब यह कि जुटाने के साधन की कमी थी। यहाँ पर कम से-कम आपसी जान-पहचान की सुविधा तो है ही। कुछ दिन चले। फिर अगर पाँव जम जायें तो बडे क्षेत्र की ओर जाया जायेगा। इस मामले में रघुनाथ से सलाह ले तो कैसा हो ? प्रश्न वीरेश्वर के मन में जागा न हो ऐसा नही, मगर अभी उनके मन की बात मन में ही है। वे स्वय जरा सकोची प्रकृति के है। एक बात और, किसी काम को

झटपट कर डालने के लिये स्वभाव में जिस तत्परता की आवश्यकता है उनमें उसकी बहुत कमी है। इन दो कारणों से ही बात अभी तक रघुनाथ से कही नहीं जा सकी थी।

सुप्रकाश घर का बड़ा बेटा है। उम्र पचीस की हो चुकी है। वकालत शुरू किये भी दो तीन साल हो चुके हैं। अब तक उसकी शादी कर देनी थी। ऐसा भी नहीं कि लड़के ने शादी के लिये मना किया हो। बल्कि, मजाक ही मजाक में रिश्ते की एक भाभी से जो कुछ कहा है उससे यही साफ जाहिर होता है कि वह शादी करना चाहता है। भाभी ने भी इस समाचार को प्रचारित कर दिया। अपनी चचिया सास यानी सुप्रकाश की माँ से उसने काफी जोरदार शब्दों में देवर की शादी जल्दी से जल्दी कर देने को कहा। इसकी आवश्यकता को सुप्रकाश की माँ खूब समझती थीं। चुपचाप बैठी वे थीं भी नहीं मगर वे बेचारी अपने पति की दीर्घसूत्रता की शिकार थीं। अपने से जितना होता करतीं। इधर-उधर अच्छी लड़की के लिये पूछताछ करतीं। इधर-उधर के लोगों की सहायता न ले उन्होंने खुद ही घटक लगाया।

बहुत दिनों बाद रघुनाथ को आये देख वीरेश्वर जितने खुश हुये, चौंके भी उतना ही। सुबह तो वे कभी दिखाई नहीं पड़ते। जब कभी आते हैं, शाम को, कोर्ट से लौट कर आते हैं। मगर आज तो कोर्ट भी बन्द है।

कुशल प्रश्नादि हो चुकने के बाद रघुनाथ ने मित्र से कहा, 'भाभी से कहलवाओ कि आज वे मुझे खाना खिलायें।'

'तुम्हारे आने की सूचना वहाँ पहुँच चुकी है। अब और कहलाने की जरूरत नहीं।'

'मगर एक समाचार पहुँचवाना बहुत जरूरी है।'

'वह क्या ?'

'वह यह कि जैसा हम बँगालियों की रीति है, ढेर सी तली हुई चीजें, दाल, सब्जी, माँस, मछली, एक के बाद एक चलता ही चला आ रहा है, वैसा वे मेहरबानी से न करें। बस एकदम सादा मछली-चावल। हो सके तो अन्त में दूध या घर में जमाया दही। बस, और कुछ नहीं।'

वीरेश्वर अपने मित्र को तीक्ष्ण दृष्टि से देखते रहे। फिर बोले, 'मालूम होता है कि आधुनिकता की बीमारी लगी है।'

'वह कौन-सी बला है ?'

'जानते नहीं ? कम खाकर स्लिम होना। वैसे यह बीमारी महिलाओं में ज्यादा पाई जाती है। मगर अब तो देख रहा हूँ कि पुरुषों में भी फैलने लगी है।'

'नहीं भाई। 'सिलम' होने की कोई वासना नहीं है मुझमें। बल्कि एक चिलम तम्बाकू पिलाओ तो पी सकता हूँ। तुम्हारे घर में उसका इन्तजाम है तो।'

'है, है । घबराते क्यों हो ?'

चा-पी चुकने के बाद रघुनाथ ने अपने आने का उद्देश्य व्यक्त किया, 'मैंने सुना तुम बेटे की शादी करना चाह रहे हो ।'

'हाँ, पता-ठिकाना ले रहा हूँ । मगर तुम्हें किसने बताया ?'

'नीलाम्बर घटक ने ।'

'ओह, हाँ । है तुम्हारी जान में कोई लडकी ?'

'हाँ है ।'

'कहाँ ? किसकी लड़की ?,

'मेरी ।'

वीरेश्वर उछल पडे ।, 'अरे भाई ! वाह वाह ! तुम्हारी बेटी ? मतलब छोटी वाली ? क्या तो नाम है उसका ?'

'नन्दा ।'

'हाँ । मैंने जब उसे देखा था तब बहुत छोटी थी । वह तो मुद्दत की बात हो भी गई । अब तो जरूर ब्याहने लायक हो गई होगी ।'

'हो तो गई है । मेरा मन मगर उसे और रोकने का था । मगर माँ ने ऐसी जिद पकड़ी है कि क्या बताऊँ । वे चाहती हैं कि उनके रहते-रहते इसकी भी शादी हो जाये ।'

'स्वाभाविक है । यही सबसे छोटी पोती है । उनकी उम्र भी तो काफी हो चली ।'

'इसीलिये करना पड रहा है । लडकी मेरी पढने मे बहुत तेज है । मैं चाहता था कि कम से कम स्कूल की पढाई पूरी कर ले । कालेज मे दाखिला ले लें । फिर शादी की चिन्ता करूँगा ।'

'मगर आजकल तो लड़कियाँ शादी के बाद भी पढ़ाई जारी रखती हैं । वह तो ऐसी कोई बड़ी प्रावलम नही । असल बात है—कहो, क्या हाल है ? 'घबराया हुआ एक युवक कमरे मे दाखिल हुआ । बोला, 'पिताजी यकायक बेहोश हो गये हैं । आपको चलना पड़ेगा डाक्टर साहब । मैं सवारी लाया हूँ ।'

'बेहोश हो गये हैं ?' वीरेश्वर के माथे पर बल पड़ गये । फिर वे दोस्त की ओर मुड़े ।

उन्हे कुछ कहने का मौका न दिया रघुनाथ ने । बोले, 'तुम जाकर देख आओ । मैं तो हूँ ही ।'

वीरेश्वर की पत्नी रघुनाथ के सामने निकलती नही थीं । लड़कियाँ अपने अपने घरो में हैं । सुप्रकाश भी घर पर चला गया था । वहाँ दिन भर का प्रोग्राम है । मछली शिकार का. लम्बा-चौड़ा प्रोग्राम । वह तो शाम से पहले लौटने का नही । वीरेश्वर की पत्नी ने हार कर छोटे लड़के को बैठक में भेजा ।

'आपके लिये चाय ले आऊँ चाचाजी ?'

'जल्दी क्या है बेटा ? आने दो वीरेश्वर को।'

'उन्हें देर हो गई तो ?'

'तब माँग लूँगा। तुम बैठो। बातचीत करूँ तुमसे।'

वीरेश्वर के लौटने के बाद चाय-नाश्ता आया। फिर कुछ बातें हुईं। दोनों मित्रों ने शादी की बात पक्की की। रघुनाथ का एक विशेष प्रस्ताव था। वीरेश्वर से उस विषय में पूछते ही वे बोले, 'ठीक तो है। इसमें सोचने-विचारने को है ही क्या ?'

'भाभी की राय भी ले लेते।'

'उनसे क्या पूछना। और कोई होता तो बात भी थी। मामला तुम्हारा है—'उन्होंने वाक्य पूरा करना आवश्यक न समझा।

दिन ढले जब रघुनाथ चलने को तैयार हो रहे थे तब सुप्रकाश आया।

उन्होंने कहा तो न था पर रघुनाथ उसी का इन्तजार कर रहे थे। उसे उन्होंने पहले भी देखा है। अगर कभी पास से नहीं। देखे हुये हो भी गये बहुत दिन। वे उसे सामने-सामने देखना, बात करना चाहते थे। वे थोड़ी देर और रुक गये। उन्हे लड़का भा गया। सुदर्शन, नम्र, विनयी। शर्मीला वह कुछ ज्यादा ही था। या यह भी हो सकता है कि वे उसके पिता के मित्र तथा उसके पेशे के जाने-माने सीनियर हैं इस कारण वह इतना संकुचित हो गया हो। उसकी उम्र नन्दा की लिहाज से जरा ज्यादा तो है, हाव-भाव में भी बहुत गम्भीर। नन्दा के साथ तो इक्कीस-बाईस वर्ष का दुबला-पतला हँसमुख लड़का ही अच्छा लगता। मिलने को तो वैसा भी मिल रहा था—सब तरफ से जोड़े का, मगर उसके माँ-बाप तो उनके विशेष प्रस्ताव को मानने को तैयार नहीं हुये। कोई-कोई तो सामने राजी हो गये, मगर उनकी बात पर रघुनाथ विश्वास कहाँ कर पाये ? वीरेश्वर एक ही बार में मान गये। उनकी इस स्वीकृति पर पूरी आस्था रखी जा सकती है। आज नन्दा छोटी है, सब दिन तो वह ऐसी न रहेगी। वे जैसे इन्तजाम कर रहे हैं उसके अनुसार यह सवाल ही नहीं उठता कि इसके साथ नन्दा की जोड़ी कैसी बैठेगी, कैसी नहीं।

घर पहुँचते काफी रात हो चुकी थी। मित्र और खासकर उसकी पत्नी ने उनके अनुरोध को न माना था। फलतः खाने-पीने का इन्तजाम जरा व्यापक ही हो गया था। उनके बार-बार कहने पर उन्होंने भी कुछ ज्यादा ही खा लिया था। इसी कारण रात को घर पहुँच कुछ खाया नहीं। सन्देश खाकर दूध पी लिया और आराम करने चले गये। पत्नी के कुछ पूछने से पहले ही बोले, 'पक्की हो गई। मैं सारी बातचीत कर आया हूँ। कल सब बताऊँगा। बस, रात भर जरा धीरज धरो।' कह कर हँस पड़े।

हेमांगिनी को इस व्यक्ति से जुड़े बहुत दिन हो गये हैं। वे मगर याद न कर सकीं कि इसके पहले कब वे इतने खुश नजर आये थे या इतनी ममता-भीगी

बातें कही थी।

सासजी को यह शुभ समाचार तो सुबह होते ही सुना आई। खुशी के मारे वे बिस्तर से उठने लगी। हेमांगिनी ने उन्हें रोक कर कहा, 'तबीयत ठीक नहीं है आपकी, उठिये मत।'

'अब मैं बिल्कुल ठीक हो जाऊँगी। उमा की बहू से शख बजाने को, मंगल ध्वनि करने को कह दिया न?'

'कहती हूँ, कह कर हेमांगिनी चलने को हुईं। सास ने उन्हें रोका। बोलीं 'यह मुझे मालूम था बहू। माँ की बात रघु कभी काट नहीं सकता। मैं तो उसे जन्म से देखती आ रही हूँ, माँ ही उसको सब कुछ है। ऐसा बेटा किसी के होता नहीं।' कहते-कहते उनका गला भर गया, दो बूंद आंसू लुढ़क गये।

नींद नन्दा की खुल गई थी। मगर उसने कमरे का दरवाजा खोला न था। मंगल ध्वनि सुन कर चौंक उठी। साथ ही साथ उसके कमरे के दरवाजे पर किसी ने धक्का दिया। बाहर से बड़ी भाभी पुकार रही थीं,'नन्दा, ओ नन्दा, दरवाजा खोलो। अब और कितना सोओगी?'

साड़ी लपेट कर दरवाजा खोलते ही भाभी आँधी की तरह लिपट गईं। बोलीं, 'मुँह मीठा करो मेरा।'

'क्यों? क्या बात है?'

'बडी भोली बनती हो बीबी! तुम कुछ समझीं नहीं? या शुभ-समाचार अपने कानों से सुनना है? ठीक है, सुनो। दोनों कान खोल कर खूब ध्यान से सुनो। पिताजी कल बात पक्की कर आये हैं।'

समझ तो नन्दा पहले ही गई थी। भाभी की बात सुन कर उनकी बाहें हटा दीं। काठ मार गई बहू। बड़ी बहू ने देखा उसका मुख एकदम सफेद हो गया — जैसे सोख्ता लगा कर सारा खून चूस लिया गया हो।

दिन निकलने के पहले ही रघुनाथ अपने चेम्बर में जा बैठे। कल सारा दिन बाहर थे। कई एक जरूरी मुकदमें लगे हुये हैं। उनकी तैयारी करनी है। एक है प्रथम सत्र जज के पास। आज ही बहस करना है। साधुचरण भी व्यस्त हैं। वकील साहब जैसे-जैसे कह रहे हैं वैसे-वैसे मिसिल वगैरह दे रहे हैं। रैकों से कानून की मोटी-मोटी किताबें उतार रहे हैं। इसी के बीच जनाने महल से एक दाई आकर इशारे से साधुचरण से कह गई कि मालकिन ने उन्हें एक बार आने को कहा है। मौका देख साधुचरण मिल आये। उन्हें तो पता ही था कि क्यों बुलाया है। मालकिन के कुछ पूछने से पहले ही उन्होंने इशारे से समझा दिया कि इस वक्त उम्मीद नहीं।

हँसी आई हेमांगिनी को। पति ने उन्हें एक रात धीरज धरने को कहा था। देखा जाये कितनी रातें धीरज धरनी पड़ती हैं।

उस दिन शाम को रघुनाथ और दिनों की बनिस्बत कुछ देर से लौटे। साथ

चार-पाँच लोग थे। उन्हीं के साथ बैठ गये। चाय-नाश्ता बैठक में पहुँचा दिया गया। जब अन्दर आये तब रात के खाने का समय हो चुका था। पत्नी से बोले, 'खाने को बहुत थोड़ा देना। अभी जाकर फिर काम करना है। बहुत-सा काम जमा हो गया है। आज अगर कुछ करके न रखूँगा तो कल सुबह पूरा न कर पाऊँगा।'

संक्षिप्त आहार पूरा करने में जितना समय लगा, वह तो मुकदमे की गुत्थी सुलझाने में ही निकल गई। पति की शक्ल देखते ही हेमांगिनी जान गई की पूछताछ के लिये यह समय ठीक नहीं।

मुकदमे पर आलोचना का पर्व शाम को ही पूरा हो गया है। अब ब्रीफ तैयार करने की पारी है। काफी जटिल मामला है। जिन किताबों या कागजात की जरूरत हो सकती है उन्हें सामने रखवा कर साधुचरण को छुट्टी दे दी है रघुनाथ ने। चेम्बर में इस समय वे अकेले थे। चारों तरफ सन्नाटा। रघुनाथ मुकदमे की तैयारी करने में लगे थे। अन्दर जाने का दरवाजा खुला था। उधर हल्की सरसराहट होते ही उन्होंने आँखें उठा कर देखा, घड़ी पर भी निगाह चली गई। विस्मित होकर बोले, 'तू ? अभी सोई नहीं ? बारह तो बजने ही वाले हैं !'

नन्दा ने जवाब न दिया। दरवाजे के पास उदास खड़ी रही। रघुनाथ ने उसे बुलाया। वह आकर उनके मेज से सट कर खड़ी हो गई। रघुनाथ बोले, 'कुर्सी खींच कर मेरे पास बैठ।' उसने ऐसा ही किया। कुर्सी लेकर पिता के दाहिनी तरफ जा बैठी। बड़ी ममता से उसके सिर पर हाथ रख कर बोले,'बोल, क्या कहना है ?'

नन्दा सिर झुकाये धीमे स्वर में बोली, 'पिताजी, उस दिन जो आपने कहा था—' रुक गई वह। रघुनाथ उसकी बात का सूत्र पकड़ न सके। बोले, 'किस दिन ?'

'जिस दिन लोग मुझे देखने आये थे।'

'ओह ! वह बात ! मगर बेटी अपनी दादी की हालत तो तुम देख ही रही हो। उनकी हालत देख कर लगता है कि हमारे बीच वे हद-से-हद दो चार महीने और रहेंगी। इतना समय भी शायद नहीं मिलेगा। उनकी बड़ी इच्छा है कि वे तुम्हारी शादी देख लें। अगर उनकी यह इच्छा पूरी नहीं होती तो शायद उन्हें मृत्यु के उपरान्त भी शान्ति न मिले। उनकी इच्छा का ख्याल रख कर यह सब करना पड़ रहा है। तुम्हारी इच्छा का भी मुझे पूरा ख्याल है। वह तो केवल तुम्हारी नहीं, मेरी भी इच्छा है। तुम्हारी पढ़ाई में कोई खलल नहीं डाला जायेगा। शादी के बाद तुम मेरे ही पास रहोगी। जब तक तुम्हारी पढ़ाई पूरी नहीं हो जाती तुम्हें ससुराल नहीं भेजूंगा। उन लोगों से यह बात मैंने पक्की कर ली है।'

नन्दा साँस रोके सुन रही थी। अब वह धीर से बोली, 'अगर उन्होंने आप-का कहना न माना ?'

'अवश्य मानेंगे ! वचन दिया है मुझे वीरेश्वर ने। ओह ! तू वीरेश्वर को तो नहीं पहचानती न ? देखा है, पर याद नहीं। जब वह यहाँ आया था बहुत छोटी थी तू। हम साथ पढ़ते थे। लोग हमें 'राम-लक्ष्मण' कहते थे। हमारी दोस्ती अभी तक उतनी ही गहरी रह गई है। स्टिल वी आर ग्रेट फ्रेण्ड्स। उसी का बेटा है। देखने में बहुत सुन्दर है। स्वभाव का भी उतना ही सुन्दर। उस दिन मैंने उसके साथ काफी देर बातचीत की। जा, सो जा जाकर। फिक्र की कोई बात नहीं।' कहते-कहते फिर मिसिल पढ़ने लगे। चलते-चलते नन्दा बोली, 'आप और कितनी देर पढ़ेंगे ? रात बहुत हो गई।'

आँखें मिसिल पर जमाये रघुनाथ बोले, 'क्या करूँ बेटी ? दिस इज माई प्रोफेशन। मैंने उन लोगों से रुपये लिये हैं, इस काम का उत्तरदायित्व भी लिया है। करीब पूरा कर चुका हूँ। बस, आधा घन्टा और लगेगा। तू जा।'

अगले दिन कोर्ट से लौट कर रघुनाथ ने माँ के पास बैठ कर अपने मुंशीगज अभियान का पूरा ब्यौरा दिया। पारिवारिक सभा थी। नन्दा के सिवा सारे सदस्य उपस्थित थे। पत्नी, बड़ा बेटा, बड़ी बहू, यहाँ तक की साधुचरण भी। माँ ने पूछा, 'लडके को तो तू देख आया, वे लडकी देखने कब आ रहे हैं ?'

'मैंने पूछा था। वीरेश्वर का कहना है कि लडकी तो हमारी देखी हुई है, फिर क्या देखना ? इस बात पर मैंने कहा कि तब तो बहुत छोटी थी—एकदम नन्ही बच्ची। इस पर वह बोला, उसी से काम चलेगा। और फिर वह तुम्हारी बेटी है।'

सुन कर सब खुशी-खुशी चले गये। रघुनाथ भी चलने को हुये। साधुचरण से बोले, 'अब इन्तजाम में हाथ लगाओ घोषाल चाचा। क्वांर का आधा तो उतर ही गया। कार्तिक में तो होनी नहीं। अगहन चढते ही करने का विचार है।' घोषाल ने कहा, 'मुझे मालूम है।'

औरों के जाने पर बूढी माँ ने बहू को बुलाया। बेटा की माँ को भी बाहर भेज दिया। हेमांगिनी सास का बुलावा सुन घबरा कर दौड़ी आई। यहाँ सास के पोपले मुख पर फैली चौडी मुस्कराहट को देख उन्होंने चैन की साँस ली। बोली, 'जानती हो बहू, रघु इतना बड़ा वकील जरूर हो गया, मगर उसमे अक्ल जरा भी नहीं। शर्त ! अरे यह क्या तेरी कानूनी दलील है ? इतनी बड़ी लडकी को कोई भला शादी के बाद मायके में रहने देता है ? मानता है कोई ऐसी शर्त ? खैर, शादी तो हो जाने दे। शर्त-फर्त की बात तो देखते रहेंगे बाद में।'

बेटी की माँ ने मगर मामले को इतना हल्का न समझा। वे बोली, 'अम्मा, मुझे तो चिन्ता हो रही है। लड़की है बड़ी ही अजीब। मालूम नहीं आगे चल कर कौन सा झमेला करे।'

वहू की आशंका को सास ने फूंक मार कर उड़ा दिया। बोलीं, 'पगलाई हो ? तुम्हारी लाड़ली कोई दुधमुँही बच्ची तो है नहीं। जब मैं उसकी उम्र की थी, बड़ी बेटी मेरे पेट में थी। जितनी बड़ी विद्वान क्यों न हो, है तो औरत जात ही। दूल्हा के साथ दो एक बार—' हेमांगिनी की बड़ी लड़कियाँ होतीं यहाँ तो इसका आनन्द लेलीं, मगर इसके बाद सास ने जो कहा उससे बहूरानी बेचारी तो लजा गई। बुढ़ापे में जबान की लगाम ढीली हो जाती हैं, खास कर औरतों की। और फिर इस प्रकार का वार्तालाप औरतों में बड़ी उदारता और बड़े खुले ढंग से होता है। अंगरेजी में जिसे 'फ्री टंग' कहते हैं उसके इस्तमाल में सोच-विचार कम ही करती हैं। हेमांगिनी मुस्करा कर रह गईं। खुले आम तो वे सास के सामने कुछ बोलीं नहीं, पर मन-ही-मन शायद सास के साथ एकमत थीं।

सास-बहू ने तय किया कि इस बात को अपने तक ही रखना है। नन्दा से इस विषय पर कुछ कहने की जरूरत नहीं। उसे यही मालूम रहे कि शादी के बाद भी वह यहीं रहेगी, पढ़ाई चलती रहेगी।

इससे ज्यादा नन्दा ने कुछ सुना नहीं था। मगर उसने सुना, वह मगर बहुत दिन बाद, कि इस शर्त के मामले पर उस तरफ बहुत तूफान मचा था। इस घर में रघुनाथ जिस प्रकार सर्वमय कर्ता हैं, जो वे कहते हैं वही होता है, वीरेश्वर के परिवार में मगर ऐसा नहीं है। उनकी पत्नी का भी अपना स्थान है। खास कर बेटी-बेटा के शादी ब्याह के मामलों में, उनका अपना मत था, अपना वक्तव्य था, जैसा कि होना चाहिये। वे पति के मित्र के सामने कभी नहीं होतीं, उस दिन भी पर्दे में ही थीं। पर्दे की आड़ में रह कर उन्हें यह अवकाश न मिला कि दोनों मित्रों की क्या बातचीत हुई, इसका पता लगायें। कारण यह था कि बैठक जनाने महल से कटा हुआ है। बाद में जब उन्होंने सारी बात सुनीं, तो तपाक से बोलीं, 'यह किस ढंग की बात है ? शादी के बाद बहू ससुराल नहीं आयेगी, मायके ही रहेगी, यह किस ढंग की बात है ? चलो ठीक है, चार-छह महीने रह लेगी बस, फिर तो उसे बुला ही लेना पड़ेगा। वह इस घर की बड़ी बहू होगी। ऐसा विचित्र वचन तुमने दिया क्यों ?'

हकलाते हुये वीरेश्वर बोले, 'रघु ने कहा, बिटिया को आगे पढ़ने का बहुत शौक है। पढ़ने में तेज भी है खूब। चन्द साल अपने पास रख कर पढ़ाना चाहता है। फिर तो यहीं रहेगी।'

'चन्द साल! तब तक हमारी गृहस्थी कैसे चलेगी ? ढेर-सा पढ़ लिख कर करना भी क्या है ? यहाँ आकर उसे उस्तादनी तो बनना नहीं है। यह रिश्ता तुम वापस कर दो।'

'वचन दिया है मैंने। वह मेरा दोस्त है। अब मैं वापस कैसे करूँ ?'

'कहलवा दो लड़के का शादी करने का मन नहीं है।'

लड़के का प्रसंग छिड़ते ही बातचीत नये मोड़ पर आ गई। वीरेश्वर ने

कहा, 'उसी का सोच कर तो मैंने इस प्रस्ताव पर अपनी सहमति दी है। जानती तो हो, रघु कितना नामी वकील है। ढाका के इतने बड़े 'बार' में प्रथम तीन चार जनों में उसकी गिनती होती है। दीवानी फौजदारी दोनों में बराबर प्रतिष्ठा पाई है उसने। बड़ा लल्ला तो इधर कुछ खास कर भी नहीं पा रहा है। किसी तरह टिमटिमाता चल रहा है। मेरे वचन देने के पहले रघु ने वचन दिया है कि इसे वह खड़ा कर देगा। इस मुशींगज इलाके से बहुत काम जाता है उसके पास। रघु ने कहा है, अगले महीने, नहीं तो उसके बाद वाले महीने से तो जरूर ही सुप्रकाश को काम भेजना शुरू करूँगा मैं। मेरी जान-पहचान की कितनी ही पार्टियाँ हैं, सबसे कह दूँगा मैं। स्थानीय इजलास में उनके तमाम मुकदमे रहते हैं। वे सब इसे मिल जायेंगे। कुछ दिन यों ही चलने दो। फिर जब अनुभव कुछ बढ़ जायेगा तब दूसरा इन्तजाम करूँगा। मैं तो देखता ही रहूँगा। इतनी सुविधा कहाँ मिलेगी, बोलो? क्या मैं उसकी शर्त पर यों ही राजी हो गया?'

बेटे की भविष्य का ख्याल कर गृहिणी ने भी आगे मना करना उचित न समझा। मन लेकिन उनका मान नहीं रहा था। बेटा जवान हो गया है, उसकी शादी कर देने के लिये, बहुत दिनों से कह रही है पति से। अच्छी-बड़ी-सी बहू आ जाये, आकर गृहस्थी के उत्तरदायित्वों में हाथ बँटाये। अकेले वे और कितना करें? उनकी भी तो उम्र हो चली है। मगर यह क्या होने वाला है?

इस शर्त से सुप्रकाश खुद भी खुश न हो सका। अपने होने वाले ससुर का प्रस्ताव उसे नितान्त अपमानजनक लगा। शादी होगी, मगर पत्नी उसके पास नहीं रहेगी, यह प्रस्ताव तो किसी भी पुरुष के पौरुष को अपमानित करना है। वह तो साफ मना ही कर देता। मगर, दोस्तों के आगे उसके पिता की इज्जत धूल में मिल जायेगी जान, उधर गया ही नहीं। और फिर व्यावसायिक सुविधा की ओर जो इशारा किया गया है, वह भी उपेक्षा करने योग्य नहीं। इसके बाद भी उसके मन में जो द्विविधा थी उसे उसकी परिहास रसिका भाभी ने दूर कर दिया। एकान्त में देवर से बोली, 'घबराओ मत। इस प्रकार के प्रवचन आज-कल की लड़कियाँ अक्सर झाड़ा करती हैं। वे कहती हैं, 'पत्नी दासी तो है नहीं कि पति का हुक्म मानकर चले।' 'क्या मुझे शादी के अगले दिन ही चौका सँभालना पड़ेगा?' 'मेरा अपना स्वतंत्र मत भी तो है।' 'मुझे पढ़ना है, संगीत सीखना है, यह करना है, वह करना है,' मगर जानते हो देवरजी, इन बातों की क्या कीमत है? इनकी कीमत तो बस कोहबर तक है। बस एक रात किसी तरह पार कर लो तो सारा ची-चपड़ छू-मन्तर हो जाता है। उसके बाद तो पढ़ाई-लिखाई सारी आले पर धरी रह जाती है। फिर तो नदी उल्टी बहने लगती है, मुँह से चाहे नहीं भी कहे तो मन में यही चिन्ता लगी रहती है कि कब लेने आयेंगे मुझे! अरे, भला कोई औरत लगातार रह सकती है मायके में?

लोग क्या कहेंगे !'

वीरेश्वर मुखोपाध्याय से घनिष्ट एक व्यक्ति ने ही ये सारे तथ्य नन्दा को बताये थे। तब तक पानी काफी दूर बह चुका था। उसने यह भी सुना था कि भाभी ने नवेली दुल्हन को वश में करने के बहुत से तरकीब सिखाये थे देवर को। मगर वे कौन-कौन से तरीके हैं यह अभी तक पता नहीं चला है।

॥ चार ॥

शादी की मूहूर्त आधी रात को थी। कन्यादान का पवित्र कार्य रघुनाथ खुद करना चाहते थे। नन्दा उनकी सबसे छोटी और सबसे प्रिय सन्तान है। पर, शादी के दिन तो और भी तमाम काम होते हैं।

यही इस घर का अन्तिम उत्सव है। इस कारण इन्तजाम भी खूब किया गया था। गृहस्वामी ने किसी की कोई इच्छा अपूर्ण नहीं रखी थी। नाते-रिश्तेदार, दूर-दूर से कई दिन पहले से आने लगे। पुरुषों की पुकार, स्त्रियों का कलहास्य और बच्चों की किलकारी से उतनी बड़ी कोठी झनझना रही थी। उनकी खातिर-तवाजो, खाने-पीने का इन्तजाम, सामान लाना-जुटाना और तमाम छोटी-बड़ी बातें, सब कुछ तो उन्हीं को देखना था।

वैसे, घोपाल बराबर साथ दे रहे हैं। लड़के भी खूब काम कर रहे हैं। मगर सारी हुक्म-फरमाइश तो उन्हीं को देना है न !

उत्तरदायित्व एक ऐसी बला है कि अगर आपने उसे एक बार ओढ़ लिया तो फिर वह छोड़े नहीं छूटती। रघुनाथ को भी साँस लेने की फुर्सत न थी। इस पर अगर कन्यादान भी वे ही करें तो इसका मतलब यह होगा कि उस दिन वे पानी भी न पी सकेंगे। अब तो शरीर पहले जैसा रहा नहीं, उम्र भी हो चली है। माँ ने कहा था, 'कन्यादान विशु को करने दें। आखिर पिता और चाचा में फर्क ही क्या है ?'

विशु यानी विश्वनाथ। रघुनाथ के छोटे भाई। काशी में रहते हैं। शादी वादी की नहीं। सात्विक व्यक्ति हैं। धर्म-चर्चा, पूजा-पाठादि में ही समय काट देते हैं। इस दृष्टि से भी कन्यादान करने के वे अवश्य ही अति योग्य हैं।

पर रघुनाथ ने कहा, 'नहीं माँ, यह काम तुम मुझे ही करने दो। विशु से तुम बल्कि कहो कि पुरोहितजी से मिल कर उधर का इन्तजाम पक्का करे।'

वर और कन्या को भी आज उपवास रहना है। छोटी बहू ने मगर, सबकी नजर बचा कर नन्दा को थोड़ा दूध और थोड़ी मिठाई लेने को बाध्य किया था।

विवाह एक व्यापक अनुष्ठान है। मुँह अँधेरे 'दधिमंगल' से शुरू कर सारा दिन और करीब-करीब सारी रात कुछ न कुछ होता ही रहता है।

सुबह 'नन्दीमुख' होता है। वह तो रघुनाथ को ही करना है। स्वर्गत पितृ-पुरुषों को तृप्त कर उनके अलक्ष्य आशीर्वाद को प्राप्त करना, फिर शुभ-कार्य की सूचना।

रात को कन्यादान के अलावा शादी के ही और भी बहुत सारे काम होते हैं। सभी शास्त्रीय कार्य तो नहीं, कुछ-कुछ मात्र लोकाचार हैं। मगर कुछ मिली घटना दीर्घस्थायी होती है। उसके उपरान्त कुछ स्त्री-आचार भी हैं। यह पूरी तरह स्त्रियों का क्षेत्र है। क्षण-क्षण मंगल-ध्वनि की फूक, हो-हल्ला, हँसी-मजाक, शोर-गुल।

युवतियों भरी छेड़छाड़ की परेशानी, शास्त्रीय तथा अशास्त्रीय आचारों के सारे अत्याचार बेचारी दुल्हन को निःशब्द सहने पड़ते हैं। वह बेचारी कीमती बनारसी साड़ी के घूँघट में मुँह छिपाये, भूखी-प्यासी चुपचाप बैठी रहती है। उसकी तरफ ध्यान देने का किसी के पास समय कहाँ? लग्न बहुत रात को था। खाने-पीने का काम उसके पहले ही पूरा कर लेना था। बराती भी खा-पीकर दूसरे मेहमानों के साथ चल पड़े। थोड़े बहुत रह गये। घनिष्ठ रिश्तेदार और सुप्रकाश के दो-चार दोस्त। और रहे वर के पिता। सुबह बहू-बेटा लेकर जायेंगे।

ढाका से मुंशीगंज दूर ही कितना है? सिन्दूर-अनुष्ठान वहीं करेंगे। वह वर-पक्ष के करने का काम है। अगर दूर जाना होता तो यह अनुष्ठान जो विवाह से कुछ कम व्यापक नहीं है, कन्या के घर पर ही पूरा कर लिया जाता है। सारा खर्च वर-पक्ष को उठाना पड़ता है।

स्मरजीत अब तक लगातार बोल रहे थे। यहाँ पर एक बार रुके। सिगरेट सुलगा छल्ले बनाते रहे। फिर मृगांक से बोले, 'यह सिन्दूर-अनुष्ठान क्या होता है जानते हो? शादी तो तुमने की ही नहीं?'

'अरे शादी नहीं भी की तो क्या? कम से कम दर्जन भर दोस्तों की शादियों में शामिल तो हुआ हूँ। सिन्दूर-अनुष्ठान देखा है मैंने। बहुत देर तक हवन वगैरह होता है। ब्राह्मणों में ही इसकी धूम-धाम बड़ी जोरदार होती है?'

'हाँ। विवाह का यही सर्वप्रधान अनुष्ठान है। और जैसा तुमने कहा ब्राह्मणों में बड़े जोर-शोर से होता है। हवन, यज्ञ, सप्तपदी।'

'सप्तपदी तो पहले ही हो चुकता है न?'

स्मरजीत ने हँस कर कहा, 'नहीं। सप्तपदी का अर्थ वर के चारों ओर सात चक्कर घूमना नहीं है। यह है वर और वधू का एक साथ सात कदम चलना। गाँठ जोड़ कर वधू वर के पीछे-पीछे गिन कर सात कदम सामने को चलेगी?'

मृगांक को याद आई। 'हाँ, यह भी मैंने देखा है। यह तो एक बहुत

इम्पार्टेन्ट आइटेम है न ?'

'केवल इम्पार्टेन्ट ही नहीं, एसेनशियल है । और फिर इसी के अन्त में वर अपने हाथों वधू की माँग को सिन्दूर से रंग देता है । इतने सारे अनुष्ठान जो अब तक हुए हैं, उनके हो जाने पर भी यह दोनों अब तक वर और कन्या ही थे । सिन्दूर की यह रेखा खींच देने के बाद ही ये परस्पर में निकट और समाज की दृष्टि में पति-पत्नी के रूप में स्वीकृत होते हैं । इसे तो शादी का फाइनल या असल स्टेप कह सकते हो । खैर, फिर आगे सुनो—'

स्मरजीत फिर उस शादी की रात को लौट गये । 'वर कन्या को कोहबर में पहुँचा कर लड़कियाँ निकल आईं । रात करीब-करीब खत्म हो चुकी थी । कौवे बोलने वाले होंगे । अगहन के अन्तिम दिन थे । जाड़ा काफी पड़ने लगा था । किसी में भी अब वर-वधू के कमरे में ताक-झाँक करने का उत्साह न बचा था । मन यही चाह रहा था कि बाकी रात किसी रजाई के नीचे दुबक कर काट दें ।

'चोरी से सुनने को था ही क्या ? कन्याजी के तो अजीब चाल-ढाल थे । शादी के पटे पर बैठी वह मारे नींद के गिरी पड़ रही थी । यह तो अच्छा हुआ कि दो लड़कियाँ दो तरफ से सहारा दिये बैठी रहीं, नहीं तो वह वहीं लेट जाती । पलंग पर बैठाते ही ऐसी कुण्डली मार ली थी, वह तो अब तक सो चुकी होगी । बेचारी । एक तो छोटी है ही, फिर दिन भर के इतने अत्याचार । सोने दो ।

'सब चली आईं, जिसे जहाँ जगह मिली, लेट गई । दो मगर रह गईं । वे उम्र की छोटी हैं । शादी भी अभी हाल में हुई है । अपने जीवन की यह रात उनकी स्मृति में स्पष्ट है । कौतूहल भी प्रबल है । इस बहाने वे अपनी यादें फिर से जगा लेना चाहती हैं । रात जगने की आदत है उन्हें । वे जाकर खिड़की से सट कर खड़ी हो गईं ।

'कुण्डी अन्दर से बन्द थी । भीतर देखने का कोई उपाय न था । किवाड़ों के बीच कान रखने से शायद कुछ सुनाई पड़े ।

'उन्होंने सुना 'कन्या' कह रही है 'नहीं', काफी जोर से कह रही है वह । एक बार नहीं, कई बार कहा उसने 'नहीं' ।'

'यह दोनों एक दूसरे को देखती आँखों में मुस्कराईं । वर भी कुछ कह रहा है । बहुत धीरे से । सुनाई नहीं पड़ता । थोड़ी देर में नन्दा का स्वर फिर सुनाई पड़ा 'जाने दीजिये मुझे ।' उन लड़कियों को बड़ा आनन्द आया । वे आगे की घटना का इन्तजार करती रहीं । मगर फिर कुछ सुनाई न पड़ा ।

'वे कुछ देर और रुकी रहीं फिर तंग आकर 'धत तेरे, चल सो जायें' कह कर चली गईं । कुछ देर तक तो सोने की जगह की तलाश में दोनों सारे कमरों में भटकती रहीं, फिर थोड़ी जगह पा लुढ़क गईं । नींद उन्हें नहीं आ रही

थी। जो देखा नहीं, ठीक से सुना भी नहीं, पर जिसका स्वाद उन्हें पता था उसी की याद शायद उनके स्नायु सकल को उत्तप्त करती रही।

'झपकी आई थी जरा। एकाएक एक तीखी चीख सुन कर दोनों हड़बड़ा कर उठ बैठीं। चीख वैसी थी जैसे कोई बहुत भयंकर चोट खाने पर करता है। शब्द तो लगा कोहबर से आ रहा है। वे दोनों उधर ही दौड़ी गईं।

'इस कमरे, उस कमरे में सोये लोगों की नींद भी उचट गई थी। वे भी उठ कर आ गये थे। किसी की समझ में मगर यह न आ रहा था कि कौन किस कमरे से चीखा। इन लडकियों को देख कर लोगों ने उन्हें ही घेर लिया।

'अब सबने सुना कि वर-वधू के कमरे से रोने की आवाज आ रही है। दरवाजा खटखटायें या नहीं ऐसा ही सोच रहे थे लोग कि धडाम से दरवाजा खुला और एकदम अस्त-व्यस्त हालत में वधू निकल आई। उससे ठीक से चला भी नहीं जा रहा था। लडकियों ने बढ़ कर उसे थाम लिया और सहारा दे माँ के पास ले चलीं।

'वे तब तक अपने कमरे से निकल चुकी थीं। नन्दा जाकर उनकी छाती पर गिरी। वह उस समय भी फफक-फफक कर रो रही थी।

'रात बीत चुकी थी। पूरब में उजाला छाने लगा था। शादी का घर-भर में इतने सारे लोग। सभी करीब-करीब उठ चुके थे। माँ-बेटी को घेरकर बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई। मगर सबकी जुबानों पर ताले पड गये थे। स्त्री-पुरुष सभी चित्रापित खडे थे।

'भीड में थोडी हलचल हुई। लोगों ने बगल में हट कर बीच में रास्ता बना दिया और उसी में से आये रघुनाथ। किससे उन्होंने क्या सुना था, वे ही जानें। मगर यह ठीक है कि उन्हें बुलाने कोई गया न था। भर्राये स्वर से पत्नी से बोले, 'कमरे में ले जाकर लिटा दो। चारों तरफ की भीड से बोले, 'तुम लोग यहाँ क्या कर रहे हो ?'

'साथ ही साथ वह जगह बिलकुल सुनसान हो गई।

'पिता की आवाज सुन नन्दा की रुलाई उफन उठी। शायद लज्जा, खेद और अपमान की मारी बेचरी माँ के सीने से मुँह भी न उठा पा रही थी। उसने पिता की तरफ देखा नहीं। कहा भी नहीं कुछ। उन्होंने भी उससे कुछ पूछा नहीं। बेटी की तरफ एक निगाह देख उल्टे पाँव लौट गये।'

'और उधर जामाता देवता बेफिक्र हो खर्राटे भरते रहे ?' श्लेष से तिलमिलाते स्वर में मृगांक बोले।

रमरजीत हँसे। धीरे से बोले, 'लेखक हो न तुम, इसलिये तुम्हारे कोमल मन को चोट लगा है। मैं मानता हूँ कि लगने की बात भी है। तुम लोग कहोगे, मेरी तरह सीधा-सपाट नहीं, और सुन्दर ढंग से कहोगे, विवाह के बाद पति का प्रथम कर्तव्य है नववधू के मन को जीतना, उसकी सोई हुई

वासना को धीरे-धीरे जगाना। कहोगे, उसका मन फूल की कली-सा है। कली जैसे जबरदस्ती खिलाई नहीं जा सकती, जब समय आता है, रोशनी और हवा के कोमल स्पर्श से वह आपही खिल जाती है, उसकी पंखुड़िया खुद-ब-खुद खुल-कर फैल जाती हैं, उसी प्रकार प्रेम के मधुर स्पर्श से किशोरी के मन को कली की पंखुड़ियों को खुलवाना होगा। उसके लिये समय चाहिये, चाहिये अनुकूल परिवेश। उसके शरीर को पाना है तो उसके मन को वश में करो। वगैरह। क्यों ठीक कहता हूँ न मैं ?

'गणित का शिक्षक हूँ तो क्या ? थोड़ी बहुत कवित्व तो मुझे भी आती है न ?'

मृगांक ने कहा, 'मैं तो देख रहा हूँ कि वह तो आप हमसे ज्यादा जानते हैं, हमसे अच्छा कर लेते हैं। मगर एक बात बताइये, यह सब जो आपने कहा, क्या यह कवित्व मात्र है, क्या इसमें सचाई तनिक भी नहीं ?'

'अवश्य है। मैं तो मानता हूँ कि ऐसा ही होना चाहिये, यही ठीक तरीका है। लेकिन मेरे भाई, इस दुनिया में, जो उचित है, जो ठीक है उसे घटते तुमने कितनी बार देखा है ? यहाँ पर जमाई राजा अपने पतिपन का अधिकार यानी फण्डामेण्टल राइट आफ ए हसबेण्ड का इस्तेमाल शादी की रात को ही करने चले थे। जिस पर वे इस अधिकार का प्रयोग करने चले थे उसका क्या होगा, वह इसके लिये तैयार है कि नहीं, इन वाहियात बातों पर ध्यान देना भी उचित न समझा था उन्होंने।

'एक बार एक महिला डाक्टर ने मुझे बताया था कि उनकी रोगिणियों में से कुछ स्त्रियों ने उन्हें बताया था कि विवाह की रात को ही उन्हें इस चरमतम अनुभव का सामना करना पड़ा, और वह केवल शाकिंग ही नहीं, यथार्थरूप से पीड़ादायक था। इनमें से ज्यादातर तो सोलह-सत्रह वर्ष की तो अवश्य रही होंगी, अर्थात शारीरिक स्वस्थता में कोई खामी नहीं रही होगी। यह लड़की तो फिजिकली उतनी फिट भी नहीं थी। सत्रह साल की लड़की तो वह थी। मगर पन्द्रह साल में जितना डेवलपमेन्ट होना चाहिये उसमें उतना भी न था। वह तो शादी के लिये बराबर मना कर रही थी।

'वह तो बेचारी केवल दादी की इच्छा और पिता के कहने पर राजी हुई थी।' मृगांक ने जोड़ा।

'बिल्कुल ठीक।'

'खैर। फिर क्या हुआ ?'

स्मरजीत ने फिर कहना शुरू किया, 'सुबह तो होनी थी, हुई भी। मगर सारे घर पर तो मानो मौत की मनहूस छाया छा गई हो। न कोई बुलाना-पुकारना, न कोई हँसी-मजाक। घर-बाहर इतने सारे लोग, पर जैसे पथरा गये हों सब। इस समय सबकी दृष्टि के केन्द्र थे एक ही व्यक्ति-अन्तर्यामी। लोग

चिन्तित थे कि न जाने क्या कर बैठें वे—जिस प्रकार गुस्सैल और जिद्दी हैं !

'कुछ लोग आपस में फुसफुसा रहे हैं, करेंगे क्या, बेटी के बाप जो हैं। सिर तो बेच ही दिया है। जो भी हुआ हो, बेटी के भविष्य का ख्याल रख चुप हो जाने के सिवा चारा ही क्या है ?

'रघुनाथ ने स्वंय बिल्कुल मौन साध लिया था। जनाने-महल से निकल कर जो अपने चेम्बर मे जा बैठे हैं, फिर वहाँ से न हिले, न डुले। बड़ी कुर्सी पर लेटे हुक्का गुडगुडा रहे हैं। पास में कोई नही है। उनका खास खिदमतगार बसन्त रह-रह कर चिलम पलट रहा है।'

'दिन काफी चढ गया। बासी ब्याह का इन्तजाम अब करना चाहिये। उसके बाद सिन्दूर अनुष्ठान का लम्बा चौड़ा सिलसिला तो है ही। वह तो खैर मुंशीगंज जाकर होगा। इस वजह से तो वर-वधू की विदाई का पर्व जल्दी पूरा करना है।

'बडे बेटे को बुला कर हेमांगिनी बोली, 'जा, उनसे जाकर कह। चुपचाप बैठने का समय तो यह है नही।

'मुझसे कहा नही जायगा मां,' उमानाथ ने साफ-साफ कहा, 'तुम रमा से कहो।'

रमानाथ बाजार गया हुआ था। अगर घर पर होता तो वह भी ऐसा ही कोरा जवाब देता।

वड़े बेटे की बात सुन मां बिफर उठी, 'तू नही जायेगा, रमा घर पर नही, तो क्या मैं जाऊँ मर्दाने में ? इतने सारे मर्दो के बीच ?'

'क्यो ? घोपाल बाबा से क्यो नही कहती ?'

'वे तो पौ फूटने के पहले ही मछली खरीदने गये हैं।'

'कब की आ गई मछली। वे भी आये ही होगे।'

बात बहुत बढा कर कही गई थी। 'कबकी' नही आई थी मछली, घोपाल मछली लेकर अभी आये थे। खाना बनवाने का भार जिन पर था उनसे बातचीत कर बडी खुशी-खुशी हेमांगिनी को ढूँढते हुये वे उनके कमरे के सामने आकर बोले, 'बहूरानी, बडी बढिया मछली लाया हूँ। रूपचन्द मल्लाह ने पहले ही—'

'मछली होतो रहेगी। आप मेरी सुनिये।' कह साधुचरण को एकान्त में ले जाकर उन्हे इधर घटित घटना का पूरा हाल सुनाया। घोपाल की सारी खुशी हवा हो गई।

'मैं अभी जाता हूँ' कह कर वे चले गये।

उनके चेम्बर में पहुँचते ही रघुनाथ हुक्के की नली मुंह से निकाल कर बोले, 'आप आ गये हैं ? एक काम करिये। वर-पक्ष के कितने लोग हैं देख-कर सवारी का इन्तजाम कर दीजिये।'

घोपाल सिर झुकाये वहीं खडे रहे। ख्याल करने पर रघुनाथ बोले, 'कुछ

कहेंगे ?'

'कह रहा था कि दिन बहुत चढ़ गया है। वे लोग अब जाकर इन्तजाम करेंगे तो बड़ी देर हो जायेगी—मामला तो बड़े झमेले का है ही। इससे सिन्दूर-अनुष्ठान यहीं हो जाये। आधे घन्टे में सारा इन्तजाम कर दूँगा।'

'बड़े स्पष्ट शब्दों में रघुनाथ ने कहा, 'सिन्दूर-अनुष्ठान नहीं होगा।'

'कमरे में अगर गाज गिरती तो साधुचरण शायद तब भी इतना न सिहरते।

'कुछ कहना चाहा, मगर बोल न सके। मालूम हुआ उनकी आवाज को लकवा लग गया है।

'धीमे स्वर में रघुनाथ ने फिर कहा, 'जाइये अब देर न कीजिये। उन्हें खाना कर दीजिये।'

'रघुनाथ जब छोटे थे तब साधुचरण उन्हें 'बड़े लल्ला' पुकारते।

'बड़े होकर जब कोर्ट में आना-जाना शुरू किया तब भी कुछ दिन तक ऐसे ही पुकारते रहे। फिर मुवक्किलों के सामने उन्हें 'छोटे बाबू' कहने लगे। बड़े मालिक के चल बसने के बाद रघुनाथ ने जब सारी जिम्मेदारी संभाल ली तब 'छोटे बाबू' से 'बाबू' में बदल गये।

'यहाँ खड़े-खड़े साधुचरण निमिष भर को उस जमाने में लौटगये, जब उनकी जगह घर के मालिक के बाद ही थी, और रघुनाथ उनकी इज्जत अभिभावकों के समान करते। तीव्र तिरस्कार के स्वर में बोले, 'यह तुम. क्या कह रहे हो बड़े लल्ला! सिन्दूर-अनुष्ठान के बिना कहीं शादी पूरी होती है ?'

'चौंक पड़े रघुनाथ। फिर अपने को संभाल कर बोले, 'मैं कब कहता हूँ कि पूरी होती है ? यह शादी नहीं होगी।'

'शादी नहीं होगी ?' भौंचक घोपाल अन्तिम शब्दों को दोहरा भर सके।

'नही।'

'घोपाल ने अत्यन्त नरमाई से कहा, 'बेचारी लड़की का क्या होगा ? उसकी बात भी जरा सोच कर देखो !'

'सोचा है। जो भी हो, जो भी रहे उसकी तकदीर में, मगर ऐसा एक— जो कठोर शब्द उनकी जबान पर आ गया था, धक्का मार कर उसे वापस भेज दिया रघुनाथ ने। उनका मुख तीव्र घृणा से विकृत हो गया। अपने को रोक कर बोले, 'जाइए, आपसे जो कहा वही कीजिये।'

आदेश का स्वर था। घोपाल को पता है, खूब अच्छी तरह से पता है, इसके ऊपर कुछ कहा न जा सकेगा। लम्बी साँस छोड़ वे धीरे-धीरे कमरे से चले आये।

यह समाचार बिजली की तरह चारों तरफ फैल गया। सुना हेमांगिनी ने भी, और सुनते ही अपने कमरे में जा दरवाजा बन्द कर लिया। बेटों, बहुओं

की स्थिति विचित्र हो गई, अब क्या करें, किसमें क्या कहें, कुछ समझ में न आ रहा था। घर आये रिश्तेदार-बिरादर विमूढ़ हो गये। उनके लिये इस हालत में यहाँ रहना भी कष्टदायक, था और चला जाना दृष्टि कटु।

अपने समधी और बालपन के साथी वीरेश्वर से मिले रघुनाथ। उनके दोनों हाथ पकड़ अनुनय भरे स्वर में बोले, 'मुझे माफ करना भाई। देखता हूँ कि हमने जो चाहा था भगवान को वह मन्जूर नहीं।'

वीरेश्वर ने उत्तर न दिया। गम्भीर हो जाकर गाड़ी में बैठ गये। वर और मित्र पहले ही से उसमें बैठे थे।

जो घर, पिछले रात उत्सव-मुखर था, रोशनियों से झलमला रहा था, खुशियों के भरा-पूरा था, कुछ ही घंटों के फासले में वह मरघट के समान सूना हो गया। बन्दोपाध्याय परिवार पर तो गाज ही गिरी। खासकर उस पर जो माँ बिस्तर पर बेखबर सो रही थीं।

बूढ़ी माँ की तबीयत कुछ दिनों से कुछ ज्यादा ही खराब चल रही थी। रह-रह कर बेहोश हो जाती और होश आते ही सबके हाल-चाल पूछने लगतीं। पिछली रात काफी देर तक होश में थीं। वैशा कि माँ हरदम उनके पास तैनात थीं। बेटियाँ, बहुयें आतीं-जातीं, पूछ-ताछ करती रहतीं। जब-जब मौका लगा, रघुनाथ भी माँ के पास आये। कन्यादान करने जाने से पहले माँ की अनुमति लेने आये। बूढ़ी माँ के आँसू निकल आये। बोली, 'सब कुछ हो गया बेटा; बस मैं ही पड़ी रही। न कुछ कर सकी, न देख सकी कुछ।'

'क्या करोगी माँ? शरीर पर तो कोई जार चलता नहीं। सम्प्रदान के बाद, कोहवर में जाने से पहले गाँठ जोड़ कर वे दोनों तुम्हारे पास आयेंगे। आशीर्वाद करो माँ कि शुभ-कार्य बेखटके निपट जाये। तुम्हारे बड़े नाजो की पली नन्दा सुखी हो।'

बूढ़ी माँ आँखें बन्द किये, सीने पर हाथ रख इष्ट नाम का जाप करती रहीं। यह रोज का जाप नहीं था। सबने समझ लिया कि आसन्न विदाई के क्षण में अपने अत्यन्त स्नेह के दोनों पात्रों के युग्म-जीवन के लिये इष्टदेवता का स्मरण कर अन्तिम आशीष बरसा रही हैं। थोड़ी ही देर में उनकी चेतना फिर आच्छन्न हो गई। यों ही निकल गई सारी रात। अगले दिन, काफी दिन चढ़ने पर आँखें खोलीं उन्होंने। होश में ही इधर-उधर देख बोलीं, 'सुबह हो गई?'

झुक कर वैशा की माँ बोलीं, 'हाँ माँ, करीब दस बज रहे हैं।'

'दस बज रहे हैं, बासी-ब्याह हो गया?'

जवाब न पाकर बिगड़ गईं। उनकी उस हालत में जितने जोरों से बोलना संभव था उतने जोरों से कड़की, 'बहू को बुला दे।'

लेटी थी हेमांगिनी। सास बुला रही हैं सुन घबड़ा कर उठ बैठी। चलते-चलते ठिठक गई। क्या कहेंगी जाकर? बात उनकी बड़ी बहू के कानों तक भी

पहुँची थी। वह दौड़ी आई। अपनी सास को सावधान करती बोलीं, 'दादी माँ से यह सब कुछ न कहियेगा।'

'बड़ों के आगे इतना बड़ा झूठ कैसे बोलूँ ? यह तो मुझसे न हो सकेगा बेटी।' उनकी आँखें भर गईं। उनकी बहू बोली, 'तो फिर आप रहने दीजिये, मैं जा रही हूँ।'

वृद्धा तब तक पूरी होश में आ चुकी थीं। उनके सारे प्रश्नों को बड़ी सफाई से उत्तर देती रही बड़ी बहू। 'कल रात वर-वधू आपको प्रणाम करने आये थे। आप सो रही थीं, इस वजह से हमने आपको बुलाया नहीं। बासी-ब्याह हो गया है। वे रवाना हो चुके हैं। सिंदूर-अनुष्ठान वहीं होगा न। कल तो बहूभात है। परसों या उसके अगले दिन वे जोड़ में वापस आयेंगे। नहीं, बरातियों की सेवा टहल में कोई कमी नहीं हुई। माँ लेटी हैं। बड़ी कड़ी मेहनत की है न। अभी जरा देर में आती होंगी।' वृद्धा के रक्तहीन मुख पर तृप्ति छा गई।

॥ पाँच ॥

दिन बीतते गये। गृहस्थी की गाड़ी के पहिये भी रुके न रहे। रोजमर्रे की जिन्दगी की रफ्तार थोड़े दिनों के लिये बेशक धीमी हो गई थी, फिर वह अपने पुराने रफ्तार पर लौट गई। अपने चिर अभ्यस्त ढर्रे पर चलता रहा बन्दोपाध्याय परिवार।

माँ के चल बसने के बाद से अशौचान्त तक कोर्ट जाना बन्द रखा रघुनाथ ने। काम मगर बन्द नहीं किया। सुबह-शाम चेम्बर में जा बैठते। मुवक्किलों से बातचीत करते। श्राद्धादि हो जाने पर कोर्ट जाना भी पूरे जोर-शोर से होने लगा।

पहले पहल नन्दा बिल्कुल टूट गई थी। कुछ दिनों तक तो वह हर समय अपने पढ़ने के कमरे में दरवाजा बन्द किये पड़ी रहती। फिर वह भी उठ खड़ी हुई। उसने अपने को इस युक्ति से समझाया की उस एक रात की स्मृति को दुःस्वप्न मान बुहारी मार कर-झाड़ फेंकना है। जिस गति से उसका जीवन उस घटना के पहले चलता था, उसे उसी में वापस लौट जाना है। जो हुआ वह एक दृष्टि से अच्छा ही हुआ। अब कोई भी पढ़ाई की राह में रोड़े नहीं डाल सकेगा। वह बड़ी होगी, अपने पाँवों पर खड़ी होगी, अपने जीवन की राह वह खुद तय करेगी।

लेकिन यह सब क्या इतना आसान है ? उस घटना की रात ने उसके जीवन को तहस-नहस कर दिया है। जहाँ वह पहले थी, अब उस जगह नहीं है। सारी छात्रायें उसे अजीब तरह से देख रही हैं। उसकी सहेलियाँ उससे दूर रहतीं, न

हँसकर बात करती, न पास आती। उसे देखते ही उनके मुखों पर पीड़ा की छाया घिरती, अव्यक्त सहानुभूति के चिन्ह फूट निकलते, 'हाय, बेचारी।'

दूसरा दल, उन लडकियों का जिनसे उसकी खास जान-पहचान न थी, जो उसे मेधाविनी छात्रा और अमीर घराने की बेटी जान उससे जलती, उनमें, नन्दा ने ख्याल किया उसे देखते ही फुस-फुसाहट, दबी-दबी हँसी-मजाक और इशारेबाजी की धूम मच गई। नन्दा सब देखती, सब सुनती और सब देख-सुन कर ऐसे हट जाती मानो उसने कुछ देखा-सुना ही न हो।

क्रमशः इस दल की कुछ सदस्यायें आगे बढ कर बोलने लगी।

एक लडकी उससे बोली, 'बता न नन्दा, उस रात तेरे कोहबर मे क्या हुआ था? क्यों निकल आई तू रोती हुई? बता न, मेरी भी तो शादी होगी, मैं भी जान रखूँ कि क्या हो सकता है।'

जवाब दिये बिना ही नन्दा जब वहाँ से चलने लगी तब वे लडकियाँ हँसतेहँसते एक दूसरे पर गिरी पड रही थी। एक दिन एक शादी-शुदा लडकी बडप्पन बघारती बोली, 'वह तुम्हारी ज्यादती थी नन्दा। कोहबर में सारे वर ही छेडछाड करते हैं। क्या मेरे साथ ऐसा ही न हुआ था?'

एक तीसरी, जो जरा वीरागना टाइप की थी, बोली, 'तू महामूर्ख है। रोई क्यों? मारा क्यो नही मुँह पर एक झापड़?'

'तू मारेगी क्या?' किसी और ने पूछा।

'अगर सीमा के बाहर जायेगा तो जरूर मारूँगी।'

नन्दा आदि से अन्त तक गूँगी बनी रहती। मगर फिर भी रिहाई न मिलती। यह सब प्रश्न और उपदेश तो फिर भी शालीनता की सीमा मे ही रहते। मगर ऐसी भी कुछ थी जो ऐसी-ऐसी बातें कहती, ऐसे-ऐसे सवाल करती कि कानों पर हाथ ही रखना पड़ जाता।

शायद वह भी सह जाती। सहती नही तो जाती कहाँ? चारा ही क्या था? वह आशा किये थी कि एक न एक दिन ये लोग हार कर आप ही चुप हो जायेंगी। मगर यह उत्सुकता ने जिस दिन छात्राओं के घेरे को डाक कर शिक्षिकाओं के घेरे मे प्रवेश किया और उन्होने उसे स्टाफ-रूम मे बुला पूछ-ताछ शुरू किया, उस दिन तो हद ही हो गई।

उसकी सहनशीलता समाप्त हो चली थी। जब उससे रहा न गया तो बहनजियों के मुँह पर उसने कुछ कटु शब्द कह मारा और रोती हुई वहाँ से भाग निकली।

उसे स्कूल पहुँचाने और वापस लाने के लिए एक घोडागाडी का माहवारी इन्तजाम था। अगले दिन जब गाडीवान बुलाने आया तब नन्दा ने कहलवा दिया कि वह स्कूल नही जायेगी और उसके साथ यह भी कहलवाया कि आगे से गाड़ी की जरूरत भी नहीं है।

उसी दिन शाम को पिता के कमरे में उसे बुलाया गया। रघुनाथ ने पूछा, 'तूने स्कूल की गाड़ी को मना क्यों कर दिया ?'

'उस स्कूल में अब नहीं जाऊँगी।'

'क्यों ? क्या हो गया ?'

चुप रही नन्दा। रघुनाथ ने भी और कुछ न पूछा। वैसे पूरा हाल तो उन्हें पता न था, पर वे सहज ही अनुमान लगा सकते थे कि क्या हुआ होगा। यह केवल स्कूल या पड़ोस की बात तो नहीं थी, घर में भी नन्दा एक ऐसी परिस्थिति का सामना कर रही थी जिसमें कोई भी अधिक दिन तक सहज या स्वच्छन्द रूप से नहीं रह सकता।

वैसे तो, जो हो गया है उसके विषय में किसी ने कभी उससे कुछ कहा नहीं। न ही किसी ने ऐसा कुछ किया जिससे उसे दोषी ठहराया जाये। फिर भी घर के लोगों के मनोभाव का पता तो लग ही जाता है। रघुनाथ को पता है कि इस समय सब पिता या कन्या किसी के अनुकूल नहीं हैं। नन्दा जैसी बुद्धिमती और समझदार लड़की के लिए इन बदलते रंगों को पहचानना कठिन न था। समय के साथ और भी समझेगी। जिस दिन वे नहीं रहेंगे; उस दिन, यह जो आज उसके इतने सगे हैं, इतने निकट है, वे सब मुकर जायेंगे, मुखर हो उठेंगे। उनके रंग-ढंग ही बदल जायेंगे। उसकी माँ लाख कोशिश करने पर भी उसे उस अभिशप्त रात्रि की लज्जा और ग्लानि से बचा न सकेंगी। अखण्ड आयु लेकर तो माँ भी नहीं आयी हैं। उन्हें भी एक दिन जाना पड़ेगा। तब ?

इस प्रकार की चिन्तायें कुछ दिनों से ही रघुनाथ को व्याकुल कर रही थीं। उस दिन उन्होंने देखा कि कुछ करने का समय आ गया है। मगर यह समझ न पाये कि क्या करना है। बेटी से बोले, 'अच्छा तू जा।'

नन्दा घर पर ही रह गई। अपने कमरे का दरवाजा बन्द किये पड़ी रहती। वहीं लेटना, वहीं बैठना, थोड़ा-बहुत पढ़ना-लिखना, अब पढ़ने में भी आनन्द न आता।

नहाने का वक्त होता तो दाई दरवाजे पर दस्तक देती। नन्दा न पूछती कि कौन है, न यह कि क्या काम है। कपड़े और तौलिया लेकर सीधे बाथरूम जाती, नहा कर, खाने की जगह पर जा पहुँचती। रसोइया खाना परोस देता। किसी दिन हेमांगिन जाकर पास बैठतीं। पूछतीं, 'चावल और लेगी ? एक टुकड़ा मछली और ले न ?'

कभी कहती, 'यह क्या ? कटहल की सब्जी हटा क्यों दी ? खाने का यह कौन-सा तरीका है ? इतना कम खाकर जिन्दा कैसे रहेगी ?'

नन्दा ज्यादातर चुप रहती। कभी कहती, 'पेट बिल्कुल भर गया है माँ, अब खाया नहीं जाता।'

हेमांगिनी रोज आ न पातीं। उन्हें गँठिया के कारण अब चलने-फिरने में

कष्ट होने लगा है। तबीयत कभी ठीक रहती, कभी नहीं। तब बड़ी बहू आती। खाने के लिए माँ से ज्यादा जिद करती, 'यह खा, वह खा'। दूध को मना करने पर कटोरी मुँह से लगाती। मिठाई जबरदस्ती मुँह में ठूँस देती। डाँटती-फटकारती। कहती, 'क्या हो गया है तुझे? सारा दिन कमरा बन्द किये करती क्या है? कभी तो निकल कर आया कर! माँ की हालत तो देख ही रही है। अकेले मैं क्या-क्या करूँ?'

नन्दा चुप। वह कह सकती, 'यह क्यों नहीं बताती कि तुम लोगों को क्या हो गया है। एक बार मेरे पास नहीं आतीं, मुझसे बोलती-बुलाती नहीं।'

वह कह सकती थी पर उसने कहा नहीं।

उसे पता था कि उसके और उसके परिवार के अन्य लोगों के बीच एक बड़ी गहरी खाई खुद गई है। वह जैसे सहज हो किसी से बातचीत नहीं कर पा रही है, वैसे ही उन्हें भी संकोच हो रहा है। खाई के दोनों पार खड़े हो, एक तरफ वह, दूसरी तरफ वे, दुःखी हो सकते है, पर इस खाई को पाट नहीं सकते।

इसका एकमात्र व्यतिक्रम है शिवु, शिवप्रसाद, बड़ी बहू का चार साल का बेटा। रघुनाथ के पिता-चाचा के नाम थे वाणीप्रसाद, सूर्यप्रसाद। फिर दो पीढ़ी रघुनाथ, विश्वनाथ, उमानाथ, रमानाथ। अब इस नई पीढी में 'प्रसाद' फिर वापस आ गया है।

शिवु आकर जोर-जोर से दरवाजा पीटता, 'बुआ दलवादा थोलो।'

फौरन खोलती नन्दा। भतीजे को पास बुलाती। प्यार कर, कहानी सुना, तस्वीर बना उसका मनोरजन करती। मगर शिवु था तो बच्चा ही! कब तक एक जगह रहता। जरा-जरा देर में भाग निकलता।

फिर भी, नन्दा के अन्धकारमय जीवन मे यही था प्रकाश का एकमात्र किरण। निपट एकरसता में वैचित्र्य की माधुरी। बाकी लोगों से तो उसकी शायद ही बातचीत होती।

रमानाथ और उसकी बहू वह जो उस बार गये हैं, तब से फिर आये नही वैसे तो इतने दिनों में एकाध चक्कर जरूर लगा जाते, लेकिन, नन्दा जानती है कि उनके इतने दिनों तक न आने का कारण वही है।

कभी-कभी उसे लगता कि स्कूल जाना इससे कहीं अच्छा था। वहाँ वे लोग जो भी कहे, दो-चार बाते तो करती। थोड़ा घूमना-फिरना भी हो जाता। यह तो एकदम कारावास हो गया है।

स्कूल छोड़ने के बाद उस दिन पिताजी से जो बाते हुई थी, उसके बाद उनसे दो-तीन दिन और बातचीत हुई है। उन्होंने ही उसे बुला कर बात की थी। या तो कोर्ट जाते समय, नही तो लौट कर। कभी-कभी दो-चार किताबें लाकर देते, कहते, 'पढ कर देख बड़ी अच्छी हैं।'

अगरेजी किताबें ही वे ज्यादातर जाते। डिकेन्स की 'डेविड कापरफील्ड' या 'आलिवर ट्विस्ट', तुर्गनेव की छोटी कहानियाँ, न्यूट हैमसन का 'पैन' या, ऐसी ही दूसरी क्लासिक्स, जिन किताबों को उन्होंने कभी पढ़ा था, पढ़ कर आनंदित हुये थे।

क्लास नाइन की छात्रा होते हुये भी नन्दा कुछ बातों में औरों से आगे है। इन किताबों को• पढ़ कर वह काफी कुछ समझ लेती। जहाँ न समझ पाती वहाँ कोष का सहारा लेती। वैसे, कहने को रघुनाथ कहते, 'जहाँ समझ न सको मुझसे पूछ लेना।'

नन्दा हँसती। उसका मन होता कहे, 'पूछूँगी कब ? आपके पास इतना समय कहाँ है ?' मगर यह न कह वह कहती, 'अच्छा'। और फिर पढ़ाई में डूब जाती।

एक दिन, शाम को नाश्ता कर चेम्बर में जाने से पहले रघुनाथ नन्दा के कमरे में आये। उसकी कुर्सी पर बैठ उसे भी बैठने को कहा।

बिस्तर पर बैठी नन्दा। उत्साह और चिन्ता की मिली-जुली भावना लेकर सुनने को तैयार हुई। वैसे तो वे जब भी आते हैं खड़े-खड़े दो-चार बातें कह कर चले जाते हैं। आज अब बैठे हैं, तो जरूर कोई खास बात है।

कुछ देर मौन रह कर रघुनाथ ने कहा, 'कलकत्ते जायेगी ?'

नाच उठा नन्दा का मन ! मगर समझ न पाई, वहाँ कहाँ जायेगी वह। ऐसा तो उसने कभी सुना नहीं कि वहाँ कोई रिश्तेदार रहते हैं। उसने पूछा, 'घूमने ?'

'नहीं। घूमने नहीं, पढ़ने। अच्छे स्कूल में दाखिला दिलवा दूँगा। हास्टल में रहेगी। रह सकेगी न ?'

यकीन नहीं आ रहा था नन्दा को। कलकत्ते में पढ़ेगी वह। उसने कभी सोचा भी न था कि इतना बड़ा सौभाग्य उसकी प्रतीक्षा में है। अपार आनन्द और पिता के प्रति असीम कृतज्ञता से उसकी आँखें छलक आईं। वह तो फौरन जावब भी न दे पाई। रघुनाथ ने कहा, 'घर की याद आयेगी ?'

अबकी बार नन्दा ने बड़े जोर से 'नहीं' में सिर हिलाया। याद क्यों आयेगी भला ? पिताजी को वह कैसे समझाये कि वह तो यही चाह रही थी। घर से कहीं दूर जाकर रहना। यह तो उसके लिये मुक्ति है। केवल मुक्ति ही नहीं, पिताजी ने उसके आगे ऐसा द्वार खोल दिया जिनसे होकर वह एक ऐसे जीवन में पहुँच सकेगी जो उसे बचपन से बुला रहा है, जिसे लेकर उसने आज तक कितने सपने देखे, कितने महल बनाये-बिगाड़े थे। जीवन में उन्नत होने के, प्रतिष्ठित होने के सपने।

रघुनाथ ने उसकी हिम्मत बँधाई, मैं जाकर तुझे देख आया करूँगा, तू भी छुट्टियों में आती रहना।'

रघुनाथ की बातों से नन्दा का सपना टूटा । उसने पूछा, 'कब जाऊँगी पिताजी ?'

'रुक जा, पहले सब पक्का करूँ । दिनेश को लिखा था मैंने, उसका जवाब आया है। लिखा है ब्राह्म गर्ल्स स्कूल में जगह मिल जायेगी। वहाँ सुविधा यह है कि हास्टल स्कूल के साथ ही है, वहाँ भी जगह मिल जायेगी।'

'दिनेश कौन है ?' पूछा नन्दा ने।

'तू नहीं पहचानेगी। यहाँ वह किसी जमाने में मेरा जूनियर था। कोई दो साल से वह हाईकोर्ट में प्रैक्टिस कर रहा है। बिल्कुल मेरे छोटे भाई जैसा है। वह भी तेरे पास आता-जाता रहेगा।'

रघुनाथ को डर था कि हेमांगिनी शायद इस प्रस्ताव को न मानें। साफ मना नहीं भी करेंगी तो पूरे मन से इसे मान न सकेंगी। नन्दा उनकी अन्तिम सन्तान है। इसके लिये तो वे तैयार थीं कि वह बड़ी होगी, अपने घर जायेगी। सब माँयें हो ऐसा चाहती है। मगर यह जाना तो वैसा जाना न था।

बहुत सी लड़कियाँ शादी-ब्याह न कर पढ़ती हैं, कुछेक नौकरियाँ भी करती हैं। उनके परिवार में इतनी आधुनिकता तो थी नहीं, अगर होती तो शायद वे इसे भी मान लेतीं। मगर यह तो उनमें से कुछ भी नहीं था।

फिर भी हेमांगिनी ने पुले मन से राय दी। पहले तो रघुनाथ को इससे जरा आश्चर्य हुआ, मगर फिर वे समझ गये कि इस सहमति के पीछे मातृ-हृदय की कितनी वेदना छिपी हुई है।

बेटी के भविष्य की चिन्ता क्या उन्हें नहीं खाये जा रही थी ? वे जितना भी सोचतीं उन्हें कोई किनारा नजर न आता। इस प्रस्ताव को सामने पाकर उन्हें लगा कि पति ने जो तय किया है वही उत्तम है।

इसके अलावा हो भी क्या सकता था ? स्त्री-जाति का जो चिराचरित पथ है, उन सबने उसके लिये भी तो वही चाहा था। वह जब उसे पा न सकी तो अपना रास्ता वह खुद ही बना ले।

परिस्थिति के उतार-चढ़ाव से मजबूर मनुष्य बहुत कुछ सह लेता है, स्वीकार कर लेता है। इसी कारण हेमांगिनी ने नन्दा के जीवन के इस अभावित विवर्तन को सहजता से स्वीकार कर लिया।

॥ छ ॥

नये उत्साह से नया जीवन शुरू किया नन्दा ने। यही तो है उसका अभीष्ट जीवन। इसी रास्ते से चल कर तो वह सफलता के शिखर पर पहुँचेगी। उसका रूप कैसा है, यह वह साफ-साफ जानती नहीं। अभी तो स्कूल की सीमा ही नहीं

फाँद सकी है। अभी बहुत सीढ़ियाँ चढ़नी हैं, बहुत-सा पथ अतिक्रम करना है।

वह इसी बीच तय कर लेगी कौन का उसका अभिलषित पथ है, किधर है उसकी योग्यता। विज्ञान, इतिहास या और कुछ। पिताजी ने वचन दिया है कि वह जितना पढ़ना चाहेगी, वे उसे पढ़ायेंगे।

फिर भी, हमेशा तो वह पिता का बोझ बनी रह नहीं सकती। एक दिन उसे अपने बल-बूते पर खड़ा होना है। स्वावलम्बी, स्वच्छन्द, एकाकी जीवन। बस अब तो थोड़े ही दिन बाकी हैं। देखते-देखते बीत जायेंगे।

वह एक बात और भी अनुभव कर रही है। यहाँ जो वह आई है इसमें उसकी इच्छा तथा रुचि के साथ उसकी अलक्ष्य नियति ने भी अपना सहयोग दिया है।

जिस समय उसके माता-पिता, स्वजन-रिश्तेदार उसके लिये चिराचरित और जाने-माने भविष्य की रचना में जुटे हुये थे, उस समय नियति अपनी अदृश्य उँगली के इशारे से ऐसा भविष्य निर्माण कर रही थी जो उस जानी-पहचानी जीवन-धारा से बिल्कुल भिन्न था।

विवाह नाम की जो घटना है, जिसकी कामना शायद हर लड़की के मन में होती है, उसके जीवन में एक अर्धसमाप्त घटना बन कर लुप्त हो गई है।

जाने दो। इसका उसे जरा भी दुःख नहीं। परन्तु जो दुर्घटना घटी (उसे दुर्घटना के सिवा कहा भी क्या जा सकता है) वह ऐसा विचित्र रूप लेकर आई की उसकी स्मृति तो वह लाख कोशिश करने पर भी मन से मिटा न सकेगी।

वह एक अजीब जीव है। इस समाज में, इस देश में उसकी कोई परिभाषा नहीं। उसकी शादी नहीं हुई है क्योंकि किसी पुरुष ने उसकी माँग में सिन्दूर नहीं रचाया है। मगर वह क्वाँरी भी नहीं है।

उसके पिता ने शास्त्रों के अनुसार वेद-मंत्रों का उच्चारण कर, अग्नि को साक्षी मान, पवित्र शालिग्राम शिला को सामने रख उसे एक व्यक्ति के हाथों समर्पित किया है।

उसी के संग शय्या पर, उसने कोहबर में रात बिताई है। उसी शय्या पर विवाहित नारी के जीवन के चरमतम उपलब्धि का अनुभव भी उसे हो गया है। उसकी सहमति उसमें थी या नहीं, यह प्रश्न निरर्थक है। फिर भी इस स्कूल तथा अन्यत्र सर्वत्र उसका परिचय नन्दा बनर्जी ही है।

ऐसा उदाहरण क्या एक भी और मिलेगा? कम से कम उसके आस-पास तो नहीं ही मिलेगा।

इस दृष्टि से वह एकक है, अनन्या। उसके जोड़े का क्या कभी कोई मिलेगा? कुछ भी हो, इन चिन्ताओं के लिये इस समय अवकाश नहीं। उसके सामने एक ही लक्ष्य है। उसी की ओर दृष्टि रख उसे अविराम आगे बढ़ना है। सारी शक्ति

सारे मन से नन्दा बनर्जी ने अपने को उस उद्देश्य के चरणों में समर्पित कर दिया।

समय पर स्कूल की पढाई पूरी हुई। फर्स्ट डिवीजन की लिस्ट में ऊपर की तरफ उसका नाम था। रघुनाथ ने खुद कलकत्ते आकर बेटी का नाम बेथून कालेज में लिखा दिया। कालेज के हास्टल में जगह न मिली। उत्तर कलकत्ता के एक लेडीज हास्टल में रहने का इन्तजाम किया गया। ट्राम से आसानी से आ-जा सकती है। कोई दिक्कत नहीं।

एक दिन ट्राम से कालेज के स्टाप पर उतरते ही उसने देखा कि कुछ दूर एक सज्जन खडे हैं। बड़ी एकाग्रता से उसी को देख रहे हैं। आँखें मिलते ही चौंक उठी नन्दा। अरे! देखा तो उसने एक ही बार था, मगर पहचानने में कोई मुश्किल न हुई। आँखें नीची कर ली नन्दा ने।

तेजी से सडक पार कर दाहिने हाथ को मुड कर जब वह कालेज के फाटक के अन्दर घुस रही थी, उसने देखा वह तब भी देख रहा है एकटक, निष्पलक। क्रोध और घृणा से भर उठा उसका मन।

तीन-चार दिन बाद फिर दिखाई पड गया। उसी तरह, उसी जगह। नन्दा ने ट्राम की खिडकी से ही उसे देखा। इस बार उसने उस तरफ देखा ही नही। सिर झुकाये वह ऐसे सडक पार हो गई मानो उसे कुछ पता ही न हो।

पर वह इससे भी निरस्त न हुआ। अक्सर आता, एक ही समय, एक ही जगह पर खडा रहता। क्या करे नन्दा? कितने दिन इस न देख पाने का नाटक करे?

दूसरी लडकियाँ भी उसी ट्राम से आती हैं। वे भी उसे देखती होंगी, उन्हें याद भी हो आ सकता है कि यही व्यक्ति फलाँ-फलाँ दिन भी यहीं, इसी तरह खड़ा था। उनकी निगाह में यह भी पकड जायेगा कि उसकी दृष्टि नन्दा पर है। शायद वे इस बात पर बवण्डर मचायें और उससे जवाबतलब किया जाये।

नन्दा ने तय किया कि जैसे भी हो इस आदमी का यहाँ आना और कंगालियों की तरह मुँह फाडे खडा रहना बन्द करना ही पडेगा। मगर कैसे? सीधे जाकर उसे चैलेंज करे? पूछे, 'क्यों आते हैं आप? क्या चाहते हैं? शर्म नही आती इस तरह लडकियों के कालेज के सामने खडे रहते?'

जब वह इन बातों को सोच रही थी, तब उसके नाम एक पत्र आया। हास्टल के पते पर। पत्र छोटा-सा था, 'क्षण भर की कमजोरी के कारण जो गलती हुई है क्या उसके लिये क्षमा मिल नहीं सकती? जो भी हुआ है, तुम मेरी पत्नी हो। विवाह के सारे रस्म पूरे न हो सके तो क्या हुआ? मेरे पास यही अखण्डनीय सत्य है। तुम भी इसे अस्वीकार नही कर सकती।

'तुम्हारे ही कारण मैं कलकत्ते आया हूँ, किराये पर मकान लिया है, यहीं वकालत करूँगा। तुम्हारी पढ़ाई में कोई खलल न पड़ेगी। तुम्हारी किसी

में मैं किसी दिन बाधा न दूँगा। तुम आओ। तुम्हारी और मेरी, दो जिन्दगियों को इस बेरहमी से बर्बाद मत करो। तुम्हारा पत्र पाते ही मैं खुद आकर तुम्हें लिवा लाऊँगा।'

पत्र पढ़ते ही नन्दा ने उसका चूरा बना कर खिड़की से बाहर फेंक दिया।

फिर जब सोचने बैठी, तब भयंकर भय ने उसे आ घेरा। अगर वह और आगे बढ़े तो? अगर फिर पत्र लिखे तो? अगर वह इस हास्टल में कहीं आ जाये तो? पत्र के ढंग से यह साफ जाहिर है कि वह जल्दी हार मानने वाला नहीं। बेहयायी की हद देखो। कहता है 'तुम मेरी पत्नी हो।' मालूम होता है कि इस अधिकार के बल पर वह जंग छेड़ने को तैयार है।

अन्दर ही अन्दर टूटने लगी नन्दा। क्या करे वह? पिताजी को लिखे? कौन-सा मुँह लेकर लिखेगी? यों ही, उसके कारण उनकी चिन्ताओं का अन्त नहीं। उन पर एक चिन्ता और ठोंक दे? थोड़े दिनों में दूसरी चिट्ठी भी आ गयी। बगल वाले कमरे में रहने वाली लड़की ने उसे वह खत लेटर-बाक्स से लाकर दिया। लिफाफे को एक नजर देख, बिना खोले ही उसने उसे मेज पर रख दिया। यह देखते ही वह लड़की बोली, 'क्यों री? पढ़ेगी नहीं?'

'फिर पढ़ लूंगी, अभी वक्त नहीं।'

'या मेरे सामने नहीं खोलेगी?' मजाक किया उसने। 'अच्छा भाई मैं जाती हूँ', कहकर वह चली गई। चलते-चलते ऐसी मुस्कराहट बिखेर गई, जिसका अर्थ अतिस्पष्ट था।

यह पत्र और भी छोटा था। एक बार मिलने का अनुनय किया है। अपनी बात वह अच्छी तरह साफ-साफ समझाना चाहता है। पत्र में वह मुमकिन नहीं। हास्टल में जा नन्दा को विपत्ति में डालने की इच्छा नहीं। विक्टोरिया मेमोरियल के मैदान में आने को लिखा है। पत्र के अन्त में आने की तारीख और समय का पूरा ब्योरा दिया गया है।

नन्दा ने तय किया कि अब चुप रहने से काम न चलेगा। बगल के कमरे में रहने वाली लड़की की हँसी का अर्थ स्पष्ट था। सन्देह है उसे, और ऐसा होना स्वभाविक है कि पत्र द्वारा किसी से प्रेम-प्रसंग चल रहा है। यह सन्देह तो उस तक ही सीमित न रहेगा, सारे हास्टल में फैल जायेगा। चालक-गोष्ठी के कानों में भनक पड़ेगी—तब?

कागज का एक टुकड़ा उठा फौरन पत्र लिखा नन्दा ने, 'आपसे मेरा कोई सम्पर्क नहीं। आपके कहने पर भी नहीं मानती, न कभी मानूंगी। इस कारण मिलने का सवाल उठता ही नहीं। मेहरबानी कर मेरी जान छोड़ दीजिये। पत्र लिख कर या मिलने की चेष्टा कर मुझे परेशान करने का कष्ट न करें। अगर आप निरस्त नहीं होंगे तो फिर मजबूर होकर मुझे या तो कलकत्ता छोड़ना पड़ेगा, नहीं तो जहर खा लेना पड़ेगा।'

इसके बाद फिर न कोई पत्र आया, न ही वह परिचित शक्ल ही कभी कालेज के गेट के सामने दिखाई पड़ी।

कालेज तथा विश्वविद्यालय में बीते बाकी वर्ष नन्दा के लिये बिल्कुल साधारण थे। मगर इन्हीं वर्षों में इस्लामपुर के बन्दोपाध्याय परिवार पर कई मुसीबतें आईं।

दादी तो गईं उसके 'विवाह' के चन्द दिन बाद ही। उसके दो-तीन साल बाद ही माँ भी चल बसी। उनकी बीमारी का हाल सुन नन्दा उन्हें देखने घर गई थी। लौटी थी उनकी श्राद्ध के बाद। तभी देख कर आई थी कि पिता एक-दम लटक गये हैं। कोर्ट भी नियमित नहीं जाते। भाई साहब को थोड़ा और प्रतिष्ठित कर, वे वहाँ जाना बिल्कुल बन्द कर देंगे, यही उनकी इच्छा है। केवल इच्छा ही नहीं, वे इसी की प्रतीक्षा में बैठे हैं।

थोड़े दिनों में उसने सुना कि पिताजी ने कोर्ट जाना बन्द कर दिया है। अब शायद वे अन्तिम छुट्टी की राह देख रहे हैं।

पिछली बार जब वह घर गई थी, एक समाचार और भी सुन आई थी। वीरेश्वर मुखोपाध्याय पुत्र की दोबारा शादी करने की सोच रहे हैं।

पिताजी का रोजगार जब से बन्द हुआ, नन्दा ने तब से ही यह तय कर लिया कि खर्च के रुपयों के लिये वह अब इस्लामपुर की बाट न जोहेगी। उसके भाई और मामों ने 'शादी' की रात को की गई उसकी 'फूहड़पन' को कभी माफ नहीं किया था। उसने पिता को लिखा कि अब वह अपने पाँवों पर खड़ी होने की कोशिश करेगी।

रघुनाथ का उत्तर बहुत जल्दी आया। उन्होंने लिखा, 'एम. ए. की पढ़ाई पूरी कर लो। उसके पहले कुछ भी करने की कोशिश मत करना। मैंने वकालत छोड़ दी तो क्या हो गया? तुम्हारे खर्चों को मैं अभी और आगे भी बखूबी चलाने की सामर्थ्य रखता हूँ।' नन्दा ने उनकी आज्ञा मान ली। चारा भी क्या था?

बहुत थोड़े से नम्बरों से एम. ए. में उसका फर्स्ट डिवीजन रह गया। इस वजह से किसी कालेज में नौकरी मिलने की उम्मीद पर पानी फिर गया। हो सकता है आगे चल कर मिले, मगर उसके लिये इन्तजार करने को समय कहाँ? उसकी इच्छा और चेष्टा यही थी कि जल्द से जल्द पिताजी को भार-मुक्त करे। वह नौकरी की तलाश में जुट गई।

बहुत जल्दी ही बिहार के इस छोटे शहर के लड़कियों के स्कूल में उसकी नियुक्ति हो गई। वह यहाँ असिस्टेन्ट टीचर के रूप में आई थी। फिर स्कूल से, डेपुटेशन पर पटना जाकर बी. टी. कर आई। धीरे-धीरे, अपनी योग्यता के बल पर वह फिर वही हेड-मिस्ट्रेस के पद पर आ गई। इस घटना को भी कितने साल हो गये।

॥ सात ॥

इसके बाद समरजीत बाबू ने एक नये प्रसंग को अवतरित किया। अवतरित करने के पहले उन्होंने एक भूमिका बाँधी, जिसका सार-मर्म यह था कि मनुष्य के जीवन की गति नदी के प्रवाह के समान है। दोनों का मेल इसी में है कि दोनों में ही तरंग है, गति है, और है तीरों को तोड़ना-गढ़ना। सबसे बड़ा मेल है कि दोनों में ही हम देखते हैं कि उत्स से मुहाने तक वह एक अविच्छिन्न धारा है।

नन्दा बनर्जी तो न जाने कब अपने जीवन के उत्स से कट कर अलग हो गई थी। स्कूल की रूटिन से बँधा उसका जीवन एकरस और निस्तरंग था। उसकी प्रकृति में एक ऐसी प्रशान्ति थी कि सब मिल कर उसे प्रवहमान नदी न कह, निभृत, निर्जन, ग्राम्य तालाब कहना ही अधिक उचित होगा।

उसके इस तालाब में एक दिन एक कंकड़ी गिरी।

स्कूल के दाखिले का रजिस्टर आया था उसके पास। अध्यक्षा होने के नाते उसे उसमें दस्तखत करना था। उसके पन्ने उलटते-उलटते, नई दाखिल हुई एक लड़की के पिता का नाम देख कर वह चौंकी। फिर हँस दी। नाम का ऐसा मेल तो कितनी ही बार होता है।

फिर भी, कुछ सोच, टिफिन के समय उस बालिका को बुलवाया। प्यारी-सी बच्ची है। नाक-नक्शे पर लावण्य की श्री है। स्वभाव की नम्र। नाम भी प्यारा है, सुमिता-सुमिता मुखर्जी। मामा रेल के कर्मचारी हैं। हाल ही में तबादला ले कर यहाँ आये हैं। सुमिता उन्हीं के पास रह कर पढ़ती है। पहले जहाँ पढ़ती थी, वहाँ से ट्रान्सफर सर्टीफिकेट लेकर यहाँ आई है।

'तुम्हारे पिता कहाँ रहते हैं?'

'जी कलकत्ते में।'

'क्या करते हैं?'

'वकालत करते हैं जी।'

नन्दा फिर चौंकी। उसने पूछा, 'तुम लोग रहने वाले कहाँ के हो?'

'जी पूर्वी बंगाल के। मैंने बस सुना ही है, कभी देखा नहीं। देश-विभाजन हो जाने के बाद पिताजी भी कभी नहीं गये। विक्रमपुर नाम की वहाँ एक जगह है, जानती हैं आप?'

अब तो नन्दा का हृदय सचमुच काँपने लगा। मुंशीगंज तो विक्रमपुर में ही

है। एक बार इच्छा हुई पूछे, 'विक्रमपुर की कौन सी जगह, बता सकती हो ? शहर या गाँव का नाम क्या है ?' पर उसका साहस जवाब दे गया। अगर यह भी मिल जाये तो ? नहीं, नहीं, अनिश्चयता की हल्की-सी आड़ रह जाना ही ठीक है।

लेकिन अगर वह जैसा सोच रही है, बात अगर वह ही हो ? तीखी निगाह से देखती रही बच्ची को। कुछ जरा-सा मेल तो है, या उसकी कल्पना-मात्र है ? और फिर इतने दिनों बाद उसकी शक्ल भी ठीक-ठीक याद नहीं। उसने पूछा, 'तुम्हारी माँ भी कलकत्ते में हैं क्या ?'

'मेरी माँ हैं नहीं। मैं जब चार साल की थी, वे तभी चली गईं। तभी से मामाजी के पास रहती हूँ ?'

'अच्छा तुम जाओ।'

अध्यक्षा को नमस्कार कर सुमिता चली गई। अध्यक्षा के कमरे से वह जरूर बाहर हो गई, मगर किसी अलक्ष्य राह से वह उनके मन में समा गई।

नन्दा के मन का द्वन्द्व तभी से शुरू हो गया। 'उसकी बेटी है तो क्या हुआ ? मुझसे कौन-सा रिश्ता है उसका ? अन्यान्य लड़कियों की तरह वह केवल छात्रा है मेरे स्कूल की। इससे अधिक कुछ नहीं।'

'कुछ अगर है ही नहीं तो तुम उसे स्वतंत्र दृष्टि से देखती क्यों हो ? तुम उसे पास बुलाने के लिए अकुलाई क्यों रहती हो ? बोलो, जवाब दो ?' अपने से ही पूछती नन्दा।

इस प्रकार मानसिक चीर-फाड़ के बीच गुजरते रहे नन्दा के दिन। कभी-कभी उस बच्ची पर बेबात ही बिगड़ जाती। फिर स्वयं ही उसे दुःख होता। 'हाय बेचारी ! उसका क्या दोष ? वह तो कुछ जानती भी नहीं।' पास बुला कर उससे इधर-उधर की बातें करती। जब कमरे में और कोई न होता, तो पीठ पर, सिर पर हाथ फेर प्यार करती।

कभी इच्छा होती, किसी छुट्टी के दिन उसे घर बुला कर अपने हाथों से बना कर उसे खिलाये। जो उसे पसन्द है, वही बनाये। फिर उसे लगता, क्या यह उचित होगा ? कौन है वह ? उसके लिये और छात्रायें जैसी हैं, सुमिता उससे अधिक कुछ नहीं।

विधि की लीला ऐसी विचित्र है कि वह मौका भी उसे मिल गया। केवल एक दिन नहीं, काफी दिनों के लिये सुमिता उसके पास रहने के लिये आ गई।

हुआ ऐसा, उसके मामा के तबादले का हुक्म फिर आ गया। केवल तबादला होता तो कोई बात भी थी, कुछ दिनों के लिये यह कह कर टाल सकते कि मैं तो अभी हाल ही में यहाँ आया हूँ। मगर यह था तबादले के साथ प्रमोशन। इस कारण मना करने का सवाल तो उठता ही नहीं। मौजी की समस्या सताने लगी उनको। साल पूरा होने को है। परीक्षा भी सामने है। इस समय जाकर

किस स्कूल में नाम लिखा सकेगी ? मतलब यह कि उसका साल खराब जायेगा। यहाँ लड़कियों के रहने के लिये हास्टल भी नहीं। नतीजा यही निकला कि मजबूर होकर उसे भी जाना पड़ेगा।

यह बताने और ट्रान्सफर सर्टीफिकेट लेने सुमिता नन्दा के पास आई। पूरी बात सुन नन्दा बोली, 'तुम मेरे पास रह जाओ।' वह इस बात को इतनी आसानी से बोली जैसे इस समस्या का यही एक समाधान हो। कह कर मगर वह खुद ही चौंकी। यह क्या किया उसने ? क्या रिश्ता है उसका इस लड़की के साथ जो उसने इसे अपने घर रहने को कह दिया ? ऐसी तो और कितनी ही लड़कियाँ ट्रान्सफर लेकर जाती ही रहती हैं। कइयों को तो इसी प्रकार की समस्या का सामना करना पड़ा है। उन्हें तो उसने अपने पास रहने की बात कभी नहीं कही थी। तब तो उसके मन में यह बात आई भी नहीं। मगर जब यह आकर कहने लगी, तो अपने अनजाने ही उसके मुख से यह वाक्य निकला, 'तुम मेरे पास रह जाओ।' छि:छि: क्या सोचेंगे उसके घर के लोग ?

मगर कह जब दिया है, तब पिछड़ तो नहीं सकती।

सुमिता के मामा उसे छोड़ने आये। खर्चे की बात कहने को भी सोच कर आये थे। परन्तु अपनी भाँजी के प्रति अध्यक्षा के आचरण में, बातचीत में जो स्नेह उन्होंने देखा, फिर यह अदना-सी बात कहने की हिम्मत न जुटा सके। सोचा, अभी रहने दो, बाद में देखा जायगा।

लड़कियाँ हेड-मिस्ट्रेस को 'बड़ी बहनजी' कहतीं। सुमिता भी वही कहती। एक दिन नन्दा ने झिड़की लगाई उसे, 'यह स्कूल है क्या कि 'बड़ी बहनजी' 'बड़ी बहनजी' की रट लगा रखी है ? उम्र में मैं तुम्हारी माँ से भी बड़ी होऊँगी, मुझे मौसी कहा करो।'

वह लड़की भी शायद यही चाहा रही थी। माँ के प्यार का स्वाद कैसा होता है, यह तो वह जानती न थी, अब उसने उसे जाना।

सुमिता शायद तीन महीने थी नन्दा के पास।

स्मरजीत बाबू ने बताया, 'असीमा तो अक्सर जाती है उसके पास। जाकर देखती नन्दा उस लड़की में मगन है। या तो उसे पढ़ाती होती, नहीं तो उसे पढ़ने बिठा कर उसके लिये कुछ बनाती होती। कभी उसे पास बिठा कहानी सुना रही होती।

स्कूल तो खैर जाना ही पड़ता। लौटते ही सुमिता की चिन्ता। सुमिता के लिये नये कपड़े, नये जूते। परीक्षा सामने है उसे बहुत पढ़ना पड़ता है, मेहनत ज्यादा हो रही है, उसके लिये दूध का अलग इन्तजाम। नन्दा खुद अण्डा नहीं खाती, मगर सुमी के लिये रोज सुबह उबला अण्डा या पोच।

बेचारी लड़की ! पहले-पहले जरा संकुचित होती। इतना खाना न चाहती। शाम को तैयार होते झेंपती। मगर फिर वह भी भूल गई कि नन्दा उसकी

हेड-मिस्ट्रेस मात्र है। पुकारती 'मौसी' मगर जानती माँ के पास है। माँ के अलावा इतना कौन करता है?

परीक्षा समाप्त होने के चन्द दिन बाद सुमिता एक दिन बड़ी खुश-खुश नन्दा के कमरे में आई। बोली, 'पिताजी परसों आ रहे हैं। अभी हाल उनकी चिट्ठी आई है।'

कुछ कर रही थी नन्दा। सुमिता की बात सुन उसका दिल 'धक्' हो गया। उसने उस लड़की को ऐसे देखा कि वह बेचारी तो घबरा गई। फिर बोली, 'आपके विषय में लिखा था मैंने, इसी कारण मिलने आ रहे हैं।'

'मिलने !' नन्दा एकदम पीली पड़ गई। अपने को काबू करना व्यर्थ जान अपनी दशा छिपाने की कोशिश में सुमिता पर बरस पड़ी, 'मेरी बात लिखने को किसने कहा था तुमसे? क्या लिखा था तुमने?'

सहमी सुमिता बोली, 'मैं यहाँ बहुत खुश हूँ। मौसी मुझे अपनी बेटी मानती हैं। बस, और कुछ नहीं लिखा।'

तब तक नन्दा सम्भल चुकी थी। हँस कर बोली, 'पिताजी को कहीं यह सब भी लिखा जाता है? पगली कहीं की।'

सुमिता के वहाँ से जाते ही नन्दा सोच में डूब गई। अब क्या करेगी? कहीं चली जाएगी एक दिन के लिये? फिर यह लड़की क्या सोचेगी? उसने हेड-मिस्ट्रेस की तारीफ में न जाने क्या-क्या लिखा है, और वह भी बिना जाने-सुने हेड-मिस्ट्रेस को कृतज्ञता जताने आ रहा है। अब वह कौन-सा बहाना बना कर भागेगी? नहीं, उसका जाना नहीं हो सकता। भागेगी भी किसके डर से? आने दो।

लगातार इतना बोलते रहने की वजह से स्मरजीत बाबू को चाय की तलफ सताने लगी। तभी ट्रे थामे बंसीलाल भी आ गया। हँस कर बोले, 'इसी का नाम टेलेपैथी है।'

कप उठाते-उठाते मृगांक ने कहा, 'आपके इस वाहन को देख-देख मेरा मन ललकता है। किसी दिन इसे उठा कर ले जाऊँगा।'

'फायदा न होगा। तुम उसे रोक न सकोगे। वह मेरे पास सोलह सालों से है।'

'खैर, जाने दीजिये, फिर क्या हुआ?'

'फिर वे सज्जन आये और देखा गया' चाय की घूंट ले स्मरजीत बोले, 'वे कोई और थे।'

सोफे की पीठ से टिका चाय पी रहा था मृगांक, 'कोई और थे!' दोहराता वह ऐसा उछला की सारी चाय छलक गई।

हँसे स्मरजीत। बोले, 'कहानी की गोट घर पर नहीं बैठी न? न बैठे तो मैं क्या कर सकता हूँ? जीवन तो साहित्य के बनाये पथ पर चलता नहीं। वैसे तो

तुम्हारी भाभी भी उस दिन ऐसे ही चौंकी थीं। फिर नन्दा की आँखों में झाँक कर उसके मन की थाह लगाने की कोशिश की थी। मगर थाह इतनी आसानी से थोड़े ही मिलता है।

'उस शाम नन्दा की कहानी पूरी हो जाने पर भी दोनों सहेलियाँ बहुत देर तक चुपचाप बैठी रहीं। असीमा तो आविष्ट-सी हो गई थी। नन्दा ही पहले बोली। एक लम्बी साँस ले जैसे सब झाड़ फेंका और कहने लगी 'सज्जन मुझे धन्यवाद आदि देकर चले गये। मैंने भी चैन की साँस ली। वाकई, इतने दिनों से कितनी बड़ी मूर्खता कर रही थी मैं। क्या नाम, गाँव, पते का ऐसा मेल कभी होता नहीं? अब देखिये न मेरे स्टाफ में ही दो सान्त्वना घोष हैं। मगर मुझे तो जैसे इतने दिनों तक खब्त सवार हो गया था। दिन-रात एक झूठ के नशे में नाचती फिरी।

'असीमा नहीं लौट रही देख मुझे चिन्ता हो रही थी। इतनी देर तो वह कभी नहीं लगाती। अन्त में मैंने वंशीलाल को भेजा। उसे देख वह लौटने के लिये उठी।'

'कुछ दूर आकर उसे ख्याल आया, नन्दा को भी अपने साथ ले चलूँ। साथ बैठ खाना खायेंगे। आज उसकी जो दशा है वह तो बिना खाये-पिये ही सो रहेगी।

'लौट कर फिर उसके घर गई। घर खुला पड़ा था। बैठक में नन्दा मिली नहीं। सोने के कमरे तक जाकर ठिठक गई।

'कमरे में अंधेरा था। खिड़की से आती हुई चांदनी से उसने देखा कि तकिये में मुँह छिपाये पड़ी है नन्दा। रुलाई के थपेड़ों से उसका शरीर काँप रहा है।

'असीमा कुछ देर हतवाक खड़ी रही। नन्दा की रुलाई का जैसे कोई अन्त न था। मगर क्यों? किसके लिए रो रही है नन्दा? अभी तो उसने कहा था कि झूठ के नशे में नाचती फिर रही थी। जब देखा कि सारी ही मेरी भूल है तो चैन की साँस ली मैंने।

'क्या यही उसके मन की बात थी, या यह उसने अपने को भुलावा देने के लिए एक भूल की सान्त्वना का सहारा लिया था?

'दरवाजे से चुपचाप लौट आई असीमा। अपने से बोली, आज की रात वह अकेली रहे, अपनी भावनाओं के साथ रहे तो ही ठीक है।'